मीरां का काव्य

[प्रामाणिक पदावली, समीक्षा और व्याख्या]

डॉ. भगवानदास तिवारी, एम्. ए.; पीएच्. डी.; डी. लिट्.
साहित्यमहोपाध्याय, शिक्षाविशारद, तत्त्वभूषण
प्रोफेसर व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
सोलापुर कॉलेज, सोलापुर
व
स्नातकोत्तर अध्यापक और शोध-निर्देशक
शिवाजी विश्वविद्यालयीन स्नातकोत्तर अध्यापन-केन्द्र, सोलापुर

साहित्य भवन (प्रा) लिमिटेड
इलाहाबाद ३

MEERA KA KAVYA

by

Dr. Bhagwan Das Tiwari

प्रथम सस्करण : १९८१ मूल्य ३०·००

साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड ९३, के० पी० क्वकड रोड, इलाहाबाद २११००३ द्वारा प्रकाशित तथा स्टैन्डर्ड प्रेस, २ बाई का बाग, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित।

विषयानुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

जीवन और काव्य

द्वितीय खण्ड

समीक्षा और मूल्याकन

४—भावदशा की परम परिणति, ५—भावयोग का शब्दयोग से समन्वय ६—भावानुरूप शब्दों की योजना, ७—भावदशा का उतार चढ़ाव ८—अनुभूति की सतुलित पूर्णाभिव्यक्ति पर गीत का अन्त।

मीरा की गीति शैली की विशेषताएँ— १) अकाट्य सत्योद्गारो की अटूट शृंखला (२) जीवन सत्य और काव्य-साधना का अभेदत्व, (३) बौद्धिकता का परिहार, (४) सरल, सुलभ गेयता, (५) संगीत तत्त्व, (६) प्रेम साधना के भावस्तरो का प्रामाणिक अभिव्यजन, (७) मनःस्थिति की एकनिष्ठता, (८) लोकानुरूप काव्य, (९) सक्रामकता, (१०) समर्पित काव्य।

३ छन्द—सगीत-समसामयिक सागीतिक परिवेश और मीरा – मीरा का सगीत समुच्चय-गायन, वादन और नृत्य, भावप्रदर्शन मीरा-पदावली की राग रागिनियाँ।

४ रस—मीरा-पदावली मे रस और रसानुभूति-मीरां-पदावली के रस तत्त्व का विभाजन—शृगार रस—सयोग शृगार, विप्रलम्भ शृङ्गार-करुण रस-करुण रस और विप्रलम्भ शृङ्गार का तात्विक अन्तर –करुण रसाभास-शान्त रस-मधुर रस।

५ अलकार—उपमा—रूपक-उत्प्रेक्षा-अत्युक्ति-अर्थान्तरन्यास—विभावना-वीप्सा-उदाहरण-वृत्यनुप्रास-श्लेष—दृष्टान्त-स्वभावोक्ति—मीरा-पदावली में प्राप्त अलकारो का शास्त्रीय वर्गीकरण—शब्दालंकार अर्थालङ्कार।

६ मुहावरे और कहावतें

मीरां की काव्यकला—मीरा के गीतिकाव्य के आधार उपकरण-रूप प्रभाव।

मीरा का जीवन और काव्य—मधुरोपासना और मीरा—पाश्चात्य मधुरोपासक – सूफियों की मधुरोपासना—भारतीय मधुरोपासक धर्म साधनाएँ—दक्षिण भारत के मधुरोपासक भक्त—आण्डाल और मीरा का तुलनात्मक अध्ययन-कृष्णोपासको की माधुरी भक्ति-निर्गुणोपासको की दाम्पत्य रति और मीरा—घनानन्द और मीरा—मीरा और महादेवी-मीरां की मधुरा भक्ति।

तृतीय खण्ड

•

प्रथम खण्ड

जीवन और काव्य

निवेदन

मीरां-पदावली की अद्वितीयता

कबीर, जायसी, सूर, मीरा और तुलसी उत्तर भारतीय मध्यकालीन धर्म-साधना-साहित्य के पंच प्राण हैं। इनमें रागानुगा भक्तिपरक मधुर पदों की सृष्टि और लोकप्रियता की दृष्टि से मीरा का स्थान अद्वितीय है। यो तो गेय-परम्परा में कबीर, सूर और तुलसी के पद भी लोकजीवन में पर्याप्त समादृत हैं, पर मीरा के पदों की बात निराली है। उनमें न तो कबीर की सी उपदेशात्मक वृत्ति-प्रेरित घक्कामार भाषा में 'गूंगे केरी सर्करा' का रस-वर्णन है, न 'राम की बहुरिया' का 'निरगुन सरगुन से परे' आराध्य के प्रति ज्ञानमार्गीय आध्यात्मिक प्रेम-प्रकाशन ही, न जायसी की तरह सूफी दर्शन की छाया में मीरां की प्रेम-पीड़ा प्रस्फुटित हुई है, न उनके पदों में सूर की तरह पुष्टिमार्गीय परिधि से आवृत्त कृष्ण के रूप, गुण और लीलागानों का आत्मनिवेदन युक्त विशाल भावायोजन है और न तुलसी के समान दार्शनिक आचार्यत्व पाण्डित्य का कहीं वृहदायोजन ही किया गया है। उनके पद उनके अन्तर्जगत के सहज शब्द-चित्र हैं।

मीरां-पदावली की विशेषताएँ

अपने मूल रूप में मीरा के पद 'भीतरिये' हैं। उनमे एक सीधे-सादे भक्त हृदय की निर्विकल्प प्रेम पुकार है, आत्मा के सनातन नारीत्व का परम पुरुष कृष्ण के प्रति प्रेमोद्‌गारों का सहज समर्पण है, मीरा की पवित्र आत्मा से नि सृत भक्ति के दिव्य स्रोत का सरल-तरल प्रवाह तथा उनके आत्मोल्लास के पुनीत क्षणों की गहन अनुभूतियों का स्वयंस्फूर्त अनलंकृत अभिव्यंजन है। इस स्वाभाविक भाव निवेदन का ही यह परिणाम है कि मीरां के काव्य में बौद्धिक कलाबाजी और दूरारूढ कल्पना के पंख कट गये हैं। यहाँ जो कुछ है—हृदय है, हृदय का हृदय में निन्य, स्वसंवेद्य आध्यात्मिक प्रणय-व्यापार है, एक महात्मा के विकल, विदग्ध मानस का उद्वेलित भाव-प्रवाह और आत्मोद्धार की चिरन्तन कामना है तथा अपने आराध्य के सान्निध्य के लिए एक आराधिका की ऊर्ध्वगामिनी भक्ति-साधना और मधुरातिमधुर, माधुरी भक्ति के स्नेह-सिक्त भावगीतों का दिव्य रस है। इसीलिए सरल, सुबोध, साम्प्रदायिक घेरे की संकीर्ण परिधि से मुक्त, सर्वसुलभ, लोकानुरूप मानवीय भावनाओं की सार्वजनीन, सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक अनुभूतियों के संगीतात्मक सरस प्रकाशन के कारण मीरां

के पद अन्य भक्तिकालीन सन्तो, और कवियो की गीतिसृष्टि से कही अधिक लोकप्रिय और व्यापक हैं। अनेक भक्ति सम्प्रदायो मे मीरा के पदो का निरन्तर अनुगायन इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

मीरा-विषयक भ्रांतियां

काल प्रवाह के साथ साथ विविध भक्ति सम्प्रदायो और अनेकानेक भाषा भाषी जनो मे मीरा के पदो का प्रचार-प्रसार जिस तरह से उनकी लोकप्रियता का द्योतक है, उसी तरह से अनेक सम्प्रदायो के सन्तो, भक्तो, गायको, और सगीतकारो द्वारा देश, काल, वातावरण सापेक्ष मीरा नामधारी पदो की सृष्टि मीरा विषयक भ्रान्तियो के प्रचार प्रसार की जड है। विगत चार शताब्दियो से मीरा की मूल पदावली की अनुपलब्धि तथा सदिग्ध गुटको और प्रक्षेपो से बोझिल पदो से परिपूर्ण चोपडियो म प्राप्त 'मीरा' छापवाले समा पदो को 'मीरा सर्वस्व मानकर चलने वाले विद्वानो की कृपा से मीरा का जीवन, काव्य और भक्ति भाव परस्पर विरोधी मान्यताओ का अखाडा बना हुआ है। मीरा विषयक समीक्षात्मक साहित्य से लेकर मीरा स्मृति-ग्रन्थो तक यही हालत है। ऐसे वातावरण मे यत्र तत्र 'मीरा क अप्रकाशित पद' प्रकाशित कराने वाले कुछेक पुराने घाघ भी हैं, जो मीरा विषयक भ्रान्तियो की श्रीवृद्धि के साथ साथ परछिद्रान्वेषण मे ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं। इस तरह को भ्रष्ट पाठ परपरा को लेकर अनेक विद्वज्जना, लेखको और सशोधको ने मीरा के बारे मे परस्पर विरोधी मान्यताओ को प्रतिष्ठित करने के लिए घडा पसीना बहाया है। नई नई मीरा पदावलियो का खूब सकलन—सपादन हुआ है, समीक्षात्मक पुस्तकें भी दर्जनों लिखी गई हैं और लिखी जा रही हैं, किन्तु 'मीरा की प्रामाणिक पदावली' की समस्या मात्र ज्यो की त्यों विद्यमान है।

प्रामाणिक पदावली का पाठानुसधान

मीरा की प्रामाणिक पदावली की खोज मे मैंने सन् १९५० से १९६२ तक आसेतु हिमाचल यात्राएं की तथा अनेक मन्दिरो मठो, भक्तो, गायको, सगीतज्ञो, हस्तलिखित ग्रन्थ सग्रहालयो, निजी, शासकीय, अर्धशासकीय ग्रन्थालयो स 'मीरा' क नाम पर प्राप्त ५१६७ पद सकलित किय। इनमे से ३७६७ पद देवनागरी लिपि मे, ८१७ पद गुजराती में और ५८३ पद इन्दिरा देवी द्वारा मीरा के नाम पर रचित चार प्रकाशित ग्रन्थो में उपलब्ध हुए। कही कही तो एक एक पद के दर्जनो गेयरूप और उनमे भी सैंकडा पाठान्तर मिले। इन सभी पदो के विभिन्न गेयरूपो को ऐतिहासिक कालक्रम से जमाकर जब मैंने प्रत्येक पद का भाव, भाषा, शैली, साम्प्रदायिक विचारधारा एव ऐतिहासिकता की दृष्टि से समग्रतामूलक अध्ययन किया, और प्रवाहमुखी अभियान को छोडकर स्रोतमुखी अभियान द्वारा मीरा की मूल पदावली तक पहुँचने का प्रयास किया, तो मुनीवर स्वामी की शिष्या मीरा' के गुजराती पद तथा इन्दिरा देवी द्वारा मीरा के नाम पर लिखे गये ५८३ पद प्रक्षिप्त और मीरा की

अपेक्षा 'मीरा भाव' की रचनाएँ होने के कारण अलग हो गये। इसी तरह पंजाबी, बिहारी, उडिया, बगला आदि भाषाओ के पद प्रक्षिप्त सिद्ध हुए। साम्प्रदायिक भाव-धारा के पद मूल पदो की तुलना मे निश्चित रूप से भ्रष्ट वेशरूप निकले। डाकोर और काशी की प्रतियों के सभी पदो के व्रज भाषा मे भावानुवाद, छायानुवाद या वेश-रूपान्तर मिले, तथा खडी बोली के पद तो मीरा के नाम पर रचकर प्रचारित किये गये निश्चित प्रक्षिप्त पद निकले।

समय, परिस्थिति, मीरा का जीवन, उनकी भावधारा और भक्ति भावना के आधार पर अन्ततोगत्वा यही निष्कर्ष निकला कि मीरा विशुद्ध राजस्थानी की कवयित्री थी। उन्होंने न तो व्रज भाषा मे एक पद लिखा, न गुजराती मे एक पंक्ति, ऐसी दशा में अन्य भाषाओं में मीरा द्वारा पद-रचना की कल्पना करना व्यर्थ है। इस तरह से 'मीरा' नामधारी पदों का कालक्रमागत, भाषावैज्ञानिक, ऐतिहासिक संकलन, संपादन और मूल्यांकन कर मैंने 'मीरा की प्रामाणिक पदावली' संपादित की, तथा 'मीरा की भक्ति और उनकी काव्य-साधना का अनुशीलन' पर आचार्य श्री नंददुलारे जी वाजपेई के निर्देशन में सागर-विश्वविद्यालय से सन् १९६३ मे पीएच० डी० उपाधि प्राप्त की। उसके बाद भी मेरा मीरा विषयक अध्ययन अनवरत जारी रहा। सन् १९७४ मे मेरे शोध-प्रबन्ध के दोनो खण्ड साहित्य भवन प्राइवेट लि० इलाहाबाद से प्रकाशित हुए और सुधीजनो ने उनकी भूरि-भूरि सराहना भी की, किंतु रूढिगत 'प्रसिद्ध' को ही 'सिद्ध' मानकर चलने वाले को मेरे शोधग्रंथ मे प्रस्थापित मान्यताओ से धक्का लगा, पर किसी को धक्का देने की अनुभूति मात्र मेरे मन मे कभी पैदा नहीं हुई। सोचता हूँ—अनुसंधान मे कोई बात 'अंतिम' नहीं होती, पर ज्ञान के दायरे को बढाना और नवोपलब्ध तथ्य को प्रतिष्ठित करना यदि अनुसन्धान का लक्ष्य है, तो मेरा विश्वास है कि सुधीजन इस कृति का भी समुचित स्वागत और मूल्यांकन अवश्य करेंगे। प्रस्तुत ग्रंथ से यदि मीरा के व्यक्तित्व, कृतित्व और भक्ति-साधना के आधार-भूत आयामों के अध्ययन अनुशीलन में, रंचमात्र भी सहायता मिली और मीरा विषयक भ्रांतियों के घनांधकार में एक क्षीण सी आलोकरश्मि भी आविर्भूत हुई, तो मैं अपने अकिंचन प्रयास को सार्थक समझूंगा। मीरा-साहित्य के मर्मी मनीषियों और सहृदय पाठकों ने यदि इस रचना के बारे मे अपनी प्रतिक्रियाएँ प्रकट कीं, तो मैं उनका आभार मानूंगा।

ऋण-निर्देश

परमपूज्य आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल, महाप्राण 'निराला', आचार्य भगीरथी जी मिश्र, डॉ० धीरेन्द्रवर्मा, पं० मोहनवल्लम पंत, प० केशवराम काशीराम शास्त्री, आदि विद्वानों तथा अनेकानेक संतों, भक्तों, गायकों, मठाधीशों, ग्रन्थालयाध्यक्षों और मीरा विषयक ग्रन्थ-प्रणेताओ से इस रचना के प्रस्तुती-करण में मुझे जो सहयोग मिला है, उसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ। जिन लेखकों के

विचारों का इस पुस्तक की भूमिका में 'खण्डन' हो गया है, उनके और उनकी साधना के प्रति मेरे मन में बड़ी श्रद्धा है, क्योंकि उन विचारों ने मुझे पुनर्विचार और तथ्यानुसंधान के लिए प्रेरित किया है।

विनीत,
भगवानदास तिवारी

२७, जुलाई १९८०
ए १०, आसरा हाउसिंग सोसायटी
होटगी रोड, सोलापुर-४१३००३

विषय-प्रवेश

परंपरा और परिवेश

भारत धर्मप्राण देश है। इसकी ऐतिहासिक परम्परा मे व्यक्तिगत जीवन सामाजिक व्यवस्था, साहित्य, सभ्यता, संस्कृति, आचार विचार, नीति, व्यवहार और कर्म सभी धर्म से अनुप्राणित होते रहे हैं। वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक देश की इस धर्म प्राण चिन्तन धारा ने हमारे जीवन को आध्यात्मिक शक्ति से अभिसिंचित कर पल्लवित, पुष्पित और फलीभूत किया है। लौकिक जीवन मे धर्म ने सत्य, अहिंसा, प्रेम, त्याग, सेवा, संयम, सदाचार, सत्कर्म और परोपकार के सन्देश दे एक ओर तो व्यक्ति और समाज के आदर्श स्वरूप का मंगलमय विधान प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर उसने अहर्निश ईश्वर-भक्ति और आत्म चिन्तन द्वारा आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग निर्देशन भी किया है। इसी उदात्त संस्कार के कारण भारतीय धर्म-दर्शन अमांगलिक तत्वो का विरोधक, मानवीय आदर्शों का पोषक और लोकमंगल विधायक सांस्कृतिक चेतना का आधार है। वह मनुष्य को संसार मे आत्मशक्ति-सम्पन्न ,उन्नत मनुष्यता के साथ रहकर विदेहिता से मुक्ति के परमानन्द की उपलब्धि का मार्ग बतलाता है। व्यवहार और साधना के क्षेत्र मे भारतीयधर्म साधना की यही उपादेयता उसके चिरन्तन अस्तित्व का मूलभूत कारण है।

यदि हम विक्रम की चौदहवी से सत्रहवी शताब्दी तक के सम्पूर्ण भारतीय साहित्य की अन्तश्चेतना के मूल स्वरूप का तात्विक विवेचन करें, तो हमे यह स्पष्टतः परिलक्षित हो जाता है कि इस युग का अधिकांश साहित्य भक्तिभाव प्रेरित धर्म-साधना साहित्य है, जो तद्युगीन देशव्यापी सांस्कृतिक चेतना के नवोन्मेष और पुनर्जागरण का द्योतक है। इस धर्म साधना साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके प्रणेता उच्च श्रेणी के भावुक भक्त और युग-द्रष्टा सन्त थे, इसलिये उनकी वाणी 'स्वान्त सुखाय' होते हुए भी 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' है। उनके मन्तव्य चिरन्तन सत्य के आत्मानुभूत प्रमाण वचन हैं। भले ही कवि-कर्म की उपासना उनका ध्येय न रहा हो, फिर भी अनुभूति की सत्यता को उन्होंने जिस सहज, सरस ढग से अभिव्यंजना को लहर में ढाला है, वह सनातन कवित्व का शृंगार है।

मीरां का आविर्भाव इसी भक्तियुग में हुआ था। वे राजस्थान की पुण्यश्लोक विभूति थीं। राजस्थान की रक्तरंजित भूमि में अपनी दिव्य [illegible] से उन्होंने जो

भक्ति-मन्दाकिनी प्रवाहित की, उसमे निमग्न होते ही क्षणभर मे हृदय का सारा कल्मष धुल जाता है और हमारी चेतना एक अलौकिक आनन्द से आप्लावित हो जाती है। भक्ति, काव्य और संगीत की समन्वित साधना के कारण ही मीरा भारतीय भक्ति-साहित्य मे अक्षुण्ण कीर्ति की अधिकारिणी है और मेवाड के नव-रत्नो मे उनकी गणना की जाती है।[1]

असाधारण व्यक्तित्व तथा विरह विदग्ध, प्रेम-प्रणीत गीतो के कारण मीरा की लोकप्रियता अद्वितीय है। उन्होने जीवन व्यापी कटुता पीडा, और अन्तर्दाह को सहनकर अपने 'साँवलिया' के प्रति जिस अनन्य प्रेम, समर्पण और मिलनाकाक्षा की अभिव्यक्ति की है, वह अपने नैसर्गिक सुषमा में एक ऐसे आकर्षक का जादू लिए हुए है, कि श्रोता मीरा का पद सुनते ही तन्मय हो जाता है।

मीरां और उनका युग

मीरा का युग राजनीति, समाज और धर्मसाधना की दृष्टि से संघर्षपूर्ण युग था। इस युग मे हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियो के संघर्ष और सम्मिलन के प्रयास चल रहे थे। शासक सघर्षरत थे और सूफी कवि हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियो मे सन्तुलन साधने के लिए हिन्दु कथानको में सूफी दर्शन का समन्वय कर भारतीय भाषाओ में काव्य रचना कर रहे थे। निर्गुणोपासक सत हिन्दू-मुसलमान दोनो को फटकार रहे थे, सूफी प्रेमोन्माद में मस्त थे तो सगुणोपासक भक्त रामकृष्ण के महिमा और लीला गानो मे व्यस्त थे। युग की चेतना विरोधो के बीच अस्तित्व और विकास के सूत्रो की खोज मे व्यग्र थी। वस्तुतः यह सास्कृतिक सघर्षों का युग था, जिसमे युग जीवन अस्त-व्यस्त और सत्रस्त था।

राजनैतिक परिस्थितियाँ—मीरा के युग की सीमा-रेखायें सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से सत्रहवी शताब्दी के प्रथम चरण तक फैली हुई हैं। राजनैतिक दृष्टि से इस युग में भारत की स्थिति बहुत दयनीय थी। राजस्थान की कुछ रियासतों को छोड़कर प्राय: समस्त उत्तर भारत मे मुगलों का शासन स्थापित हो चुका था। देश में सर्वत्र सामन्तशाही का बोलबाला था। सामन्त जनता के हनन और शोषण के बल पर भोग-विलास पूर्ण समृद्ध जीवन बिताते थे। उनके आक्रमणकारी सैनिक पराभूत जनता पर पाशविक अत्याचार करते थे। 'कत्लेआम' द्वारा निर्मम जन सहार होता था। अनेक गाँव जन शून्य हो गये थे। फसलें जलती थी। गाँव लुटते थे। सर्वनाश की आशंका से लोग संत्रस्त थे। प्रायः सतीत्व का अपहरण कर नारीत्व की पावन प्रतिमाओ पर वासना के जघन्य दीप जलाये जाते थे। हाथ की चूड़ियाँ, माँग का सिन्दूर, गोदी के लाल—सबका अस्तित्व भय से आतंकित था। संक्षेप में, जीवन

---

1 धन्ना, पीपा, रैदास, मोतीनाथ, शार्ङ्गधर, कुंभा, ओटिङ्ग भट्ट, मण्डन सूत्रधार और मीरां मेवाड के नवरत्न थे।—राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज (तृतीय भाग)—उदयसिंह भटनागर, पृष्ठ ६.

पर मुगल-सल्तनत की आततायी तलवार का कठोर शासन था।

दक्षिण भारत के हिन्दू राज्यो की भी स्थिति लगभग ऐसी ही थी। सौराष्ट्र, बल्लभी और कालीकट के हिन्दू राजाओ की नीति मुसलमानो के प्रति बहुत उदार थी। उन्होने मुसलमानो को हिन्दू स्त्रियो से शादी करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी थी। जहां तहां मस्जिदो का निर्माण तथा सूफी दर्शन और इस्लाम-संस्कृति का प्रचार हो रहा था। तलवार का स्वच्छन्द प्रयोग भी इस प्रचार-कार्य का एक आवश्यक अग था।

राजस्थान की गौरव गरिमा मुगल शासको की आंखो मे किरकिरी की तरह सालती थी। वे उसे हडप जाना चाहते थे और इसीलिये राजपूताने पर मुगलो के निरन्तर आक्रमण हुआ करते थे। मातृभूमि की स्वतन्त्रता और जातीय गौरव की रक्षा के लिये राजस्थान के रण बाकुरे सदैव सर पर कफन बांध मृत्यु का स्वागत करने के लिये तैयार रहते थे। उनके लिये जीवन उत्सर्ग का त्योहार था, किन्तु इतिहास हमें यह बतलाता है कि मीरा के जीवन काल मे राजस्थान के राजपूत राजाओ की भी शक्ति क्षीण हो गई थी। झूठे दर्प और आत्म लिप्सा के कारण वे एक दूसरे से लडते रहते थे। बात बात मे नगाडे की चोट और रणभेरी सुनी जाती थी। सगठन सूत्रो की शिथिलता और पारस्परिक फूट के कारण राजस्थान के अनेक छोटे छोटे राज्य मुगलो के अधिकार मे आ गये थे।

कन्हवा के मैदान म 'सवत् १५८४ म बावर और सागा के युद्ध मे मीरा के पिता रत्नसिह मारे गये। उधर ससुर सागा का भी देहान्त हो गया।'[1] इसके बाद जब मीरा मेवाड से मेडता लौटी तो 'सवत् १५८६ मे चितोड पर बहादुरशाह गुजराती ने चढ़ाई की। पहले सन्धि हुई, फिर दुबारा चढ़ाई कर उसने सवत् १५६२ से उस पर अधिकार कर लिया।'[2] इन घटनाओ से पता चलता है कि राजस्थान पर दिल्ली और गुजरात की ओर से मुसलमानो के आक्रमण हुआ करते थे।

सामाजिक जीवन—छुआछूत को मानने वाली हिन्दुओं की वर्ण व्यवस्था मे जाति-पांति के बन्धन बहुत जटिल थे। ऊंच नीच का भेद-भाव अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच चुका था। उच्चवर्णीय हिन्दू शूद्रो को 'नीच' और यवनो को 'म्लेच्छ' कहकर उनसे घृणा करते थे। अछूतो के लिये मन्दिरो मे प्रवेश करना निषिद्ध था। कर्म काण्डी ब्राह्मण 'अस्पृश्य' लोगो की छाया तक को अस्पृश्य मानते थे। रोटी बेटी के व्यवहार मे भी ऐसी ही सकीर्ण मनोवृत्तियां कार्यकर रही थीं, जिनके परिणाम-स्वरूप छोटी छोटी जातियां भी अनेक उपजातियों मे बंट गई थी। कहने का तात्पर्य यह है

---

(१) तुजुक बाबर, पृष्ठ ५७३। (२) 'बहादुर ने चीतोड ३ रमजान हि० स० ६४१ (विक्रम सवत् १५६२ चेत सुदी ५) को फतह किया था (अकबर नामा), और हुमांयू ने बहादुर को मदसोर से २० रमजान (वैशाख बदि ६) को मडू की तरफ भगाया था (मिरआत सिकंदरी), मीरा बाई का जीवन चरित्र मुशी देवी प्रसाद पृष्ट और पृष्ठ

मीरां की जीवनी

उपक्रम

भारतीय धर्म साधना साहित्य के अनेक काव्य-प्रणेताओ की भांति मीरा का जीवनवृत्त भी अद्यावधि प्रामाणिक इतिहास का रूप नही ले सका है। उनकी लोकाभिमुख पदावली की तरह उनका जीवनवृत्त भी भक्तो, कवियों एव इतिहासकारों के मन्तव्यो, लोकप्रचलित अनुश्रुतियो, श्रद्धामूलक अतिशोक्तियो तथा अनैतिहासिक किंवदन्तियो के सम्मिश्रण से अत्यन्त सदिग्ध एवम् विवादास्पद बन गया है। मीरा विषयक पदो, लोकगीतो, कहानियो, नाटको, जीवनियो, चलचित्रो और महाकाव्य में भी मीरा का आद्यन्त प्रामाणिक इतिवृत्त अनुपलब्ध है।

उक्त तथ्य का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि मीरा सम्प्रदाय मुक्त, वंश-शिष्य परपरा विहीन[1] सतशिरोमणि थी, अत एक आत्म चिन्तनरत, आत्मजागृत विभूति के नाते अपनी दिव्य साधना के क्रमिक सोपानो पर चढते समय उन्होंने अपनी आ मोपलब्धियो को वाणी दी, किन्तु आत्मा की अनत यात्रा मे जन्म और मृत्यु की क्षितिज रेखाओं से आबद्ध अपने लौकिक जीवन के कार्यकलापो और घटना-प्रसगो का कही कोई सोद्देश्य विवरण नही लिखा। जीवन और जगत के सबध मे उनकी यह धारणा थी कि यह दृश्य जगत नाशवान है, सृष्टि के समस्त उपादान नश्वर हैं। यहां तीर्थाटन और ज्ञान चर्चा से अथवा काशी जाकर करवट लेने से कुछ नही होता। मनुष्य को चाहिये कि वह अपने शरीर पर गर्व न करे, क्योकि यह शरीर मिट्टी में मिल जाता है। यह संसार चिडियो का बाजार है, जहां प्रत्येक आत्मा (चिडिया) जीवन (दिन) भर लौकिक कार्यकलाप (चहक फुदक) कर मृत्यु (सांझ) होते ही उड जाती है और अन्तत वह परमात्मा (नीड) मे बसेरा करने के लिए चली जाती है।[2]

उपरोक्त धारणा के अनुसार मीरा ने कभी भी सप्रयोजन अपनी लौकिक जीवनगाथा नही गाई, किन्तु उनकी मूल पदावली मे उनके जीवनवृत्त पर प्रकाश डालने वाले ऐसे अनेक आनुषगिक उल्लेख हैं, जो उनकी जीवनी के अत्यन्त मूल्यवान अन्त साक्ष्य हैं। ऐसे अन्त साक्ष्यो के अनुसार मीरां की जीवनी की सामान्य रूपरेखा निम्नानुसार है—

(१) नाम रहेगो काम सों, सुनो सयाने लोय।
मीरां सुत जायो नहीं, शिष्य न मूंड्यो कोय॥

—राजस्थानी जनश्रुति

(२) डाकोर की प्रति, पद—२

(क) मीरां की जीवनी के अंतरंग साधना

मीरा अपने युग की आत्मचिन्तनरत महान् विभूति थी, अतः लौकिक जीवन औ' पारिवारिक संबघो से परे वे उस अगम्यलोक मे हसो की भाति प्रेम के हौज मे क्रीडा करना चाहती थी, जहाँ प्रविष्ट होने में काल भी भयभीत होता है। उक्त प्रदेश में पहुँचने के लिए वे संत-समागम और ज्ञानचर्चा करती थी, सांवरिया' का ध्यान कर अपने मन को उज्ज्वल बनाती थी और ससार से पराङ्मुख हो, सोलह शृंगार सज, शील के घुंघरू बांध, आत्मतोष के साथ 'गिरधरनागर' के समक्ष नृत्य किया करती थी।[1]

उनका यह दृढ विश्वास था कि मनुष्ययोनि वार वार नहीं मिलती, अत वे भवसागर से पार उतरने के लिए 'गिरधर' से प्रार्थना करती थी।[2] वे जानती थी कि भगवन्नाम-स्मरण से सासारिक जीवो के करोडो पाप नष्ट हो जाते हैं और उनके भव भवान्तर के पापो का लेखा मिट जाता है।[3] इसी विश्वास के कारण वे अपने प्रियतम के उस महिमामय नाम पर लुभा गई थी, जिसके प्रभाव से पानी पर पत्थर तैर गये थे और गजेन्द्र, गणिका, अजामिल आदि का उद्धार हो गया था।[4] ऐसे भक्त-वत्सल, शरणागतरक्षक श्रीहरि के पुनीत चरणो मे मीरा की लगन लगी थी, इसलिए उन्होने समस्त भव भय और जग-कुल बन्धन कृष्णार्पण कर दिये थे।[5]

अपने रसिक प्रियतम को आकृष्ट करने के लिए वे उनके समक्ष प्रेम के घुंघरू बांधकर नाचती थी, पल पल उनका ही स्मरण करती थी और अहर्निश उनके की रग में रगी रहती थी।[6] वे अपने आपको जन्म-जन्म की कुमारी मानती थी, और अपने स्वामी गिरिधारी से शीघ्र मिलने व अपनी लज्जा रखने के लिए खडी-खडी अर्ज किया करती थी।[7] कृष्ण से लगन लग जाने के कारण उन्हे उनके दर्शन की बडी अभिलाषा थी। उनकी मान्यता थी कि कृष्ण ही उनके जनम जनम के साथी हैं और वे ही उनकी प्रीति पिपासा का शमन कर सकते हैं, अतः कृष्ण मिलन की आतुरता मे वे सुहाग के सिंगार सजाती थी तथा अपने लौकिक पति, जो जन्म लेकर मर जाता है, की अपेक्षा वे उस 'सांवरे' को अपनाना चाहती थी, जिससे उनका चूडा (सुहाग) अमर हो जाय।[8]

पूर्व जन्म के शुभ सस्कार से मीरा की यह मनोकामना भी पूर्ण हुई। एक दिन स्वप्न मे मीरा के प्रिय आये और उन्होने उन्हे परिणीता बना दिया। उनके जन्म-जन्म के साथी श्री व्रजनाथ छप्पन करोड बरातियो के साथ दूल्हा बनकर आये, सपने मे तोरण बंधी, सपने मे ही पाणिग्रहण सस्कार हुआ, और सपने मे ही मीरा

---

(१) काशी की प्रति, पद ७१। (२) डाकोर की प्रति, पद ६७ (क) (३) वही, पद ५८ (४) वही, पद २५ (५) वही पद ६६ (६) वही, पद ५६ (७) काशी की प्रति, पद १०२। (८) काशी की प्रति, पद ८६।

'अमरवधू' बन गई ।[1] अपने प्रिय पर आवर्पित हो मीरा ने अपना तन, मन, जीवन सर्वस्व न्यौछावर कर दिया । प्रिय के बिना उनसे पल भर भी नहीं रहा जाता था, न उन्हें खान पान ही सुहाता था, अतः प्रिय के वियोग में प्रतीक्षा करते-करते उनकी आँखें ज्योतिहीन हो गई थी,[2] न घड़ी भर चैन पड़ती थी, न घर सुहाता था, न नींद आती थी । वे विरह विदग्धा घायल सी घूमती फिरती थी, पर कोई भी उनकी अन्तर्वेदना को नहीं जानता था ।[3]

विरहिणी मीरा अटारी पर चढ़-चढ़ कर अपने प्रिय के आने की राह देखा करती थी । कलपते-कलपते उनकी आँखें लाल हो गई थी ।[4] अन्तर्व्यथापीड़ित मीरा की यह दुरवस्था देख लोग उन्हें बुरा-भला कहते थे, उनका उपहास करते थे, उनके लिए कटु शब्दों का उपयोग करते थे, किन्तु मीरा श्री हरि के हाथों बिक गई थी, उनकी जन्म-जन्म की दासी बन गई थी ।[5] लोकापवाद और लोकनिन्दा की शिकार मीरा को उनकी माई (सम्भवतः ललिता) ने बरजने की कोशिश की, किन्तु मीरा ने उससे यही निवेदन किया कि, "हे माई ! तू मुझे मत रोक । मैं साधु-दर्शनार्थ जा रही हूँ । कृष्ण का रूप मेरे मन में बसा है, अतः मुझे उनके अलावा और कुछ नहीं सुहाता ।"[6]

भगवान कृष्ण के प्रति सर्वात्म भावेन समर्पित मीरा को लोगों ने 'बिगडी' कहा,[7] सगे-सम्बन्धियों ने रोका-टोका, पर मीरा निर्भीक भाव से कृष्ण भक्ति में तल्लीन रही । उन्होंने बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा कर दी कि मेरा मन कृष्ण से लगा है और मैंने उनकी शरण गही है । मैं कृष्ण की हूँ, कृष्ण मेरे हैं, अतः उनके लिए मैं अपने प्राणोत्सर्ग तक करने के लिए तत्पर हूँ ।[8]

इससे यह प्रमाणित होता है कि मीरा गिरिधर गोपाल के अतिरिक्त दुनिया में किसी को भी अपना नहीं मानती थी । यों, उनके भाई बन्धु थे, सगे सम्बन्धी थे, पर मीरा ने उन सबसे अपना नाता तोड़ लिया था । तात्कालिक सामन्तशाही शासन-व्यवस्था और राज प्रतिष्ठा की अहम्मन्यता को चुनौती दे वे साधु-सन्तों के बीच बैठकर भगवद् चर्चा करती थी, नाचती और गाती थी । इस तरह से उन्होंने लोक-लाज को तिलांजलि दे दी थी । वे भगवद्प्रेमोन्मत्त, परमार्थ-पथ के पथिक, साधु-सन्तों को देखकर प्रसन्न होती थी और मायामोहादि विकारों के आगार, आत्मपतन के महाद्वार, जन्मजरामरण के मूल आधार संसार को देख बहुत दुःखी हुआ करती थी । उन्होंने अपने अश्रु-जल से सींच सींच कर भगवद्प्रेम की बेलि बोई थी, जो उनके ही सामने खूब पुष्पित और फलित हो गई थी । कृष्ण प्रेम के दही को मथकर उन्होंने ईश्वरानुराग रूपी घी निकाल लिया था और भक्ति के प्रपंचात्मक छाछ को

(१) डाकोर की प्रति, पद ३६ । (२) वही, पद १८ । (३) वही, पद २१ । (४) वही, पद ४३ । (५) काशी की प्रति, पद ८६ । (६) डाकोर की प्रति, पद ३७ । (७) वही, पद १५ । (८ डाकोर की प्रति, पद-६० ।

छोड दिया था। उनके क्षात्र धर्म विरोधी आचरण से क्रुद्ध हो राणा ने उन्हे विष का प्याला भेजा, जिसे वे हंसते-हंसते पी गईं।[1] राणा ने उन्हे कामोन्मत्त समझकर कई प्राणान्तक कष्ट दिये।[2] उन्होंने एक पिटारी मे काला नाग भेजा, पर मीरा को उसमे सर्प के स्थान पर 'सालिग्राम' की प्राप्ति हुई।

जब मीरा की सखी (ललिता) ने मीरा को राणा के कोप से बचने के लिए समझाने बुझाने का प्रयत्न किया, तो मीरा ने कहा कि, हे माई! मैं गोविन्द के गुण गाती हूँ। राजा रूठेगा तो अपना नगर रख लेगा (अर्थात् मुझे नगर से बाहर निकाल देगा), किन्तु यदि हरि रूठ गये तो फिर त्रिलोक मे मुझे कही भी ठौर ठिकाना नही मिलेगा।[3]

अन्ततोगत्वा अन्तर्पीडा, सासारिक क्लेश और रूठे हुए राणा से संत्रस्त हो मीरा नगर-नरेश सबको त्याग अपने प्रियतम की खोज मे चल दी। आन्तरिक आकुलता से अनुस्यूत मूर्तिमान विरह की तप और मिलनातुर आत्मा के उच्छ्वास उनकी सांसों में गूंजने लगे। वे वृन्दावन पहुँची और उन्होने श्री बाके विहारीजी[4] तथा श्री मदनमोहनजी के दर्शन[5] किये। भगवान कृष्ण की लीला भूमि के नैसर्गिक सौन्दर्य और पावन परिवेश मे मीरा की वृत्ति खूब रमी और उन्होंने भाव विह्वल वाणी मे वृन्दावन के स्थानीय सौन्दर्य की सराहना की।[6]

सांवरिया की खोज मे वे वृन्दावन की कुज गलियो मे भटकती रहीं और जहाँ जहाँ श्री हरि ने लीलाएं की थीं, धरती के जिस जिस भूभाग का उनकी चरण-रज के स्पर्श का सद्भाग्य मिला था, वहां-वहाँ वे भाव विभोर हो नृत्य करती[7] हुई वृन्दावन से द्वारका पहुँची। द्वारका मे उन्होने रणछोडजी के दर्शन किये,[8] 'असरण-सरण' प्रिय से बांह गह की लाज रखने के लिए प्रार्थना की[9] और श्री हरि ने अपनी अनन्य साधिका की 'भार' हरने के लिए उस—बांह पकडकर भवसागर से उबार लिया।[10] इस तरह से प्रिय प्रेम विकल मीरा कृष्णमय हो गई।

(ख) मीरा की जीवनी के बहिरंग साधन

(अ) प्राचीन भक्तों द्वारा मीरा विषयक उल्लेख—मीरा की प्रामाणिक पदावली मे उनके जीवन के सम्बन्ध मे जो अन्त:साक्ष्य विद्यमान हैं, उनके विरोध के लिए कही कोई संभावना नहीं है, किन्तु अनेक भक्तो, कवियो, लेखको, समीक्षकों और संशोधको ने अपनी अपनी रचनाओं मे मीरा के बारे में जो भाव, विचार, घटना-प्रसंग और मन्तव्य प्रकट किये हैं वे भी मीरा के व्यक्तित्व और कृतित्व को जांचने-परखने के लिए पर्याप्त उपादेय हैं। यथा—

---

(१) वही, पद-१। (२) वही, पद ४८। (३) वही, पद-६१ (४) वही, पद-४। (५) वही, पद ५ (६) डाकोर की प्रति, पद ८। (७) वही, पद ५७। (८) वही, पद ६५। (९) वही, पद ९८। (१०) वही, पद ६६।

महात्मा व्यासदास

हितहरिवंश के शिष्य महात्मा व्यासदास (संवत् १५६७ से १६३० तक) का मूल नाम हरिराम शुक्ल था। इन्होंने 'बानी' में सेना नाई, धन्ना जाट, नामदेव, पीपा, कबीर, रैदास, रूप सनातन के सेवक गंगल भट्ट, सूरदास, परमानंददास के साथ मीरां को भी अपने भक्त परिवार में परिगणित करते हुए लिखा है कि

> इतनो है सब कुटुम हमारो।
> सेन, धना अरु नामा, पीपा, कबीर, रैदास चमारो॥
> रूप सनातन को सेवक गंगल भट्ट सुढारो।
> सूरदास, परमानद, मेहा, मीरा भक्ति विचारो।

एक अन्य पद में व्यास जी ने मीरां के स्वभाव का परिचय देते हुए लिखा है कि

> मीराबाई बिनु को भक्तिनि पिता जानि उर लावै।

नाभादास और प्रियादास

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित 'श्री नाभादासजी कृत भक्तमाल सटीक' में २४५ भक्तों का परिचय २०२ कवित्त और १२ दोहों में दिया गया है। भक्तमाल की रचना संवत् १६४२ के बाद हुई। संवत् १७६८-६६ में नाभादासजी के शिष्य प्रियादास ने भक्तमाल पर ६३१ कवित्तों में 'भक्तिरसबोधिनी' नाम की टीका लिखी। नाभादासजी ने लिखा है कि—

> सदृस गोपिका प्रेम प्रगट कलिजुगहिं दिखायो।
> निर अंकुस अति निडर रसिक जस रसना गायो॥
> दुष्टन दोष विचार मृत्यु को उद्दिम कीयो।
> बार न बांको भयो गरल अमृत ज्यों पीयो॥
> भक्ति निसान बजाय कै, काहू ते नाहिन लजी।
> लोक लाज कुल श्रखला, तजि मीरा गिरिधर भजी॥[1]

प्रियादास जी ने दस कवित्तों (सख्या ४६७ से ४७६ तक) में उक्त छंद की टीका लिखी है, जिसमें मीरां के बारे में अनेक बातों का उल्लेख किया गया है। प्रियादास जी के अनुसार मीरां की जन्म भूमि मेड़ता थी। बचपन से ही उनका मन कृष्ण प्रेम में रँग गया था। मीरां का विवाह राणा (?) से हुआ था। ससुराल में मीरां ने सास के कथनानुसार कुलदेवी की पूजा नहीं की, जिससे सास रूठ गई और राणा ने उन्हें रहने के लिए अलग महल दिया। उक्त महल में मीरां कृष्ण की पूजा और संत सत्संग किया करती थी। मीरां का संत समागम उसके पितृकुल और श्वसुरकुल दोनों की प्रतिष्ठा था, अत मीरां की ननद ने उन्हें चेतावनी दी, किंतु मीरां पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। राणा ने मीरां के लिए विष का प्याला भेजा। मीरां उसे

---

(१) श्री नाभादास जी कृत भक्तमाल सटीक, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, पाँचवीं बार, सन् १६४० ई०, पृष्ठ २४७ छंद क्रमांक ११५।

पी गई, पर उनका बाल भी बाँका न हुआ। मीरा पर ध्यान रखने के लिए राणा ने गुप्तचर नियुक्त किये। भावावेश मे गिरिधर नागर से सलाप करती हुई मीरा को किसी से एकात में रस-रंग-मग्न समझ राणा हाथ मे नंगी तलवार लेकर आए, किंतु वहाँ कृष्ण की प्रतिमा के अतिरिक्त अन्य किसी को न पाकर खिसिया कर लौट गए।

एक कुटिल विषयी, साधु-वेष मे आया परन्तु परम साध्वी मीरा ने सत-समाज मे उसकी विषय-वासना का पर्दाफास कर दिया। मीरा के रूप-सौन्दर्य की चर्चा सुन अकबर बादशाह तानसेन के साथ उनके दर्शनार्थ आया और उसने मीरा के 'गिरधर' के चरणो मे एक 'सुखजाल' चढाया।

मीरा वृन्दावन गई और जीवगोस्वामी जी से मिली। उन्होंने गोस्वामीजी के त्रियामुख न देखने का प्रण छुड़ाया तदनन्तर राणा की मलीन मति देख वे वृन्दावन से द्वारका चली गई। राणा ने मीरा को लौटा लाने के लिए ब्राह्मणों को भेजा, पर मीरा ने उनकी एक न सुनी। इसपर ब्राह्मणो ने धरना दिया तो मीरा रणछोडजी से विदा लेने के लिए मंदिर मे गई और उन ही मे लीन हो गई।

प्रियादास जी की टीका में मीरा विषयक तात्कालिक किंवदतियों और जन-श्रुतियो का समावेश स्पष्टतः दिखाई देता है।

ध्रुवदास

राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रस्तोता ध्रुवदासजी हितहरिवंशजी के शिष्य थे। इन्होने संवत् १६६० से १७०० के बीच छोटे बड़े ४४ ग्रंथ लिखे। भक्तनामावली मे इन्होंने मीरा के बारे मे चार दोहे लिखे हैं :—

लाज छाँड़ि गिरिधर भजी, करी न कछु कुल कानि।
सोई मीरा जग विदित, प्रगट भक्ति की खानि॥
ललिता हू लइ बोलि कै, तासौं हो अति हेत।
आनद सो निरखत फिरे, वृन्दावन रस खेत॥
नृत्यत नूपुर बाँधि के, नाचत लै करतार।
विमल हियौ भक्तनि मिली, तृन सम गन्यो संसार॥
बन्धुनि विष ताको दियौ, करि विचार चित आन।
सो विष फिरि अमृत भयौ, तब लागे पछितान॥

उक्त दोहोंमें मीरा के भक्त-रूप की अविकृत प्रतिच्छवि अंकित की गई है। ध्रुवदास के दोहों की नवीनता यह है कि उन्होंने सबसे पहले मीरां की उस सखी ललिता का नामोल्लेख किया है, जो आजीवन मीरा के साथ रही। इसी ललिता ने मीरा की प्रामाणिक पदावली की डाकोर की हस्तलिखित प्रति लिखी थी।[१]

---

१ मीरा की भक्ति और उनकी काव्य-साधना का अनुशीलन-डॉ० भगवानदास तिवारी, पृष्ठ ८१-८२।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता

चौरासी तथा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के रचयिता गोस्वामी गोकुलनाथ जी (संवत् १६०८ से संवत् १६६० तक) माने जाते हैं। गोस्वामी जी के शिष्य हरिराय जी न मूल वार्ताओं पर 'भाव-प्रकाश' टीका लिखी है। वस्तुतः ये वार्ताएँ पुष्टिमार्गीय पुराण हैं, जिनमे महाप्रभु वल्लभाचार्य और उनके सुपुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्यो से सम्बद्ध विविध प्रसग व्रजभाषा गद्य मे लिखे गए है। चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे तीन स्थलो पर मीरा का उल्लेख है--

(१) 'गोविन्द दुबे साचोरा ब्राह्मण, तिनकी वार्ता--साचोरा ब्राह्मण गोविन्द दुबे पुष्टिमार्गीय साधक थे, जो कई दिनो से मीरा के यहाँ भगवत्वार्ता करते-करते ठहरे थे। वल्लभाचार्य जी को दुबेजी का मीरा के यहाँ अटके रहना पसन्द नही आया, इसलिए उन्होने एक व्रजवासी के हाथो एक श्लोक लिखकर भेजा, जिसे पढते ही दुबेजी तत्काल वहाँ से चल दिये। मीरा के अनुरोध करने पर भी दुबेजी ने पीछे मुडकर नही देखा।[१]

(२) मीरां बाई के पुरोहित रामदास, तिनकी वार्ता--एक दिन पुष्टिमार्गीय पुरोहित रामदास जी मीरा के ठाकुरजी के समक्ष कीर्तन कर रहे थे। उन्होंने श्री आचार्य जी महाप्रभून (श्री वल्लभाचार्य जी) का पद गाया। रामदास जी महाप्रभु को भी आराध्य ही मानते थे, परन्तु मीराबाई महाप्रभु जी को आचार्य और ठाकुर जी को आराध्य मानती थी, इसलिए उन्होने रामदास जी से ठाकुर जी का दूसरा पद गाने के लिए प्रार्थना की। महाप्रभु और ठाकुर जी मे मीरा की भेद बुद्धि देख रामदास जी बिगड खडे हुए, बोले--जो अरे दारी राड! यह कौन को पद है। यह कहा तेरे खसम को मूँड है जो जा आज से तेरो मुँहडो कबहूँ न देखूँगो[२] · ··

इस तरह से आक्रोशपूर्ण अशिष्ट व्यवहार कर रामदास जी पुरोहित मीरा के यहाँ से विदा हो गये।

(३) कृष्णदास अधिकारी, तिनकी वार्ता--मीराबाई के यहाँ हरिवंश, व्यास आदि वैष्णव दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह दिनो से ठहरे थे। तभी कृष्णदास अधिकारी द्वारका से लौटते हुए मीराबाई के यहाँ आये। मीरा ने उनका यथोचित आदर-सत्कार किया और उन्होंने भेंट मे मोहर देना चाही। कृष्णदास जी ने मीरां की भेंट अस्वीकार करते हुए कहा--जो तूं श्री आचार्य जी महाप्रभून की सेवक नाही होत, ताते तेरी भेंट हम हाथ ते छूवेंगे नाहीं।[३]

और कृष्णदास अधिकारी उलटे पैरो लौट गए।

---

(१) चौरासी वैष्णवन की वार्ता डाकोर संस्करण, संवत् १६६०, पृष्ट १२६-१२७, (२) वही, पृष्ठ १६१-१६२। (३) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास--डॉ० रामकुमार वर्मा, तृतीय संस्करण, सन् १६५४, पृष्ठ ५७३।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में दो स्थलो पर मीरा से सम्बन्धित उल्लेख हैं—

(१) श्री गुसाईं जी के सेवक हरिदास बनिया, तिनकी वार्ता—गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के शिष्य हरिदास बनिया मेड़ता-निवासी थे। उस गाँव के राजा जयमल थे। एक बार गोस्वामी जी हरिदास बनिया के घर पधारे। राजा जयमल का घर हरिदास बनिया के घर के सामने था। राजा जयमल की बहिन ने 'बारी' में से 'गुसाईं जी के दर्शन किए और पत्र द्वारा बिनती कर वे उनकी 'सेवक' हुईं। वार्ताकार ने पत्र द्वारा दीक्षा लेने का कारण यह लिखा है कि राजा जयमल की बहिन पर्दे मे से बाहर नही निकलती थी, इसलिये वे पत्र द्वारा सेवक हुईं।[1]

जयमल की किसी सगी बहिन का उल्लेख इतिहास-ग्रन्थों मे नही मिलता। मीरा जयमल की चचेरी बहिन थी, पर वे विमुक्त भाव से सत-समाज मे भजन, पूजन, नृत्य और गायन करती थीं। वे कभी पर्दे मे नही रही और न कभी उन्होने गोस्वामी विट्ठलनाथ से दीक्षा ही ग्रहण की। अस्तु, जहाँ तक मीरा का सम्बन्ध है, यह वार्ता पूर्णत अप्रामाणिक है।

(२) श्री गुसाईं जी के सेवक अजबकुँवरबाई, तिनकी वार्ता—मीराबाई की दवरानी अजबकुँवरबाई मेड़ता मे रहती थीं। एक बार श्री गुसाईं जी मेड़ता पधारे, तब अजबकुँवरबाई उनकी सेविका बनी।[2]

मीरा की किसी देवरानी का नाम अजबकुँवरबाई नही था। सभवत ये रामकुवरबाई हो, जो मीरा के देवर विक्रमादित्य की रानी थीं।

वार्ता साहित्य के उपरोक्त प्रसगो को देखते हुए यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि मीरा न तो वल्लभाचार्य की शिष्या थी, न गोस्वामी विट्ठलनाथ की। दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता वाली 'जैमल राजा की बेन' भी मीरा नही थी। वल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णवो के प्रयत्न करने पर भी मीरा वल्लभ सम्प्रदाय मे दीक्षित नहीं हुईं।

तुकाराम

महाराष्ट्र के सत शिरोमणि तुकारामजी ने उद्धव, अक्रूर, व्यास, निवृत्तिनाथ ज्ञानदेव, सोपान, चांगदेव, नामदेव, रैदास, कबीर, सुरदास, चोखामेला आदि सतो की परपरा में मीरा के प्रति भी अपनी श्रद्धा भक्ति[3] ज्ञापित की है।

---

(१) २५२ वैष्णव की वार्ता—वैष्णव रामदास जी गुरु श्री गोकुल दास जी ने छपवाया, रणछोड़ पुस्तकालय, डाकोर, सवत् १९६०, पृष्ठ ६४-६५ (२) वही, पृष्ठ १०६ १०७। (३) श्री तुकाराम बावाच्या अभगाची गाथा, बम्बई सरकार प्रकाशन, पृष्ठ २७०-२७१ अभग क्रमांक १५६८।

दादूपंथी राघवदास और चत्रदास

दादूपंथी राघवदासजी ने आषाढ शुक्ल ३, संवत् १७१७ को भक्तमाल की रचना की, जिस पर चत्रदास जी ने संवत् १८५८ में टीका लिखी।

वस्तु-वर्णन की दृष्टि से नाभादास और राघवदास के छंद तथा प्रियादास और चत्रदास की टीकाएँ मिलती-जुलती हैं।[१]

नागरीदास

नागरीदास जी का मूल नाम सामंतसिंह था। इनका जन्म संवत् १७५६ में उसी राठौड वंश में हुआ था, जिसमें मीरा पैदा हुई थी। छोटे भाई बहादुर सिंह द्वारा राज्य छीन लिए जाने पर ये विरक्त हो मथुरा चले गये और सामंतसिंह से नागरीदास बन गए। ये संस्कृत, फारसी और व्रज भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। 'पद प्रसंग माला' में इन्होंने विविध पदों के सन्दर्भ में ३६ भक्तों की भावुकतापूर्ण जीवनियां लिखी हैं। नागरीदासजी ने तद्युगीन व्रजभाषातरित मीरा-पदावली के आधार पर मीरा के वैधव्य, विष्पपान, वृंदावन-गमन, द्वारकावास तथा रणछोड जी के मंदिर में शरीर-त्याग के प्रसंगों की चर्चा की है।[२]

चरणदास

चरणदासी सम्प्रदाय के प्रणेता चरणदास जी (संवत् १७६०-१८३९) ने "शबद' नामक संग्रहग्रंथ में मीरा के बारे में लिखा है कि—

दास मीरा पत्नी प्रेम सनमुख चली छोड दई लाज कुल नाहिं माना।[३]

दयाबाई

दयाबाई और सहजोबाई चरणदासजी की शिष्याएँ थी। चरणदासी-सम्प्रदाय के एक ग्रंथ 'विनयमालिका' में 'दयादास' छाप से दयाबाई ने मीरा के सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहा लिखा है—

विष का प्याला घोरि के, राणा भेज्यो छान।
मीरां अचयो राम कहि, हो गयो सुधा समान।।[४]

नन्दराम

किसी मीरा-प्रशंसक, कृष्णोपासक कवि नंदराम ने एक बारहमासा[५] लिखा है, जिससे पता चलता है कि मीरा का जन्म मेडता में राठौड वंश में हुआ था। वे चित्तौड के सीसोदिया कुल में ब्याही गई थी। सत-समागम और कृष्ण भक्ति के कारण राणा ने उन्हें विषपान कराया, खूंटी पर सर्प की माला टाँगकर मीरा के प्राणांत का प्रयास किया। सास-ननद ने उन्हें समझाने का यत्न किया, किंतु उसका मीरां पर

---

(१) राघवदास कृत भक्तमाल–हस्तलिखित पत्र ६३-६५ तक। टीका चतुरदास कृत। (२) देखिए–मीरां की भक्ति और उनकी काव्य साधना का अनुशीलन—डॉ० भगवानदास तिवारी, पृष्ठ ६१-६५। (३) वही, पृष्ठ ६५-६६। (४) वही, पृष्ठ ६६। (५) मीरा-माधुरी—ब्रजरत्नदास, भूमिका, पृष्ठ ५१-५३।

रचमात्र भी प्रभाव नही हुआ । अंततः राणा स्वयं तलवार लेकर मीरा को मारने के लिए गये, किन्तु भगवद्लीला से एक को सौ मीराएं हो गई, अत राणा आश्चर्य चकित हो लौट गये ।

खेद है कि इस बारहमासे मे कही भी मीरा के माता, पिता, पति, श्वसुर, सास या तथाकथित 'राणाजी' मे से किसी एक का भी नाम निर्देश नही है ।

(आ) अन्य स्रोत

प्रोणधन[1] ने मीरा के विषपान का, बख्तावर[2] ने मीरा की भगवद् भक्ति का, जन लछमन[3] ने रणछोड़ जी के मंदिर मे ब्राह्मणो द्वारा धरना देने पर मीरा के कृष्णमय हो जाने का और श्री सुन्दरदास कायस्थ[4] ने मीरा के विषपान और उनकी प्रेमा भक्ति का उल्लेख किया है । किसी अज्ञातनाम मैथिल द्विज[5] ने सस्कृत मे 'भक्तिमाहात्म्य चरित्रम्' लिखा है, जिसपर नाभादास के भक्तमाल की प्रियादास कृत टीका तथा दादूपंथी राघवदास कृत भक्तमाल पर चतुरदास कृत टीका का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है ।

मीरा की जीवनी के बहिरंग साधनो मे लोकगीतो, कहानियो, जीवनियो[6] नाटक[7] और महाकाव्य[8] का भी समावेश किया जा सकता है, किन्तु कल्पना और सत्य के समायोजन के कारण इनमें व्यक्त घटना प्रसगो एवं मन्तव्यो को मीरा की जीवनी के लिए प्रामाणिक इतिहास नही माना जा सकता । मीरा पदावली के सपादित संस्करणो, हिन्दी साहित्य के इतिहास-ग्रन्थो, मीरा के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालने वाली समीक्षात्मक पुस्तकों की भी यही अवस्था है ।

(इ) मीरा का ऐतिहासिक जीवनवृत्त

देश प्रेम, त्याग, शौर्य और बलिदान की पुनीत भावनाओ के लिए आत्मोत्सर्ग करने वाले बाप्पा रावल, राणा सांगा, जयमल, पुत्ता, राव जोधाजी, मालदेव राणा प्रताप आदि राजस्थानी वीरों का जहाँ ऐतिहासिक महत्त्व है, वही पद्मिनी, हाडी रानी, पन्नादाई आदि रमणी रत्नो का भी भारतीय इतिहास मे सतीत्व और कर्त्तव्य-निष्ठा के लिए असाधारण महत्त्व है । हमारे इतिहास मे अनेक राजस्थानी वीरों और कवियों के नाम स्वर्णाक्षरो मे अंकित हैं । इसी परम्परा मे वीरश्रेष्ठ रत्नसिंह की पुत्री, तलवार के धनी भक्त जयमल की चचेरी बहन और हिन्दुआ-कुल सूर्य राणा-सांगा की पुत्रवधू 'मीरा' का नाम भी चिर-स्मरणीय है । राजस्थान के तीर, तलवार

---

(१) मीरां की भक्ति और उनकी काव्य-साधना का अनुशीलन डॉ० भगवानदास तिवारी, पृष्ठ १०० । (२) वही, पृष्ठ १०० । (३) वही, पृष्ठ १०० । (४) वही पृष्ठ १०० । (५) वही, पृष्ठ १०१ । (६) वही, पृष्ठ १०१-१०३ । (६) मीराबाई का चरित्र-बांधवेश रघुराज सिंह, राम रसिकावली, पृष्ठ ८६१-८७६ । (७) मीरा (मौलिक नाटक)—गोकुलचद शास्त्री, संत । (८) मीरा महाकाव्य—श्री परमेश्वर द्विरेफ ।

और मारू बाजों के गगन भेदी उद्घोष के बीच उनके घुंघरुओं का मृदुल स्वर, करताल और इकतारे की झंकार तथा पुकार सा प्यार भरना सा आपूर्ण कोमल कान्त पदावली का अपना निजी महत्व है।

राजस्थानी कहावत 'नांव तो मीतड़ा के गीतड़ा सू रेवे' के अनुसार मीरां के गीत ही उनके कालजयी कीर्ति-स्तम्भ हैं। आत्मनिष्ठ अनुभूतियां सु ओतप्रोत विशुद्ध काव्य की दृष्टि से उन्हें विश्व के किसी भी श्रेष्ठ कवि या कवयित्री की रचना के समकक्ष मान्यता दी जा सकती है। काव्य की ही भांति, मीरां के नाम, उनके ऐतिहासिक जीवन और कृतित्व के सम्बन्ध में 'पिण्डे पिण्डे मतिर्भिन्ना' के अनुसार विद्वानों में भारी मतभेद है।

"मीरां"-नाम

'मीरां' शब्द और मीरां के नाम को लेकर सबसे पहले डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने शंका की। कबीर की तीन साखियों[1] में 'मीरां' शब्द का प्रयोग देख डॉ० बड़थ्वाल ने 'मीरां' शब्द को फारसी के 'मीर' शब्दों से व्युत्पन्न माना। उनके मत से 'मीरा' ईश्वरवाची शब्द का पर्याय और सन्तों द्वारा प्रदत्त उपनाम था। उन्होंने 'मीराबाई' का अर्थ ईश्वर की पत्नी समझा और गेय पद परम्परा के आधार पर मीरा को कबीर एवम् रैदास से प्रभावित सिद्ध करने का प्रयास किया।[2]

श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ ने डॉ० बड़थ्वाल का समर्थन किया तथा 'मीरा' को फारसी के 'मीर' का बहुवचन रूप कहा।[3] श्री हरिनारायणजी पुरोहित ने अरबी भाषा के अम्र से अमीर, अमीर का संक्षिप्त रूप मीर, और मीर का बहुवचन 'मीरा' कहकर[4] इस किंवदन्ती का समर्थन किया कि अजमेर के मीरा शाह की मनौती के कारण मीरा का जन्म हुआ, अत उनके माता पिता ने उनका नाम मीराबाई रखा।

ऐतिहासिक दृष्टि से भक्तशिरोमणि मीरा के जन्म और नामकरण का अजमेर वाले मीरा हुसेन खग सवार उर्फ मीरा साहब से कोई सम्बन्ध नहीं है। मीरा की मृत्यु के बाद मीरा हुसेन खग सवार की ख्याति संवत् १६१८ स बढ़ी जब स्वयं पातसाह अकबर वहां गये थे।[5]

मीरा के समकालीन राव मालदेव की पांचवीं पुत्री का नाम मीराबाई था, अतः मीरां को व्यक्तिवाचक संज्ञा बतलाते हुए श्रीमहावीरसिंह गहलोत ने मीरा शब्द

(१) कबीर ग्रंथावली संपादक, श्यामसुन्दरदास, पृष्ठ १४, साखी १६; पृष्ठ ५२, साखी-२१; पृष्ठ ८५ साखी ८५। (२) मीराबाई नाम-डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, सरस्वती, भाग ४०, अंक-३, पृष्ठ २११-२१३। (३) देखिए-संतवाणी पत्रिका, वर्ष १, अंक ११, पृष्ठ २४। (४) वही, अंक ११, पृष्ठ-४२। (५) अजमेर हरविलास सारडा, पृष्ठ ५६।

का अर्थ 'सागर' या 'महान' किया।[१]

डॉ० मंजुलाल मजूमदार ने संस्कृत भविष्य महापुराण में मीरा का उल्लेख बतलाते हुए दो श्लोक उद्धृत किये--

मानकाशे नारी भावात् नारी देह मुपागतः।
मीरा नामेति विख्याता भूते स्तनया शुभा॥
मा शोभा च तनौ तस्या, गतिगंज समाकिल।
सा मीरा च बुधै प्रोक्ता, मध्वाचार्य मते स्थिता॥[२]

प्राप्त प्रमाण और इतिहास के आधार पर मीरा मध्वाचार्य मतानुयायिनी नही थी, संस्कृत भविष्य महापुराण का उपरोक्त उद्धरण अविश्वसनीय है।

गुजराती के प्रसिद्ध विद्वान श्री केशवराम काशीराम शास्त्री ने 'मीरा' को संस्कृत के मिहिर > मिहिरा > मिहरा > मीरा के रूप में व्युत्पन्न माना और 'आ' ध्वनि स्त्रीवाची यथा रूपा, तेजा, शोभा आदि नामो की द्योतक समझकर 'मीरा' को मिहिर से व्युत्पन्न स्त्रीवाची संज्ञा कहा। शास्त्रीजी ने मइहर का अर्थ गाँव का अगुआ लेकर मइहर > मईहर > मीअर > मीरा > मीरा की दूसरी सभावित व्युत्पत्ति भी प्रस्तुत की।[३]

श्री शंभुप्रसाद जी बहुगुणा ने श्री के० का० शास्त्री के मत का खंडन करते हुए 'मीरा' शब्द को मिहिरोत्पन्न माना।[४] बाबू ब्रजरत्नदास जी ने फारसी के मीर, अंग्रेजी के मेअर (MERE), जर्मन और डच भाषाओं के मीर (MEER), लेटिन के मेअर तथा फ्रेंच के मेर (MER) या मेअर शब्दों का अर्थ समुद्र बतलाते हुए आप्टे के संस्कृत कोश के अनुसार मीरः का अर्थ समुद्र और मीरा का अर्थ नदी या जल किया है। यही नहीं, उन्होने यह भी कहा है कि मीर या मीरा शब्द संस्कृत है और इसी से यूरोपीय भाषाओं में गया है।[५]

मीरा-स्मृतिग्रंथ मे आचार्य ललिता प्रसाद सुकुल ने संस्कृत कोश के अनुसार 'मीर' का अर्थ जलराशि, समुद्र और एकाक्षर कोष के अनुसार 'ता' का अर्थ लक्ष्मी मिला कर मेड़ता का अर्थ मीर+ता किया। मेड़ता के आसपास सुन्दर झीलें है, अतः मीरा का अर्थ यदि मीर=जलाशय के सन्दर्भ मे लिया जाय और 'ता' का अर्थ सौन्दर्य, ऐश्वर्य (लक्ष्मी के उपादान) माना जाय तो मीरा का अर्थ सुंदरतम जलाशय होगा। सरिता, झील आदि के नाम पर लड़कियो के नाम रखने की परंपरा इस देश

---

(१) मीरां : जीवनी और काव्य--महावीरसिंह गहलोत, पृष्ठ १७,। (२) संस्कृत भविष्य महापुराण, प्रतिसर्ग, अध्याय २२, श्लोक ४१, ४२। (३) मीरांबाई नाम-श्री के० का० शास्त्री, बुद्धि प्रकाश, अक्टूबर-दिसंबर, १६३६, पृष्ठ ४२०। (४) जनम जोगिण मीरां शंभुप्रसाद बहुगुणा, मीरां स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ५३-५४। (५) मीरां-माधुरी-ब्रजरत्नदास, भूमिका, पृष्ठ ११२-११४।

मे अतः राव दूदा ने अपनी पौत्री के अलौकिक सौन्दर्य से प्रेरित हो मेडते की सुदरतम भील के आधार पर उसे 'मीरा' कहा होगा।[१]

'मीरा' शब्द को लेकर विद्वानो ने उसकी व्युत्पत्ति के लिए इस तरह के जो मत-मतान्तर प्रस्तुत किये हैं, उन्हे देखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मीरा के परिवार वालो न मीरा का नामकरण करते समय अरबी, फारसी, लैटिन, जर्मन, फ्रेंच, संस्कृत के शब्द कोशो का अन्तर्मंथन नही किया था। डॉ० बड्थ्वाल की धारणा के अनुसार 'मीरा' उपनाम या उपाधि भी नही था। मीरा राजस्थान मे प्रचलित एक सामान्य नाम था। राव मालदेव की पांचवी पुत्री का नाम मीरा था।[२] गुजरात मे मीरा नाम की दो कवयित्रियाँ हुई हैं।[३] डाकोर और काशी की हस्तलिखित प्रतियो मे भी 'मीरां' शब्द ही व्यवहृत है, अत 'मीरा' का मूल नाम 'मीरां' ही मानना चाहिए। आजकल 'मीरां' की अपेक्षा हिन्दी मे 'मीरा' नाम चल रहा है। 'मीरा' के नाम को लेकर खडे हुए वितण्डवाद का यही संक्षिप्त स्वरूप है।

जन्मस्थान

मीरां का जन्म मेडता मे हुआ। मेडता अजमेर से ४० मील पश्चिम तथा जोधपुर से ८० मील उत्तर पूर्व मे है। जोधपुर रेलवे का स्टेशन मेडता सिटी के नाम मे प्रसिद्ध है। इसका मूल नाम महारेता या मान्धातृपुर कहा जाता है, जिसका अपभ्रष्ट रूप मेडतक या मेडता हुआ। कई सहस्र पूर्व राजा माधाता ने इसे बसाया था।[४] *मेडता जन्मभूमि के कारण ही मीरा अपने श्वसुर कुल मे 'मेडतणी राणी' के* नाम से पुकारी जाती थी।

माता-पिता और वंश-परिवार

जोधपुर बसाने वाले राव जोधाजी के पुत्र रावदूदाजी के चतुर्थ पुत्र राव रत्नसिंह (जीवनकाल संवत् १५३१ से १५८४) मीराबाई के पिता थे। इन्हे कुडकी (चौकडी) बाजोली आदि बारह गाँव जागीर मे मिले थे। राव रत्नसिंह कुडकी मे ही रहते थे। श्री विद्यानद शर्मा डीडवाना के अनुसार "मीराबाई की माता का नाम कुसुमकुंअर था। वे टाकनी राजपूत थी। मीरा के नाना कैलनसिंह थे।"[५] भक्तप्रवर जयमल (जीवनकाल सवत् १५६४-१६२४) मीरा के चचेरे भाई थे। राव वीरमजी, जयमल के पिता और मीरा के चाचा थे। मीरा के जीवनकाल मे उनकी माता के अतिरिक्त राव दूदा (मृत्यु-संवत् १५७२), राव रत्नसिंह (कन्हवा का युद्ध, सवत् १५८०) और राव

---

(१) मीरा निरुक्त-आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, मीरा-स्मृति-ग्रंथ, परिशिष्ट, पृष्ठ-४२। (२) जोधपुर राज्य का इतिहास महामहोपाध्याय गौरीशकर हीराचंद ओझा, खण्ड-१ पृष्ठ ३२६। (३) मीरां जीवनी और काव्य-महावीर सिंह गहलौत, भूमिका, पृष्ठ १६। (४) मारवाड राज्य का इतिहास-जगदीशसिंह गहलौत, पृष्ठ ३१३-३१४। (५) मीरा के जीवनवृत्त का स्थानीय साक्ष्य-विद्यानद शर्मा डीडवाना, मीरा-स्मृति ग्रंथ, परिशिष्ट क (५), पृष्ठ ५१।

वीरमदेव (मृत्यु संवत् १६००) की मृत्यु हुई थी। चित्तौड़ और मेड़ता दोनों ने उत्थान-पतन के भले बुरे दिन देखे थे।

जीवनकाल

ऐतिहासिक पुष्ट प्रमाणों के अभाव में मीरा का जीवनकाल अत्यंत विवादास्पद है। कर्नल जेम्स टॉड[1] और सर जॉर्ज ग्रियर्सन[2] ने मीरा को राणा कुंभा की पत्नी माना है, किंतु मीरा के जन्म से २५-३० वर्ष पूर्व राणा कुंभा का निधन हो गया था, अतः मीरा को राणा कुंभा की पत्नी मानना भ्रम है।[3]

महामहोपाध्याय प० गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने मीरा के पिता का नाम रत्नसिंह, जन्म संवत् १५५५, विवाह संवत् १५७३ और मीरा के पति का नाम कुँवर भोजराज लिखा है, जो महाराणा सांगा के युवराज थे।[4] श्री हरविलास सारडा ने ओझाजी द्वारा प्रदत्त संवतों का समर्थन करते हुए मीरा की निधन तिथि संवत् १६०३ दी है।[5] श्रीमती विष्णुकुमारी मंजु, डॉ० धीरेंद्रवर्मा ने मीरा का जन्म संवत् १५६० माना है। श्री नरोत्तमदास स्वामी ने मीरा का जन्म संवत् १५६० ६१ लिखा है।[6] एनसायक्लोपीडिया ब्रिटानिका[7] और फार्कुहर के 'आउटलाइन ऑफ द रेलिजस लिटरेचर ऑव् इण्डिया'[8] के आधार पर मेक्स आर्थर मेकॉलिफ ने मीरा का जन्म संवत् १५६१ माना है।[9]

मिश्र बन्धुओं[10] और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[11] ने भ्रमवश मीरा के विवाह संवत् १५७३ को ही मीरा का जन्म संवत् मान लिया है, जो अशुद्ध है। सामान्यतः अधिकांश विद्वान मीरा का जन्म संवत् १५५५ से १५६१ के बीच मानते हैं। ऐसी दशा में मीरा का जन्म संवत् १५६० मानना अधिक युक्तियुक्त है। इस हिसाब से मीरा के जन्म के समय उनके श्वसुर राणा सांगा की आयु २१ वर्ष की होती है। यदि राणा सांगा को प्रथम पुत्री पद्मावती का जन्म उनकी आयु के सोलहवें वर्ष (संवत् १५५५) में, कुंवर पाटवी (युवराज) भोजराज का जन्म उसके दो वर्ष बाद संवत्

---

(१) एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑव् राजस्थान कर्नल जेम्स टाड, भाग २, पृष्ठ ८५६ और ९४६। (२) द मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑव हिंदुस्तान सर जॉर्ज ग्रियर्सन, पृष्ठ १२। (३) मीरांबाई का जीवनचरित्र-मुंशी देवी प्रसाद, पृष्ठ २८-२९। (४) उदयपुर राज्य का इतिहास म म गौरीशंकर हीराचंद ओझा, भाग १ पृष्ठ ३५८, जोधपुर राज्य का इतिहास वही, भाग १ पृष्ठ २५३। (५) महाराणा सांगा हरविलास सारडा, पृष्ठ ९५-९६। (६) मीरा मन्दाकिनी—नरोत्तमदास स्वामी, प्रस्तावना, पृष्ठ ३। (७) एनसायक्लोपीडिया ब्रिटानिक, भाग ६, पृष्ठ २०५। (८) आउटलाइन आव द रेलिजस लिटरेचर ऑव् इंडिया फार्कुहर, पृष्ठ ३०६। (९) द सिख रिलीजन-मेक्स आर्थर मेकॉलिफ, भाग ६, पृष्ठ ३४२। (१०) मिश्रबन्धु विनोद मिश्रबन्धु, प्रथम भाग, पृष्ठ २६२। (११) हिंदी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १८२।

१५५७ मे, और मीरा की आयु कुवर भोजराज मे दो-तीन वर्ष कम मानो जाए, तो मीरा का जन्म संवत् १५६० के लगभग आंका जा सकता है।

ऐतिहासिक परिवेश मे मीरा का जीवनकाल संवत् १५६० से १६०३ तक मानना अधिक तर्क संगत प्रतीत होता है।[१]

प्रारंभिक जीवन

मीरा के बचपन मे उनकी माता का स्वर्गवास हुआ। पिता रत्नसिंह प्राय: युद्धरत रहते थे, अतः पितामह रावदूदाजी ने उन्हे बुडकी मे मेड़ता बुलाकर अपने पास रखा। मीरा की प्राथमिक शिक्षा राव दूदाजी के ही संरक्षण मे हुई। राव दूदाजी परम वैष्णव थे, अतः उनके प्रभाव से मीरां के मन पर भक्ति के संस्कारो की गहरी छाया पडी। संगीत, नृत्य और धर्मग्रंथो में मोरा की अच्छी गति थी। किसी भजनानन्दी साधु से उन्हें 'गिरिधर' की मूर्ति मिली।[२] संतो के सत्संग से उनकी अन्तश्चेतना मे कृष्ण के प्रति प्रेम उद्‌भूत हुआ और वे स्वयं को राधा का अवतार समझने लगी।[३] विवाह के पूर्व ही उनकी काव्य प्रतिमा मुखर होने लगी थी। इसीलिए उन्होंने सहेली से अपने परिणय की चर्चा करते हुए कहा था कि—

माई म्हाणे सुपणा मां परण्या दीणानाथ।[४]

पूर्व जन्म के सस्कारो के कारण मीरा स्वयं को कृष्ण की परिणीता मानती थी और स्वेच्छा से उन्होने कृष्ण को अपना तन, मन, जीवन समर्पित कर दिया था।

विवाह

कर्नल जेम्स टॉड, सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने मीरा को राणा कुंभा की पत्नी तथा प्रोफेसर शंभु प्रसाद बहुगुणा ने उन्हे राणा रायमल की पत्नी माना हैं।[५] ये दोनो धारणायें अनैतिहासिक है। वास्तव मे मीरा का विवाह राणा कुंभा के पुत्र राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर भोजराज से संवत् १५७३ मे, तेरह वर्ष की आयु मे हुआ।

पारिवारिक क्लेश

मीरा के जीवनकाल मे मेवाड की गद्दी पर तीन राणा विराजमान हुए—(१) राणा सांगा (राज्यकाल-संवत् १५६६-१५८४), (२) राणा रत्नसिंह (राज्यकाल-संवत् १५८५-१५८८) और राणा विक्रमादित्य (राज्यकाल-संवत् १५८८-१५९३)। राणा सांगा के जीवनकाल मे मीरा के पिता राव रत्नसिंह, काका वीरमदेव और चचेरे भाई जयमल जीवित थे। स्वयं राव रत्नसिंह राणा सांगा के सहयोगी थे, जो कन्हवा के युद्ध मे राणा सांगा की ओर से बाबर की सेना से लड़ते-लड़ते खेत रहे, अत: उनकी

---

(१) मीरां की भक्ति और उनकी काव्य-साधना का अनुशीलन—डॉ० भगवान दास तिवारी, पृष्ठ १२८-१५६। (२) मीरां-सुधा-सिंधु-आनन्द स्वरूप, जीवनी, पृष्ठ ११-१३। (३) डाकोर की प्रति, पद ६७ (ख), (४) वही, पद क्रमांक ३६। (५) जनम जोगिण मीरां-प्रोफेसर शंभुप्रसाद बहुगुणा, मीरा-स्मृतिग्रंथ, पृष्ठ ३८-४०।

पुत्री मीरा को पुत्र वधू बनाकर राणा सागा ने उन पर अत्याचार किये होगे, यह बात सर्वथा असगत, अव्यावहारिक और अनैतिहासिक कल्पना मात्र है।

राणा रत्नसिह प्रजावत्सल, योग्य शासक थे। वे सवत् १५८८ म शिकार खेलते समय बूँदी क शासक राव सूरजमल द्वारा एक षडयत्र में मारे गये। अत राणा रत्नसिह द्वारा मीरा पर अत्याचारो की कल्पना के लिए कोई आधार नही है। बहुत समव है कि इस कालावधि मे मीरा न राजमहल मे स्वानुभूति के आधार पर अधोलिखित पक्तियो की प्रेरणा पाई हो—

(अ) "भाया छाड्या बधा छाड्या, छाड्या सगा मूया।
साधा सग बेठ बेठ लोक लाज खूया॥[१]
(आ) "पग बाध घुघरया णाच्या री।
डोग कह्या मीरा बावरी, शाशू कह्या कुडनाशा री।"[२]
(इ) "मीरा गिरधर हाथ विकाणो, लोग कह्या बिगडी।"[३]
(ई) "कडवा वोड डोक जग बोडया, करश्या म्हारी हाशी।"[४]

यो, राणारत्नसिह धार्मिक प्रवृत्ति के सुयोग्य शासक थे। शैव और वैष्णव धर्मों पर उनकी परम्परागत अगाध निष्ठा थी।[५]

राणा रत्नसिह की मृत्यु के बाद सवत् १५८८ मे राणा सांगा के चतुर्थ पुत्र विक्रमादित्य (विक्रमाजीत) मेवाड की गद्दी पर बैठ। इन्होने मीरा को बडे कष्ट दिये। मुशी देवीप्रसादजी ने लिखा है कि—

"चीतोड के सरदार, राणाजी (रत्नसिहजी) को दाग दकर रणथमोर मे गये और वहाँ से विक्रमाजीत (विक्रमादित्य सांगा का चतुर्थ पुत्र, राज्य काल सवत् १५८८ से १५९३ तक) को चीतोड म लाकर गद्दी पर बैठा दिया, उस वक्त राणा विक्रमाजीत की उमर २० बरस से कम थो और मिजाज मे छिछोरपन जियादा था इस सबब से सरदार सब नाराज हो गये और राणाजी ने मीराबाई को भी बहुत तकलीफ दी, क्योकि उनको भगती देखकर साधू और सत उनके पास बहुत आया करते थे यह बात राणाजी को बुरी लगती थी और बदनामी के ख़याल से उन लोगों का आना जाना रोकने के वास्ते मीराबाई के ऊपर बहुत सख्ती किया करते थे।"[६]

कदाचित् इन्ही राणा विक्रमादित्य को सबोधित कर मीरा ने लिखा है कि—

"सावरियो रग राचा राणा सावरियो रग राचा।
ताड पखावजा मिरदग बाजा साधा आगे णाचा।

---

(१) डाकोर की प्रति, पद १। (२) वही, पद-४७, (३) वही, पद १५। (४) वही, पद ८६। (५) ऑर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑव् इडिया, वार्षिक रिपोर्ट, सन १९३४ ३५, पृष्ठ ५१ (६) मीरांबाई का जीवन चरित्र मुशी देवीप्रसाद

वूझ्या माणे मदण बावरी, श्यामप्रीत म्हा काचा ॥[1]

इन्ही राणा विक्रमाजीत ने मीरा के लिए विष का प्याला और काला नाग भेजा था। यथा—

"राणा भेज्या विखरा प्याडा, चरणामृत पी जाणा।
काडा णाग पिटार्‌या भेज्या, शाडगराम पिछाणा॥"[2]

विधि के विधान का उल्लेख करते हुए मीरा ने एक पद मे "मूरख जण सिंगासण राजा, पडित फिरता द्वारा। मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, राणा भगत सधारा।"[3] लिखा है। इन पक्तियो मे 'राणा भगत सधारा' मे राणा रत्नसिंह की हत्या और 'मूरख जण सिंगासण राजा' स अदूरदर्शी राणा विक्रमाजीत का सकेत मिलता है।

उपरोक्त उल्लेखा म यह पता चलता है कि मीरा का वैवाहिक जीवन सुख पूर्ण न था। उनका भक्ति भाव और निर्बंध मत सत्सग उनके पारिवारिक विरोध के कारण थे, अत लोकलाज और कुलमर्यादा के विरुद्ध आचरण करने के कारण उन्हे कष्ट हुआ।

वैधव्य

मीरा का विवाह सवत् १५७३ मे और राणा सागा की मृत्यु सवत् १५८४ मे हुई। मीरा के पति कुवर भोजराज की मृत्यु राणा सागा के जीवन काल मे हुई, अत मीरा का *वैधव्य काल सवत् १५७५ से १५८३ के बीच माना जा सकता है।* वहुत सभव है कुवर भोजराज का निधन सवत् १५८० के लगभग हुआ हो।

सत-समागम और जोगी

मीरा की जीवनी के अतरग साधनो, प्राचीन भक्तो के उल्लेखो और इतिहासकारो के अनुसार मीरा साधु सन्तों को पूज्य बुद्धि से देखती थी। साधु सग से पराङ्मुख ससार को वे 'कुबुद्ध रो भाडो'[4] मानती थी। साधुओ की सगति मे उन्हे 'हरि सुख' प्राप्त होता था और वे ससार से दूर रहती थी।[5]

ससार मे हर साधु और जोगी, साधु और योगी नही होता। उनमे कुछ असाधु और प्रच्छन्न भोगी भी होते हैं। ऐसे ही किसी जोगी ने जब 'सावडिया म्हारो छाय रह्या परदेस'[6] को 'जोगिया छाइ रह्या परदेस'[7] अथवा 'सावरी सुरत मण रे बसी।'[8] की जगह 'जोगिया री सूरत मन मे बसी।'[9] गाकर मीरा की मूल भावना को विकृत रूप मे गली गला मे गाया होगा, तो इससे मीरा बदनाम हुई होगी। 'लोग

(१) डाकोर की प्रति, पद ४८। (२) वही, पद ६१। (३) वही, पद ५१। (४) वही, पद ५५। (५) वही, पद-६०। (६) काशी की प्रति, पद ७४। (७) मीरा-पदावली-श्रीमती विष्णुकुमारी 'मजु' श्रीवास्तव, पृष्ठ २७, पद ४४ (८) काशी की प्रति, पद ७७। (९) मीराबाई की शब्दावली बेलवेडियर प्रेस, पृष्ठ १६ शब्द ३८।

कहा बिगडा'[१] जैसी अभिव्यक्ति ऐसे ही कलुषित परिवेश की प्रेरणा से मीरा की वाणी मे आई है। फिर भी मीरा ने सत समागम नही त्यागा। विषपान और काले नाग के प्रसंग भी उन्ह अपने भक्तिभाव और अटल विश्वास से नही डिगा सके। सत-समाज म सदैव भक्तात्मा मीरा के कण्ठ से गीत फूटे, पैर थिरकते रह, घुंघरू बजते रहे और करताल तथा इकतारे क स्वर मे स्वर मिलाकर वे गाती रही नाचता रही।

जोगी सम्बन्धी उक्त भ्रष्ट पदो के आधार पर श्रीमती पद्मावती शबनम ने मीरा के, 'जोगी विशेष के प्रति गहरे व्यक्तिगत दाम्पत्य सम्बन्ध को व्यक्त करने वाले अन्त स्रोत की[२] जो कल्पना की है, वह अनुचित और भ्रान्त ही नही, मीरा की पुनीत नैतिकता पर आरोपित झूठा कलक भी है।

विषपान और साप पिटारा — राजवश की मर्यादा के विरुद्ध साधु-सतो के बीच भाव-विह्वल हो नाचने गाने वाली मीरा का राणा विक्रमादित्य ने विषपान कराया। उनके प्राणात के लिए एक पिटारी में काला नाग भेजा, जो मीरा का 'सालिगराम' के रूप मे मिला।[३]

मुंशी देवीप्रसाद ने मीरा को विष लाकर दने वाल व्यक्ति का नाम 'राणा विक्रमादित्य का मुसाहिब बीजावर्गी वैश्य,'[४] तथा बाबू ब्रजरत्नदास ने 'दयाराम पडा'[५] लिखा है।

प्राणातक क्लेश की अन्य कथाएँ —भक्तो का महिमा, भगवद् कृपा की शक्ति और ईश्वरीय अनुग्रह की दिव्यता दिखलाने के लिए भक्तो के जीवन से लोग अनेक अलौकिक घटनाएँ और चमत्कार जोड दते हैं। श्री आनन्द स्वरूप न मीरा के प्राणातक क्लेशों म मीरा पर सांप, बिच्छू गोयरे, भूखे व्याघ्र, शूला की सेज, भूतमहल में निवास के प्रयोगादि की लम्बी सूची दी है,[६] जिसका सार यही है कि—
जाको राखे साइयां, मारि न सक्कै कोय। बार न बांकी कर सकै, जो जग बैरी होय।

मीरा के प्राणातक क्लेशो की विविध कथाएँ भक्तो की कल्पना-सृष्टि हैं। विषपान और सांप पिटारे का उल्लेख अन्त साक्ष्य से समर्थित है। 'विषमप्य मृता यत्रे क्वचित्,'[७] के अनुसार मीरा विषपान कर बच गई होगी और इसी तरह सर्प दंश के प्रयोग से किसी किसी हितचिंतक ने उनकी रक्षा की होगी।

---

(१) डाकोर की प्रति, पद–१५। (२) मीरां एक अध्ययन—पद्मावती शबनम, पृष्ठ १२६। (३) डाकोर की प्रति, पद–६१। (४) मीराबाई का जीवन चरित्र—मुंशी देवी प्रसाद पृष्ठ, १३–१५। (५) मीरां–माधुरी-बाबू ब्रजरत्नदास भूमिका पृष्ठ १०८। (६) मीरा सुधा सिन्धु स्वामी आनन्द स्वरूप, पृष्ठ ४६ ५८। (७) रघुवश, सर्ग, श्लोक-४६।

मीरां और तुलसी का पत्र-व्यवहार—किंवदन्ती ये कि पारिवारिक क्लेशो से संत्रस्त हो मीरा ने तुलसीदास जी का मार्ग निर्देश के लिए पत्र लिखा था। बाबा वेणी माधवदास ने इस पत्राचार का समय संवत् १६१६ लिखा है। उनके कथनानुसार संवत् १६१६ मे कामद गिरि के निकट सूर तुलसीदास से मिलने आये और उनके प्रस्थान के बाद—

> तब आयो मेवाड़ ते, विप्रनाम सुखपाल।
> मीराँबाई पत्रिका, लायो प्रेम प्रवाल॥ ३१॥
> पढि पातो, उत्तर लिखे, गीत कवित्त बनाय।
> सब तजि हरि भजि बो भलो, कहि दिय विप्र पठाय॥ ३२ "[१]

मीरा का पत्र—मीराबाई की शब्दावली मे मीरा के पत्र का स्वरूप इस प्रकार है :—

> "श्री तुलसो सुख-निधान, दुख हरन गुसाईं।
> बारहिं बार प्रनाम करूँ, अब हरो सोक समुदाई॥
> घर के स्वजन हमारे जेते, सबन उपाधि बढाई।
> साधु संग अरु भजन करत, मोहिं देत कलेस महाई॥
> बाल पने तें मोरा कीन्ही गिरधर लाल मिताई।
> सो तो अब छूटत नहिं क्यो हूँ, लगी लगन बरियाई॥
> मेरे मात-पिता के सम हो, हरि भक्तन सुखदाई।
> हमको कहा उचित करिबा है, सो लिखियो समुझाई॥[२]

मीरा का निवेदन पढकर तुलसीदास जी ने पत्रोत्तर में एक पद और एक सवैया लिखा—

पद

> "जाके प्रिय न राम बैदेही।
> तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
> तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी।
> बलि गुरु तज्यो, कंतव्रज बनिता, भये सब मंगलकारी॥
> नातो नेह राम सो मनियत, सुहृद, सुसेव्य जहाँ लौ।
> अंजन कहा आंख जो फूटै, बहुतक कहाँ कहाँ लौ॥
> तुलसी सो सब भांति परम हित, पूज्य प्रान ते प्यारो।
> जासो बढ़े सनेह राम पद, एतो मतो हमारो॥"

---

(१) मूल गोसाईं चरित-बाबा वेणीमाधव दास, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ-१५।
(२) मीराबाई की शब्दावली-बेलवेडियर प्रेस, जीवन चरित्र पृष्ठ-४।

सवैया

"सो जननी, सो पिता, सोइ भ्रात, सो भामिन, सो सुत, सोहित मेरो।
सोइ सगो सो सखा सोइ सेवक सो गुर सो सुर साहिब चेरो॥
सो तुलसी प्रिय प्रान समान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो।
जो तजि गेह को, देह को नेह, सनेह सों राम को होय सवेरो॥"[१]

उक्त पद और सवैया तुलसी की ही रचनाएँ हैं, जो थोड़े हेर-फेर से काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'तुलसी-ग्रन्थावली' में छपी हैं।

मीरा का निधन सवत् १६०३ में हुआ, अतः सवत् १६१६ मे उनका तुलसी से पत्र व्यवहार असभव है। डॉ० श्रीकृष्णलाल,[२] प० परशुराम चतुर्वेदी,[३] श्रीमहावीर-सिंह गहलात[४] आदि सभी विद्वान मीरा के इस पारमार्थिक पत्र व्यवहार को अप्रामाणिक मानते हैं।

मेवाड़-त्याग और मेड़ता-निवास

राणा विक्रमाजीत की अयोग्यता छिछोरपन और शासन-अव्यवस्था से प्रेरित हो गुजरात के हाकिम बहादुरशाह ने सवत् १५८६ मे, चित्तौड़ पर हमला किया। पहले सुलह हुई पर सवत् १५९१ मे उसने पुन: चढाई की और फतह पाई। मुगलो के आततायी व्यवहार से अपने सतीत्व की रक्षा के लिए चित्तौड की १३,००० महिलाओ ने जौहर किया। समवतः इसके पहले ही सवत् १५९० में मीरा ने मेवाड़-त्याग दिया था। विक्रमादित्य से वे सत्रस्त थी ही, अत: तीर्थयात्रा के निमित्त वे मेवाड से मेड़ता गई, कुछ दिनो तक अपने चाचा वीरमदेव और चचेरे भाई जयमल के पास रही। सवत् १५९५ मे जोधपुर के राव मालदेव ने आक्रमण कर राव वीरमदेव से मेड़ता छीन लिया। ऐसी अवस्था मे मीरा सवत् १५९५ के लगभग मेड़ता से वृन्दावन चली गई।

माई : सखी-ललिता

मीराबाई की शब्दावली मे मीरा की चम्पा और चमेली नामक दो दासियो का उल्लेख है, जो मेवाड से मीरा के साथ मेडता आई थी।[५] ध्रुवदास जी ने भक्तनामावलि मे मीरा की अन्तरंग सखी का नाम ललिता लिखा है, जो मीरां के साथ मेडता और वृन्दावन में ही नही, द्वारका तक गई थी। इसी ललिता ने डाकोर की प्रति के हस्तलिखित पद संकलित किए थे।

---

(३) तुलसी ग्रन्थावली-काशी नागरी प्रचारिणी सभा, द्वितीय खण्ड, विनय पत्रिका, पृष्ठ ५५१. तथा कवितावली पृष्ठ २११। (१) मीराबाई डॉ० श्रीकृष्णलाल, जीवनीखण्ड, पृष्ठ ४२। (२) मीराबाई की पदावली प० परशुराम चतुर्वेदी, परिशिष्ट, पृष्ठ २२८-२३६। (३) मीरा जीवनी और काव्य-श्री महावीरसिंह ग.लोत, पृष्ठ ३७-४०। (४) मीराबाई की शब्दावली-मीराबाई का जीवन चरित्र, पृष्ठ ५। (५) डाकोर की प्रति, पद-८।

वृन्दावन-यात्रा

'आलीम्हाणे लागा वृन्दाबण णीका'[१] जैसे पद से मीरा की वृन्दावन-यात्रा असंदिग्ध है। उन्होंने वृन्दावन के मन्दिरों मे भगवान कृष्ण की विविध मूर्तियों के दर्शन किए।[२] प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका के अनुसार वृन्दावन मे मीरा की जीव-गोस्वामी और रूप गोस्वामी से भेंट भी हुई थी।

मीरा के गुरु

गेय परम्परा से प्राप्त प्रक्षिप्त पदो के आधार पर विद्वानो ने जीवगोस्वामी, चैतन्य महाप्रभु, रैदास, रघुनाथ गोस्वामी, बीठलदास, हरिदास दर्जी, गजाधर पुरोहित आदि को मीरा के गुरु मानने का प्रयास किया है। मीरा की इन व्यक्तियों के प्रति आदर भावना हो सकती है, किन्तु इतना निश्चित है कि इनमे से कोई भी व्यक्ति मीरा का गुरु नही था। मीरा, वस्तुतः सम्प्रदाय-मुक्त, गुरु-शिष्य-परम्परा-विहीन, सर्वथा स्वतन्त्र, आत्म-जागृत संतशिरोमणि थी।[३]

अकबर, तानसेन और मीरा

श्री नाभादास जी के भक्तमाल पर प्रियादास की टीका और दादूपथी राघव-दासजी के भक्तमाल पर चत्र दास जी की टीका मे अकबर, तानसेन और मीरा की भेंट का क्रमश. उल्लेख किया गया है। यथा—

१ "रूप की निकाई भूप अकबर भाई हिये,
लिये सग तानसेन, देखिबो को आयो है।
निरखि निहाल भयो, छबि गिरिधारी लाल,
पद सुख जाल एक तब ही चढायो है॥[४]

२. "भूप अकबर रूप सुन्यौ अति तानहिसेन लीये चलि आयौ।
देषि कुस्याल भयो छबि लालहि, एक सबद बनाइ सुनायौ।[५]

अकबर का जन्म संवत् १५९९ (१४, शाबान, सन् ९४९ हिजरी या गुरुवार, दिनांक २३ नवम्बर, सन् १५४२ ईस्वी को अमरकोट) में हुआ था और उसने सन् १६१९ मे तानसेन को राजा रामचंद्र बघेला के यहां से बुलाकर अपने दरबार में रखा था।

मीरा की मृत्यु (सवत् १६०३) के समय अकबर ४ वर्ष का था और मीरा की मृत्यु के १६ वर्ष बाद अकबर-तानसेन मिले, अत अकबर, तानसेन और मीरा की भेंट एक काल्पनिक कथामात्र है।

---

(१) वही, पद ३,४ आदि। (२) देखिए-मीरा की भक्ति और उनकी काव्य-साधना का स्वरूप डॉ० भगवानदास तिवारी, पृष्ठ १४५-१५०। (३) श्री नाभादास जी कृत भक्तमाल सटीक, पृष्ठ २५१। (४) श्री राघवदासकृत भक्तमाल सटीक, पृष्ठ ६५। (५) मुगल दरबार या मआसिरुल उमरा-हिंदी अनुवाद-बाबू ब्रजरत्नदास, भाग १, पृष्ठ ३३०।

द्वारका-निवास

कृष्ण के चरण-चिह्नों का अनुसरण करती हुई मीरा वृंदावन से द्वारका गईं। डाकोर की प्रति,[१] प्रियादास जी, चन्द्रदासजी की भक्तमाल की टीकाओं और श्री नागरीदासकृत पद-प्रसंग माला में मीरा के द्वारका निवास के प्रमाण विद्यमान हैं।[२]

धरना

संवत् १५९५ में महाराणा उदयसिंह चित्तौड की गद्दी पर बैठे और संवत् १५९७ तक उन्होंने अपने सारे पैतृक राज्य पर अधिकार कर लिया। संवत् १६०० में जयमल ने भी मेडता पर अधिकार कर लिया, अतः संवत् १६०० में मीरा के श्वसुर-कुल और पितृकुल दोनों ओर से मीरा को वापिस बुलाने के प्रयत्न हुए होंगे। इससे यह भी सिद्ध होता है कि सवत् १६०० में मीरा द्वारका में थी। भव बन्धन और सासारिक क्लेशों से संत्रस्त मीरा द्वारका गई थीं। वे जब राज परिवार के पुरोहितादि के आग्रह पर भी चित्तौड या मेडता लौटने के लिए राजी नहीं हुईं, तब ब्राह्मणों ने हठ पूर्वक उन्हें लौटा लाने के लिए धरना दिया।

ललिता की मृत्यु

ब्रह्म-कष्ट से बचने के लिए मीरा के पास कोई मार्ग न था, अतः जब 'धरना' असह्य हो गया, तो सबसे पहले मीरा की सखी ललिता ने मीरा को प्रणाम कर, उनकी अनुमति ले स्वयं को समुद्र की लहरों में समर्पित कर दिया।[३] इस तरह से ललिता का वास हुआ। ललिता का समुद्रलाभ मीरा के लिए भावी यात्रा का संकेत था।

मीरा की मृत्यु

मीरा क्षत्रियबाला थी, वीर-रमणी थी। पीछे मुड़कर देखना या पीठ देना उनका गुण-धर्म न था, अतः धरना और भवबन्धन से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने भगवान कृष्ण से प्रार्थना की और उनके मन-प्राण कृष्णमय हो गये। कृष्ण उनकी आंखों में आकर समा गये, पलकें खुली की खुली रह गई और मीरा कृष्णमय हो गई।[४]

मृत्युतिथि

समय, परिस्थितियों के प्रवाह तथा ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर मीरा की मृत्युतिथि सवत् १६०३ मानना अधिक समीचीन है। महामहोपाध्याय पं० गौरी शंकर हीराचंद ओझा,[५] मुंशी देवीप्रसाद,[६] हरिविलास सारडा,[७] आचार्य रामचंद्र

---

(१) डाकोर की प्रति, पद-६५। (२) मीरां की भक्ति और उनकी काव्य-साधना का अनुशीलन-डॉ० भगवानदास तिवारी, पृष्ठ १५१-१५२। (३) मीरां-स्मृति-ग्रन्थ पदावली परिचय-आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, पृष्ठ-छ। (४) काशी की प्रति, पद—१०३। (५) उदयपुर राज्य का इतिहास म० म० गौरी शकर हीराचद ओझा, भाग-१, ६६५ ३६०। (६) मीरांबाई का जीवन चरित्र-मुंशी देवीप्रसाद, पृष्ठ २६। (७) महाराणा सांगा-हरिविलास सारडा, पाद टिप्पणी, पृष्ठ ८८।

शुक्ल,[१] बाबू बृजरत्नदास,[२] डॉ० रामकुमार वर्मा,[३] आदि विद्वान मीरा का निधन सवत् १६०३ मे ही मानते हैं।

सभी किंवदन्तियों को प्रामाणिक मानकर चलने वाले श्री सीतारामशरण भगवान प्रसाद रूपकला जैसे भक्तो ने मीरा का तिथि सवत् १६५४ तक लिखी है,[४] जो सर्वथा अनैतिहासिक और अशुद्ध है। समग्रतामूलक दृष्टि से मीरा का निधन सवत् १६०३ हा अधिक युक्तियुक्त है।[५]

मीरा की रचनाएँ

अन्य बातो की तरह मीरा की रचनाएँ भी विवादास्पद हैं। 'मीराबाई का जीवन चरित्र' लिखने वाने मुंशी देवीप्रसाद ने मीरा की चार रचनाओ का उल्लेख किया है--१ गीतगोविंद की टीका, २ नरसीजी माहरा, ३ फुटकर पद, ४ रागसोरठ पद सग्रह। इनमे से एक भी ग्र थ अपने मूल रूप म उपलब्ध नहा है। सभवत राणा कुंभा द्वारा रचित 'गीत गोविंद की टीका' मीरा की रचना मान ली गई है।[६]

'नरसी जी का माहरा' का कुछ अश मुशी देवीप्रसाद,[७] श्री महावीर सिंह गहलोत,[८] तथा व्रजरत्नदास,[९] ने अपने ग्रन्थो मे प्रकाशित किया है, किन्तु भाव, भाषा, शैली किसी भी दृष्टि से देखिए यह मीरा की रचना नहीं है। बहुत सम्भव है किसी ने यह रचना मीरा के नाम पर रचकर प्रचारित कर दी है।

'फुटकर पद'[१०] मे मीरा के अतिरिक्त कबीर, नानक आदि दस भक्तो के पद सकलित हैं। यह सग्रह ग्रंथ है, मीरा की मूल रचना नही। यह स्थिति 'राग सोरठ-पद सग्रह'[११] की भी है जिसमें विविध कवियो के राग सोरठ के पद सग्रहीत हैं।

हिंदी साहित्य के इतिहास मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'राग गोविंद'[१२] नामक मीरा की एक रचना का नाम निर्देश किया है, किन्तु सगीत मे राग गोविंद नाम का कोई राग नही है। समवत गोविंद विषयक मीरा के गेय पद सग्रह को

---

(१) हिंदी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १८५, (२) मीरा-माधुरी बाबू ब्रजरत्न दास, भूमिका, पृष्ठ २१, (३) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ ५८०, (४) भक्तमाल सटीक—टीकाकार सीता रामशरण भगवान प्रसाद रूपकला, पृष्ठ ७०४, (५) मीरां की भक्ति और उनकी काव्य साधना का अनुशीलन—डा० भगवानदास तिवारी, पृष्ठ १५३-१५६, (६) राजपूताना में हिंदी पुस्तकों की खोज—मुंशी देवी प्रसाद संवत् १९६८, पृष्ठ-५ (७) महिला मृदुवाणी—मुंशी देवीप्रसाद, पृष्ठ ६२, (८) मीरां, जीवनी और काव्य-महावीर सिंह गहलोत, पृष्ठ ४२-४३, (९) मीरां माधुरी ब्रजरत्न दास, पृष्ठ-८२, (१०) राजपूताना में हिंदी पुस्तकों की खोज—मुंशी देवीप्रसाद, पृष्ठ १२, (११) वही, पृष्ठ १७, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, खोज रिपोर्ट, सन् १९०२, पृष्ठ ८१, (१२) हिंदी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ १८४।

किसी ने 'राग गोविंद' नाम दे दिया हो।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने ओझा जी के मतानुसार 'मीराबाई का मलार' और श्री के० एम० झावेरी के अनुसार 'गर्वागीत' नामक दो अन्य कृतियों को मीरा की रचनाएँ माना है।[1] श्री व्रजरत्नदास ने उक्त 'गर्वागीत' को 'मीरा नी गरबी'[2] लिखा है, किन्तु इनमें से एक भी ग्रंथ प्रामाणिक, हस्तालिखित रूप में उपलब्ध नहीं है।

मीरा ने अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त व्रज या गुजराती में एक शब्द तक नहीं लिखा। 'मीरा : जीवन अने कवन' शोध प्रबन्ध की लेखिका डॉ० निर्मला लालभाई झावेरी के मतानुसार "मीरा गुजरात मा क्यारे आवी, क्यां रही, शुं थयुं, कोने मली अने क्यारे अनु मृत्यु थयुं, अेनी पण कशी आधारभूतमाहितो मलता नथी।"[3]

मीरा ने यदि डाकोर और द्वारका में रहकर भी राजस्थानी में ही पदरचना की है, तो गुजराती में उनके पद कहां से आ सकते हैं? गुजराती मीरा के तथाकथित पद, राजस्थान की मीरा के पदों से बिल्कुल भिन्न हैं। वे मीरा-भाव की उपज हैं, राजस्थानी मीरा की कृतियां नहीं। इसी तरह से विविध भाषाओं, विविध सम्प्रदायों और विविध राग-रागिनियों में 'मीरा' छापधारी जा असंख्य पद प्रचलित हैं, वे भी मीरा की मूल वाणी नहीं, 'मीरा' के नाम पर रचित, प्रचारित और प्रसारित प्रक्षिप्त पद हैं।

प्रामाणिक पदावली

मीरा की प्रामाणिक पदावली डाकोर और काशी की हस्तलिखित प्रतियों में विद्यमान है, जो प्रस्तुत ग्रन्थ के तृतीय खण्ड में संकलित हैं।

मीरा पदावली की हस्तलिखित प्रतियाँ

राजस्थान मे जोधपुर नरेश के 'पुस्तक प्रकाश', उमेद भवन, जोधपुर; पुरातत्व मन्दिर जोधपुर, रामद्वारा, घोलो बावड़ी, उदयपुर आदि हस्तलेख संग्रहों में जो गुटके विद्यमान हैं उनमे संकलित पद मौखिक गेय परम्परा मे प्रचलित 'मीरा' छापधारी भ्रष्ट पद हैं, जो गायकों की स्मृति के आधार पर लिखे गये हैं। यही अवस्था फॉर्बस गुजरात सभा, बम्बई, गुजरात वर्नाक्युलर सासायटी, अहमदावाद तथा अन्य हस्तलिखित संग्रहालयों मे प्राप्त गुटका और चोपडियों की भी हैं। ये रचनाएं राज-

(१) मीरांबाई की पदावली परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ २३-२४। (२) मीरां-माधुरी ब्रजरत्नदास, पृष्ठ १२०। (३) मीरां : जीवन अने कवन—डॉ० निर्मला लालभाई झावेरी, बम्बई विश्वविद्यालय, गुजराती विभाग, टंकित शोध प्रबन्ध, प्रस्तावना, २१। (४) मीरां की भक्ति और उनकी काव्य साधना का अनुशीलन—डॉ० भगवानदास तिवारी, २६-३६।

स्यानी मीरां की नहीं, मीरा भाव से प्रेरित अन्यान्य साधु संतों की कृतियाँ हैं।[1]

मीरां-पदावली का क्रमिक विकास

मीरा के पद मीरा के जोवन वृत्त की ही भांति विवादास्पद रह हैं। "नाम रहेगी काम सो, सुनो सयाने लोय। मीरा सुत जायो नहीं, शिष्य न मूंडयो कोय।" के अनुसार मीरा गुरु शिष्य वंश परम्परा-विहीन थी। लोक लाज कुल मर्यादा के परित्याग के कारण उनसे सम्बन्धित राजवंशों ने तथा सन्तान की परम्परा के अभाव में घर-परिवार के लोगो ने उनके पदों का संरक्षण नहीं किया, किन्तु जिस साधु समाज मे बैठकर मीरा सत्संग करती थी, भजन-कीर्तन नृत्य करती थी, उसने मीरा के पदों को अवश्य सरक्षण प्रदान किया। काल-प्रवाह के साथ-साथ मीरां के पद अनेक प्रदेशो मे, अनेक भाषाओं मे, अनेक सम्प्रदायो में, अनेकानेक राग-रागिनियो मे गाये गये। इसका परिणाम यह हुआ कि मीरा की मूल वाणी तो अदृश्य हो गई, किन्तु मीरा भाव से प्रसूत हजारो पद मीरा के नाम पर चल पड़े। डाकोर और काशी की हस्तलिखित प्रतियों में मीरा के मूल पदो की सख्या १०३ है, 'मीरां सुधा-सिंधु' में सेव परम्परा से प्राप्त, प्रक्षेपों से बोझिल 'मीरा' नामधारी १३१२ पद हैं, तो देश-विदेश के हस्तलिखित गुटकों, चोपडियो, और मौखिक परम्परा में 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर' या 'मीरा के प्रभु हरि अविनासी' छाप वाले ५१६७ पद विद्यमान हैं। इनमें ३७६७ पद देव नागरी लिपि में, ८१७ पद गुजराती म और इदिरा देवी द्वारा ५८३ पय मीरां के नाम पर रचे गये हैं। इन पदो मे हजारो पाठ भेद हैं।[2]

मीरा की इस नित्य विकसनशील पदावली की पृष्ठभूमि मे निम्नलिखित तत्व क्रियाशील रहे हैं।

(१) काल भेद

मीरा पदावली अपनी सहजता, सरलता, सरसता, तन्मयता और संकीर्तन समीचीनता के कारण देश, काल, भाषा और साम्प्रदायिकता के सारे बधनो को तोड शाश्वत साहित्य का श्रृंगार बन गई है। यह उस भक्त की वाणी है, जिसके सम्बन्ध मे स्वयं भगवान कृष्ण ने कहा था कि—

> "वाग्गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्त
> रुदत्य भीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
> विलज्ज उद्‌गायति नृत्यते च
> मद्‌भक्ति युक्तो भुवन पुनाति॥"[3]

जिसकी वाणी गद्‌गद् हो जाती है, हृदय द्रवीभूत हो उठता है, जो बार-बार

---

(१) मीरा की भक्ति और उनकी काव्य साधना का अनुशीलन—डॉ० भगवान दास, तिवारी, पृष्ठ २६-३६। (२) देखिये—मीरा की प्रामाणिक पदावली—डॉ० भगवान दास तिवारी, प्रथम सस्करण, १९७४—साहित्य भवन प्रा० लि० इलाहाबाद, पृष्ठ १२४, (३) श्रीमद्‌भागवत—११।१४।२४।

उच्च स्वर से मेरा नाम लेकर मुझे पुकारता है, कभी रोता है, कभी हँसता है और कभी लोक लाज का परित्याग कर नृत्य करते हुए मेरा गुणगान करता है, ऐसा भक्त अपने दर्शन और भाषण से अखिल भुवन को पुनीत कर देता है।

श्रीमद्भागवत की उक्त उक्ति मीरा के व्यक्तित्व पर पूर्णत लागू होती है। आत्मोल्लास के मादक क्षणों में उन्होंने अपनी पावन अनुभूतियों को अपनी मातृभाषा में-सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी की पश्चिमी राजस्थानी म वाणी दी थी। प्रस्तुत ग्रन्थ में सकलित मीरा की प्रामाणिक पदावली का मूल पाठ इसका प्रमाण है।

मीरा-पदावली के विकास के आयाम

मीरा-पदावली का ऐतिहासिक विकास तीन काल-खण्डो म हुआ है -

(क) आदिकाल--मीरा का जन्म सवत् १५६० में, विवाह सवत् १५७३ में और निधन सवत् १६०३ मे हुआ। इस कालावधि में मीरा ने डाकोर और काशी की प्रतियों के मूल पद, तथा अन्यपद, जो सम्प्रति अप्राप्य हैं, रचे थे। मीरा के प्रथमपद की रचना से सवत् १६०३ तक (अर्थात् मीरा का जीवन काल) मीरा पदावली का पूर्व आदिकाल है।

सवत् १६०३ से सवत् १७२७ तक मीरा-पदावली के आदिकाल का उत्तरार्द्ध है, क्योंकि इस कालावधि मे मीरा क पद अपने मूल रूप मे द्वारका, डाकोर होते हुए काशी तक पहुँच गये थे। इस काल मे मूल पदो का तद्युगीन कृष्ण काव्य की भाषा व्रज म रूपान्तरण भी शुरू हो गया था और स्थल् भेद के अनुसार उनमें भाषा भेद आने लगा था।

(ख) मध्यकाल--मीरा पदावली का मध्यकाल साधारणत सवत् १७२७ स सवत् १९२० तक माना जा सकता है। इस काल में व्रज, राजस्थानी और गुजराती में मीरा के पदो के भाषान्तर ही नही हुए, 'मीरा' नाम से सैकडों पद रचे गये और गायकों की स्मृति, विस्मृति, से मीरा पदावली भ्रष्ट पाठ-परम्परा और प्रक्षेपों से लद गई। विविध सम्प्रदायों की भावधारा और शब्दावली भी उनके गेयपद रूपों में आकर मिल गई। उदाहरणार्थ मूल पद स घोली बावडी, रामद्वारा, उदयपुर के हस्तलिखित गुटके मे प्राप्त पद का पाठ मिलाकर देखिए--

मूलपद

दरस बिण दूखा म्हारा णण।
सबदा सुणता छतिया कापा मीगे थारो वेंण।
बिरह विथा का शूँ री कह्या पठा करवत एण।
कडणा पडता हरिमग जोवा, भया छमासी रेण।
थें बिछडयां म्हा कडया प्रभुजो, म्हारो गयो शब चेण।
मीरा रे प्रभु कब रे मिलागा, दुख मेटण शुख देण॥[१]

---

(१) डाकोर की प्रति, पद ६।

उदयपुर के गुटके (लिपिकाल संवत् १८७९) मे उक्त पद का भ्रष्ट गेय रूप देखिए :—

जब के तुम बिछडे मेरे प्रभुजी, कहूएँ न पायी चैन ।।१।।
ब्रिह बिया कासूं कहूँ सजनी, ग्रवत आवे अैन ।।२।।
एक टगटगी पिया पथ निहारू, भई छै मासी रैण ।।३।।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, दुप मेलण सुप देण ।।४।।[1]

राजस्थानी की तरह गुजराती की हस्तलिखित प्रतियो मे भी मीरा पदावली के भ्रष्ट पाठ लिपिबद्ध हुए हैं । यथा—

मूल पद

म्हारो गोकुड रो व्रजबाशी ।
व्रजडोडा डख जण शुख पावा, व्रज वणता शुखराशी ।
णाच्या गावा ताड दज्यावा, पावा आणद हाशी ।
णण्द जसोदा पुन्नरी प्रगटया प्रभु अविनाशी ।
पीताम्बर कट उर वैजणता कर शोहा री बाशी ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, दरमण दीश्यो दाशी ।

गुजराज वर्नाक्युलर सोसायटी, अहमदाबाद, गुजरात हाथ प्रतोनी सकलित यादी, पृष्ठ ६, लिपिकाल• रविवासर, श्रावण सुदि १२, सवत् १६६५, हस्तलेख क्रमाक द, ४७७ क मे उक्त पद का प्रक्षिप्त गेयरूप निम्नानुसार संकलित है .—

राग (मारू)

आवि गोकुल को निवासी ।
मथुरा की नारि दीख आनन्द सुखरासी ।।१।।
नावती गावती ताल बजावती, करत विनाद हासा ।
यशोदा को पुण्ण पुण्य प्रगटहि अविनामी २।।
पीताबर कटि विराजीत, उर गुजा सोहाशी ।
चानुर मुष्टिक दोउ मारे, कस के जोअ त्रासी । ३।।
जादी के मनि जेसो भाव, तिसी बुधि प्रकाशी ।
गिरीधर से नवल ठाकुर, मीरा मी दासी ।।४।।

उक्त उदाहरण इस तथ्य का प्रमाण देते हैं कि मध्यकाल मे गेय परम्परा मे मीरां पदावली अनक भाषाओं में, अनेक साधु-सन्तो, गायक द्वारा प्रक्षिप्त रूपो मे प्रचारित तथा लिपिबद्ध हुई । यही नहीं, सन्तों को दया से मडो बोली मे 'मीरा' नामधारी पद रचे गए और वे भी लोकजावन मे मीरा के नाम स चल खडे हुए । उदाहरणार्थ—

---

(१) राजस्थानो में हिन्दी ग्रन्थों की खोज—उदयसिंह भटनागर, परिशिष्ट मीरां के अप्रकाशित भजन, पृष्ठ २१६ पद १ ।

मारा को प्रभु साची दासी बनाओ ।
झूठे धन्धो से मेरा फदा छुडाओ ॥टेक॥
लूटे ही लेत विवेक का डेरा ।
बुधिबल यदपि करूं बहुतेरा ॥१॥
हाय राम नहिं कछु बस मेरा ।
मरत हूँ बिवस, प्रभु धाओ सवेरा ॥२॥
धर्म उपदेस नित प्रति सुनती हूँ ।
मन कुचाल से भी डरती हूँ ॥३॥
सदा साधु सेवा करती हूँ ।
सुमिरण ध्यान मे चित धरती हूँ ॥४॥
भक्ति मार्ग दासी को दिखाओ ।
मीरा को प्रभु साँची दासी बनाओ ॥५॥[1]

मीरा पदावलियों मे हमे आज जो अनेक साम्प्रदायिक प्रभाव, भाषा वैविध्य और असगत भावधाराएं दिखाई दे रही हैं, वे मीरा पदावली को मध्यकालीन प्रक्षेपा की देन हैं ।

(ग) आधुनिककाल—मीरा के जोवनकाल से लेकर आजतक मीरा के पदो का भक्ति और संगीत से सीधा सम्बन्ध रहा है । इसीलिए मीरा के पद, भले ही वे प्रक्षिप्त रहे हो, घर, मन्दिर से लेकर सगीत का महफिलो तक गूंजते रहे हैं । वृहद् राग रत्नाकर तथा फुटकर हस्तलेखो और भजनावलियो मे मीरा के पद प्रकाशित हुए है । हिन्दी, गुजराती, बँगला आदि भाषाओ मे ही नही, अंग्रेजी में भी मीरा के पदो का भाषानुवाद हुआ है ।[2] 'मीराबाई की शब्दावली' के बाद, 'मीरा माधुरी', 'मीरा-वृहद् पदसग्रह', 'मीरां सुधा सिन्धु' जैसे वृहत्, वृहत्तर ग्रन्थों के सकलन भी खूब हुए है । अत आज हमारे सामन मीरा-पदावली के लगभग ५० संस्करण, ४ शोधग्रन्थ और दर्जना समालोचनात्मक छोटे बडे ग्रन्थ विद्यमान हैं । इनके अतिरिक्त आधुनिक काल मे 'मीरा' पर बडे परिश्रम से कई विद्वानो ने अपने अपने ढंग से कार्य किया है, जिसका स्वतन्त्र अध्ययन एक अनुसधान का विषय है ।

आधुनिक काल मे पूना के हरिकृष्णमठ मे श्रीमती इन्दिरा देवी ने मीरा के नाम से श्रुतांजलि मे १३६ प्रेमांजलि मे ६५, सुधाजलि मे १८५ और दीपाजलि मे १६७ भजन लिखे हैं । उनकी यह श्रद्धा है कि ये गीतस्वय मीरा ने उन्हे 'डिक्टेट' किए हैं । इस तरह से मीरा-मन्दाकिनी मे नये नये प्रवाह आकर मिल रहे हैं और

---

(१) मीराबाई की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, पृष्ठ ३५, पद-११ ।
(२) [illegible]

उसका आकार दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

(२) स्थल भेद से भाषा भेद

विगत ४०० वर्षों से 'मीरा' नामधारी पद चारों धाम का यात्रा करने वालों के साथ देश भर मे घूमे ह, अत मीरा भाव की प्रेरणा से पजाब, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, गुजरात, राजस्थान और मध्यदेश मे मीरा के नाम पर समय समय पर सैकड़ो पद रच गए है और बाद म वे सब क सब पद 'मीरा' की रचना मान लिए गए हैं। मीरा पदावली के इतिहास मे मीरा विषयक भ्रातियों का समृद्धि मे ऐसे पदो का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस तरह के कुछ पद यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं :—

(अ) पजाब मे 'मीरा' के पद

सावरे दी भालन भाये, सानू प्रेम दी कटारिया।
सखी पूछे दोऊ चारे, व्याकुल क्यों मैया नारे।
रग के रगीले मोसे, दृग भर मारिया
व्याकुल वेहाल भयो, सुध बुध भूल गैया।
अजहूँ न आये श्याम, कुज बिहारिया।
यमुना की घाटी बाटी, असो तेरी चाल पछाती।
ब सिया बजावी कान्हा, मैया मत वारिया।
मीराबाई प्रेम पाया, गिरधरलाल ध्याया।
तू तो मेरो प्रभुजी प्यारा, दासी हो तिहारिया॥[१]

(आ) बिहार मे 'मीरा' के पद

मैं तो लागी रहो नन्दलाल सो।
हमरे बारहि दूजन न पार।
लाल लाल पगिया, झिन झिन बार।
सांकर खटोलना दुई जन बीच।
मन कइले बरषा, तन कइले कीच।
कहाँ गइले बछरू, कहाँ गइली गाय।
कहाँ गइले धेनु चरावन राय।
कहाँ गइल गोपी, कह गइले बाल।
कहाँ गइले मुरली बजावन हार।
मीरा के प्रभु गिरधर लाल।
तुम्हारे दरस बिन भइल बे हाल।[२]

---

(१) मीरां-वृहद् पद सग्रह-पद्मावती 'शबनम' वियोगाभिव्यक्ति, पृष्ठ ८०, पद-१०१। (२) वही, वही, वैष्णव प्रभाव द्योतक पद, पृष्ठ २५६, पद ४५४।

(इ) बंगाल मे मीरां के पद

प्रो० शशिभूषणदास ने लिखा है कि, "मीरा के 'भजन' बंगाल मे बहुत प्रसिद्ध हैं। यहां तक कि 'कीर्तन गान' इत्यादि प्रसगो मे 'भजन' शब्द का व्यवहार जब हम करते हैं, तो हमारा अभिप्राय मीरा के भजनो से होता है।" "मीरा का एक पद बगाल मे अत्यत प्रसिद्ध है, किन्तु आश्चर्य है कि हिन्दी मे मीरा के पदो के किसी भी सकलन में हम इसे नही पाते। बंगाल में इस पद के कई पाठ प्रचलित हैं, किंतु सर्वाधिक जो प्रचलित है, वह है।

नित नहान से हरि, मिले तो जल जन्तु होई।
फल मूल खाके हरि मिले तो बादुर बदराई।
तिरन भखन से हरि मिले तो बहुत मृग अजा।
स्त्री छोड के हरि मिले, बहुत रहे खाजा।
दूध पीके हरि मिल तो बहुत वत्स-बाला।
मीरा कहे बिना प्रेम से न मिले नन्दलाला।

उपरोक्त पद मीरा की नहीं, 'मीरा भाव' की रचना है। न इसकी भाषा मीरा की है, और न भावधारा ही। यह वास्तव में गेयपरम्परा मे प्रचलित 'मीरा' छापधारी प्रक्षिप्त पद है।

(ई) उड़ीसा मे मीरां के पद

मीरा के 'सावरों सदएण्दए दीठ पडया माई'[1] पद की तर्ज पर किसी ने उड़ीसा के जगन्नाथ जी के बारे मे निम्नलिखित पद लिखा है :

जब तें मोहि जगन्नाथ दृष्टि परे माई।
अरुण खभ, गरुड खभ सिंघ पोर झांई।
मदिर की शोभा कछु बरणीहू न जाई।
मगला को दरस देख आनन्द हो जाई।
जै जै श्री जगन्नाथ सहोदरा बल भाई।
थाल भोग लगने की बिरियां जब आई।
उखडा औ दूध भोग प्रभुजी ने खाई।
महाप्रसाद भाग खात आरती सजाई।
अपने प्रभु नासिका पर मोतिन लटकाई।
बीच मे सुभद्रा सोहे, दाहिने बल सोहाई।
बांये हाथ लक्ष्मी छवि, बरणी हू न जाई।
मारकण्डेय बटेकृष्ण, रोहिणी सुखदाई।
इन्द्रदमन स्नान करत, पाप सब नसाई।

---

(१) काशी की प्रति, पद ८५।

महोदधि चक्र तीरथ, गंगा गति पाई।
मीरा के प्रभु जगन्नाथ, चरणन बल जाई।[१]

(उ) खडी बोली मे मीरा के पद

कछु लेना न देना, मगन रहना।
नाय किसी की बाणा सुनवी, नाय किसी को अपनी कहना।
गहरी नदिया नाव पुरानी सेतटियें सूँ मिलते रहना।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सांवरा के चरण मे चित देना।[२]

(ऊ) गुजरात मे मीरा के पद

अजर सलुणी मरघा नेणी तें मोहन वश कीधो जी ॥०॥
मदनो सो हस्ती ने लाल अवाडी, रूकुश वश कीनोजी ॥१॥
लविंग सोपारी ने पान ना बीडा मां कछु कीधु छी ॥२॥
मीरां कहे प्रभु गीरधर नागर, चरण कमल चित लीधुजी ॥३॥[३]

उपरोक्त पद किसी भी स्थिति मे मीरा के मूल पद नही माने जा सकते। ये सब के सब परवर्ती प्रक्षेप है, जिनपर मीरा के नाम का सिक्का जरूर लगा है। अन्य गुजराती पद सग्रहो[४] की भी यही दशा है

(ए) राजस्थान मे मीरां के पद

राजस्थान के हस्तलिखित ग्रन्थो मे भी मीरा पदावली के प्रक्षिप्त रूप ही लिपिबद्ध हुए हैं। यथा—

रमईया बिन रयो न जायरी माय ॥६२॥
पान पान मोय फोको सो लागे, नैन रहे दोय छाय ॥
बार वार मैं अरज करत हूँ, रैण गई दिन जय ॥
मीरा के प्रभु बेग मिलोगे, तरस तरस जीव जाय ॥[५]

उक्त पद डाकोर की प्रति के पद क्रमांक १८ की पहली, तीसरी, पाँचवी और छठवी पक्ति का गेय रूपान्तर है। मिला लीजिए—

स्याम बिणा सखि रह्या णा जावा।
तणमण जीवन प्रीतम वार्‌या थारे रूप डुभावा।

---

(१) मीरा जीवनी और काव्य महावीरसिंह गहलौत, पृष्ठ ७३, पद ३४। (२) मीरां-बृहद् पद सग्रह पद्मावती 'शबनम', पृष्ठ २२७ पद ३८४ (३) मीरां सुधा सिन्धु आनन्दस्वरूप पृष्ठ ६४८, पद २१४। (४) देखिए प्राचीन काव्य सुधा छगनलाल विद्याराम रावल, मीरांबाई ना भजनो हरसिद्ध भाई दिवेटिया, मीरानी प्रेमवाणी मधुर, भक्तमीरां शातिलाल ठाकर, मीराबाई ना भजन दाजीराव माधवराव खैरे, सतसमाज भजनावली थी हरिहर पुस्तकालय, सूरत इत्यादि। (५) राजस्थानी में हिन्दी ग्रन्थों की खोज उदयसिंह भटनागर, परिशिष्ट, मीरा के अप्रकाशित भजन, पृष्ठ २२३, पद १५।

खाणपाल म्हाणे फीका डागा णेणा रह्या मुरझावा।
निसदिण जोवा वाट मुरारी, कब रो दरसण पावा।
बार बार थारी अरजाँ करश्यु रैणगया दिण जावा।
मीराँ रे हरि थे मिडयाँ बिण तरस तरस जीया जावा।

(३) साम्प्रायिक तत्त्वसयोजन

मीरा के पद विगत चार शताब्दियो से सारे देश मे प्रचलित हैं, अत इस कालावधि मे उनके पदों पर अनेक सम्प्रदायो का रग चढा दिया गया है। यथा—

(क) निर्गुण सम्प्रदाय

मीरा स्मृतिग्रन्थ मे प० परशुरामजी चतुर्वेदी ने मीरा को सन्तमत से प्रभावित[1] माना है। अपने मत के समर्थन के लिए उन्होने 'री मेरे पार निकस गया, सतगुर मार्‌या तीर, [2]—पद उद्धृत किया है। मूलत यह 'सावरे मार्‌या तीर' है।[3] निर्गुण-सम्प्रदाय क सन्तो ने इस मूल पद म प्रयुक्त 'सावरे' को तीर मारकर उनकी जगह 'सतगुर' को जमा दिया। नतीजा ये हुआ कि मीरा की सगुण कृष्ण भक्ति को जगह गुरुमाहात्म्यद्योतक एक नया पद मीरा के नाम पर चल पडा, और श्री चतुर्वेदीजी ने मीरा पर सतमत की मुद्रा अकित कर डाली। मूल पदावली के पद क्रमाक ३, ६, १०, १६, २५, ३६, ४३, ४७, ४८, ५६, ६०, ६१, ७७, ८३, ८४, ८८ आदि इसी तरह निर्गुणोपासना के रग मे रँगकर गाये गये हैं[4] और उनके गेय रूपो की ही रचना समझकर समीक्षको ने मीरा को सन्त मत मे दीक्षित करने का गलत प्रयास किया है।

(ख) नाथ सम्प्रदाय

'म्हांरां री गिरधर गोपाड, दूसरा णा कूयां। दूसरा णा कोया साधा सकड डोव जूया।'[5] कहकर अनन्य भाव से कृष्ण भक्ति करने वाली मीरा के पदो मे "सावरा सुरत मण रे बसी।"[6] की जगह किसी गायक, योगी ने "जोगिया री सूरत मन में बसी"[7] गाकर मीरां के मन मे 'कृष्ण' की जगह किसी 'जोगी' की सूरत बसा दी और इसी तरह "सावडिया म्हारो छाय रह्या परदेस"[8] की जगह "जोगिया छाड

---

(१) सतमत और मीरां—श्री परशुराम चतुर्वेदी, मीरा स्मृति ग्रथ पृष्ठ ६४
(२) मीरांबाई की पदावली श्रीपरशुराम चतुर्वेदी, छठा सस्करण, पृष्ट १४८, पद १५५।
(३) डाकोर की प्रति, पद ६। (४) मीरां की प्रामणिक पदावली—डॉ० भगवानदास तिवारी, पृष्ठ ६४। (५) डाकोर की प्रति, पद १। (६) काशी की प्रति, पद ७३।
(७) मीरांबाई का शब्दावली बेलवेडियर प्रेस, पृष्ठ १६, शब्द ३८। (८) काशी की प्रति, पद ७४।

रह्या परदेस"[1] गाकर मीरा को किसी जोगी की जोगिन बना दिया।

ऐसे भ्रष्ट पदों को मीरा की प्रामाणिक रचना मान डॉ० श्रीकृष्ण लाल ने मीरा पर नाथ मत का प्रभाव दिखलाने की चेष्टा की है।[2]

(ग) सूफी सम्प्रदाय

सूफी काव्य अतिशयोक्तिपूर्ण प्रेम और तज्जन्य विरह-व्यंजना के लिए प्रख्यात है। इसी तरह प्रेम प्रसूत विरह व्यजना मीरा के काव्य का भी प्राण है। मीरा का पद है—

'णातो सावरो री म्हासू णा तोडया जाय।
पाणा ज्यूंपीडो पडो री लोग कह्या पिण्ड बाय।
बावडा वैद वुडाइया री, म्हांरी बाह दिखाय।
वेदा मरमणा जाणा री, म्हारोहिबडो करवा जाय।
मीरा ब्याकुडा बिरहणी, प्रभु दरसण दीश्यो आय॥[3]

गेय-परम्परा म उक्त पद के प्रक्षिप्त रूप पर जब सूफियाना रग चढा, तो यह पाँच पक्तियो का सक्षिप्त पद सग्रह पक्तियो तक खिच गया इसमे मीरा 'कृष्ण' की जगह 'राम' के लिए तडपने लगी तथा उसका 'साँवरे' से जुडा हुआ नाता 'नाम' से जुड गया—

"नातो नाम को मोसूँ तनक न तोडयो जाय। टेक॥
पाना ज्यू पीली पडी रे, लोग कहें पिंड रोग।
छाने लांघन मैं किया रे, राम मिलण के जोग॥१॥
बावल वैद बुलाइया रे, पकड दिखाई म्हांरी बांह।
मूरख वैद मरम नहि जाणं, करक कलेजे मांह॥२॥
जाओ वैद घर आपणे रे, म्हारो नांव न लेय।
मैं तो दाधी विरह की रे, काहे कूं औषद देय॥३॥
मांस गलि-गलि छीजिया रे, करक रह्या गल आहि।
आँगुलिया की मूंदडी, म्हारे आवण लागी बांह॥४॥
रहु रहु पापी पपिहारे, पिव को नाम न लेय।
जे कोइ बिरहन साम्हले ता पिव कारण जिव देय॥५॥
खिण मंदिर खिण आँगण रे, खिण खिण ठाढी होय।
घायल ज्यूं घूमूं खडी, म्हांरी बिथा न बूझ कोय॥६॥
काढि कलेजा मैं धरूं रे, कौवा तू ले जाय।
ज्यां देसां म्हांरो पिव बसै रे, वे देखन तू खाय॥७॥

---

(१) मीरा पदावली श्रीमती विष्णु कुमारी मंजु, पृष्ठ २७, पद ४४। (२) मीराबाई-डॉ० श्रीकृष्णलाल, आलोचना खंड, पृष्ठ १२१। (३) काशी की प्रति, पद ७१।

म्हांरे नातो नाम को रे, और न नातो कोय।
मीरां व्याकुल विरहनी रे, पिय दरसण दोज्यो मोय ॥८॥"[1]

निर्गुणोपासक सम्प्रदाय म मीरां के नाम पर ऐसे पदो का प्रचार देख समीक्षक प्रवर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा कि "इस ढग की उपासना का प्रचार सूफी भी कर रहे थे, अत उनका सस्कार भी इन पर (मीरा पर) अवश्य कुछ पडा।"[2]

समय, परिस्थिति, प्रसंग, मीरा का जीवन, व्यक्तित्व और उनके भावजगत को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि मीरा पर सूफी सम्प्रदाय का कोई प्रभाव न था और न उन्होने सूफी संतों की संगति से प्रेम-विरह आदि की अनुभूति और अभिव्यक्ति के लिए प्रेरणा ही ली थी। अतः मीरां पर सूफी-संस्कारों का प्रभाव खोजना निरी बौद्धिक पैठ है।

(घ) रैदासी-सम्प्रदाय

"थारो रूप देख्या अटकी।"[3] टेक से प्रेरित ही रैदासी सम्प्रदाय के किसी साधु ने एक तुकबन्दी लिखकर मीरा को रैदास की चेली बना दिया। उसने लिखा कि—

मेरो मन लागो हरिजूं सो, अब न रहूँगी अटकी ॥टेक॥
गुरु मिलिया रैदास जी, दीन्ही ज्ञान की गुटकी।
चोट लगी निज नाम हरी की, म्हांरे हिवडे खटकी ॥१॥[4]

वस्तुतः उक्त गेय पद मीरा को रैदास-सम्प्रदाय से जोडने का असफल प्रयास मात्र है।

(ङ) चैतन्य-सम्प्रदाय

राग कल्पद्रुम के प्रथम भाग मे पृष्ठ ५५५ पर जो पद मीरा के नाम से छपा है, वही गेय रूपान्तर सहित मीरा जीवनी और काव्य' मे पुनर्मुद्रित हुआ है। पद का कुछ अंश इस प्रकार है—

अब तो हरिनाम लौ लागी, साधो।
सब जग को यह माखन चोरा, नाम धरो वैरागी।
× × ×
नवल किशोर भये नव गोरा, चेतन वाको नाम।[5]...

इस पद के आधार पर मीरा पर चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रभाव खोजना भ्रम है, क्योंकि यह पद मीरा का नहीं, चैतन्य सम्प्रदाय के किसी साधु का 'मीरा-भाव' प्रेरित पद है।

---

(१) मीराबाई की शब्दावली विरह और प्रेम का अग, पृष्ठ १०-११, शब्द-१७। (२) हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पांचवां सस्करण, सवत् २००६, पृष्ठ १८५। (३) डाकोर की प्रति, पद-६३। (४) मीराबाई की शब्दावली, पृष्ठ २५, शब्द-५७। (५) मीरा : जीवनी और काव्य-महावीर सिंह गहलोत, पृष्ठ ७४, पद-३६।

(च) रामानन्दी-सम्प्रदाय

राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (तृतीय भाग) मे श्री उदयसिंह भटनागर ने 'मीरा के अप्रकाशित भजन' शीर्षक के अन्तर्गत पृष्ठ २२२ पर, दसवा पद निम्नानुसार प्रकाशित किया है—

"रामजी पधारे घनि आज री घरी।
आजरी घरी वो भावरी भरी ।।टेर।।
गुर रामानद अर माधवा चारज, नीमानद बिसन स्याम इरी ।।१।।

इस पद स मीरा रामानद को शिष्या प्रतीत होती है, किन्तु यह पद मीरां का नही है। इस मीरा के नाम पर गढकर किसी रामानन्दी साधु ने प्रचारित कर दिया है। हस्तलिखित ग्रन्थ मे होने पर भी यह पद प्रक्षिप्त है, अत विश्वसनीय नहीं है।

(छ) रामोपासक रसिक-सम्प्रदाय

मीरा का मूल पद था—

'म्हां गिरधर आगां नाच्यां री।
× × ×
प्रीतम पड छण णा बिसरावां, मीरां हरि रग राच्यां री । १"

परतु किसी रसिक रामोपासक ने 'गिरधर' के आगे नाचने वाली मीरा को 'रघुनदन' के आग नचाते हुए लिखा है कि—

'रघुनन्दन आगे नाचूंगी ।।टेक।।
नाच-नाच रघुनाथ रिझाऊँ, प्रेमी जन को जाचूंगी ।।१।।
× × ×
पिया के पलगा जा पोढूंगी, मीरा हरि रग राचूंगी ।।४।।'[२]

पता नहीं, शील, शक्ति, सौन्दर्य सम्पन्न, एकपत्नी व्रतधारी, मर्यादा पुरुषोत्तम राम पर उक्त पद का क्या प्रभाव पड़ा होगा ?

(ज) शैव-सम्प्रदाय

बाबू व्रजरत्नदास ने मीरा माधुरी मे मीरा छाप वाले दो पद ऐसे उद्धृत किये हैं, जिनमें मीरा पर शिवोपासना का प्रभाव दिखलाई देता है। उनमे से एक पद निम्नानुसार है—

"सिव मठ पर सोहै लाल धुजा ।।टेक।।
× × ×
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, हरि के चरण पर चित मोरा ।।"[३]

उपरोक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि मीरा तथाकथित सभी सम्प्रदायो

---

(१) डाकोर की प्रति, पद ५६। (२) मीरांबाई की शब्दावली बलवेडियर प्रेस, पृष्ठ ३१, शब्द-७३। (३) मीरा माधुरी व्रजरत्नदास, विनय के पद, पृष्ठ ३, पद ५।

से प्रभावित नहीं थी, बल्कि उपरोक्त सभी सम्प्रदायों पर मीरा और मीरां भाव का व्यापक प्रभाव था। इतना विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि मीरा ने अपने जीवन मे अनेक प्रकार के साधु सन्तो का सत्सग तो अवश्य किया होगा, किन्तु उन्होने अपने व्यक्तित्व और वक्तव्य को कभी किसी सम्प्रदाय का बन्दी नहीं बनाया।

(३) मीरा-सम्प्रदाय

डॉ० तारकनाथ अग्रवाल के शब्दो मे—'विलसन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'द रेलिज्स सक्टस् ऑफ हिंदूज (The Religious Sects of Hindus) मे लिखा है कि राजस्थान के अचल मे और कहीं गुजरात मे भी मीरा सम्प्रदाय के अनुयायी पाये जाते हैं, किन्तु अपनी इस धारणा का उसने कोई पुष्ट प्रमाण नही दिया। बहुत सभव है कि उसी के कथन से प्रभावित होकर मैकॉलिफ ने भी मीरा सम्प्रदाय की प्रामाणिकता मान ली हो।"[1]

श्री आई० जे० सोराबजी तारापोरवाला ने भी मीरां के अनुयायियो की चर्चा की है।[2] एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका मे 'मीरा सम्प्रदाय' का परिचय देते हुए लिखा गया है कि, "A Sub sect is that founded in the 16 th century by Mirabai, a famous princess and poetess of Rajputana Here the special object of worship is Krishna Ranchora"[3]

मीरा भाव से प्रेरित हो मीरा के नाम पर पद रचने वाले और बडी तन्मयता से उन्हे मस्ती मे गा गाकर भाव विभोर होने वाले सैकडो साधु, सत, गायक और धार्मिक गृहस्थ आज भी इस देश मे हैं किन्तु 'मीरा सम्प्रदाय' नाम का कोई सम्प्रदाय इस देश मे न था, न है। अत विलसन, मैकॉलिफ, तारापोरवाला और एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका मे मीरा के नाम पर जिस सम्प्रदाय का उल्लेख किया गया है, वह निराधार, भ्रान्त और अविश्वसनीय है। मीरा ने न तो किसी 'गुरु' से दीक्षा ली थी और न किसी शिष्य के 'कान' ही फूंके थे। वे वास्तव मे सम्प्रदाय मुक्त, कृष्णप्रेमानुरक्ता, परमवैष्णवी भक्तात्मा थीं।

(४) गायकों की स्मृति-विस्मृति

भक्तो, कवियों, गायको और कीर्तनकारो का गीति काव्य से सीधा सम्पर्क रहता है। उन्हें अनेक गीतकारों की रचनाएँ कण्ठस्थ रहती हैं। किसी विशिष्ट कवि का पद गाते गाते जब कभी प्रसगवश उनकी स्मरण शक्ति धोखा दे जाता है, तब वे अपनी प्रतिभा से दो-चार पक्तियो की तुकबन्दी बनाकर या मूल गायक के नाम की जगह अन्य कवि का नाम जोडकर पद पूरा कर देते हैं, कबीर, सूर, मीर माधो,

(१) मीरां सम्प्रदाय—प्रो तारकनाथ अग्रवाल, मीरा-स्मृति ग्रथ, परिशिष्ट-६, पृष्ठ ५४। (२) Selections from Classical Gujarati Literature I J. Sorabji Taraporewala, Vol I Page 372 (३) Encyclopaedia Britanica, Vol 6, Page 205।

मीरा दास, दासी मीरा, जनमीरा आदि के पद इसी ढंग से गायको ने मीरा के नाम पर प्रचारित किये हैं।[1]

गायको की श्रद्धा, भक्ति और नैसर्गिक प्रतिभा ने भी कभी-कभी अपनी तुकबन्दियाँ मीरा के नाम पर प्रचारित की हैं। उदाहरणार्थ पंडित डी० व्ही० पलुसकर द्वारा गाये गये और कोलंबिया ग्रामोफोन कंपनी लिमिटेड द्वारा रिकार्ड किए गए 'मीरा नामधारी इस पद को देखिए :—

लछमन धीरे चलो मैं हारी।
राम लछमन दोनों भीतर, बीच में सीता प्यारी।
चलत चलत मोहे जानी परत गज, तुम जीते मैं हारी।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल बलिहारी।।[1]

'मीरा की छाप के अलावा उपरोक्त पद का मीरा से कोई सम्बन्ध नहीं है। सर्वसामान्य श्रोता मात्र इसे मीरा की रचना मानते हैं। संगीतकारों की दुनिया में तो यह 'मीरां' की चीज है ही।

(५) मीरां के पदों का अनुगायन और नकल

मीर- के मूल पदो के गेय रूपो में जोड-तोडकर, अपनी छाप लगाना या मीरा के पदो के गेय रूपों के ढङ्ग पर स्वयं पद रचना भी कुछ एक संतो का काम रहा है। मीरा के मूल पद के आधार पर 'दास गोपाल' और 'श्री भट्ट' की पद रचना देखिए :—

मीरां का मूल पद

बस्यां म्हारे णेणण माँ नन्दलाड़
मोर मुगट मकराक्रत कुडल अरुड तिड़क शोहा भाड़।
मोहण मूरत सावरा सूरत नैणा बण्या बिशाड़।
अधर सुधारश मुरड़ी राजा उर बैजण्णता माड़।
'मीरा प्रभु सता शुखदाया, भगत बछड़ गोपाड़।।[2]

'दास गोपाल' द्वारा उक्त पद का अनुगायन

बसो मोरे नैनन मे नन्दलाल।
सावरी सूरत माधुरी मूरत, राजिव नयन विसाल।
मोर मुकुट मकराकृत कुडल, अरुण तिलक दिये भाल।
अधरन बसी, कर मे लकुटी, कौस्तुभ मणि बनमाल।

---

(१) मीरां की प्रामाणिक पदावली--डॉ० भगवानदास तिवारी, पृष्ठ ३१ ३७।
(१) कोलबिया ग्रामोफोन क० लिमिटेड, रिकार्ड नं० जी० ई० ३६४३, सी० ई० आई० १२८२४-आई० पी०। (२) डाकोर की प्रति, पद--४६।

वाजूबन्द आभूषण मुदर, नूरपुर शब्द रसाल।
'दाम गोपाल' मदन मोहन प्रिय, भक्तन के प्रतिपाल ॥[1]

'श्री भट्ट' द्वारा उक्त गेय रूप के ढंग पर युगल-रूप की वंदना

श्री भट्ट ने 'बसो मोरे नैनन मे नन्दलाल' की जगह 'बसो मेरे नयन मे दोउ चंद' लिखकर मीरा के पद की ही भांति अपनी भावनाओं का पल्लवन निम्नलिखित पद मे किया है—

बसो मेरे नयनन में दोउ चंद।
गौर बरण वृषभानुनंदिनी, श्याम वरण नन्दनन्द।
गोकुल रहे लुभाय रूप में, निरखत आनन्द कन्द।
जय श्री भट्ट युगलरूप वन्दों, क्यों छुटे दृढ फन्द ॥"[2]

मीरा के पदों से प्रेरित हो लछोराम,[3] चन्द्रसखी[4] आदि ने भी पद-रचना की है।

(६) लोकनाट्य और लोकगीतों के अनुरूप मीरां-पदावली में परिवर्तन

मीरां के मूल पदों मे 'गिरिधर नागर' के लिए प्रभुजी, मोहणाजी, स्याम, भुवनपति, पिया, सावरो, गिरधारी, हरि, प्यारे, महराज आदि सम्बोधन मिलते हैं। कृष्ण के बाद कुछ पदों में आली, सखी, माई, सजणी सम्बोधनों से उनकी प्रिय सखी 'ललिता' का निर्देश किया गया है तथा एक पद[5] राणा विक्रमादित्य को सम्बोधित कर गाया गया है।

मीरां के नाम पर ऊदा मीरा संवाद,[6] मीरा और उनकी सास की कहा-सुनी[7] मीरां-राणा संवाद,[8] जोगी का आत्म निवेदन,[9] मीरा और उनकी सखी का परस्पर वार्तालाप[10] और कई नाटकीय कथनोपकथन[11] भी छपे हैं। ये संवाद मीरा की रचनाएँ नहीं हैं, बल्कि ये नौटंकी के उन संवाद लेखकों की प्रतिभा की उपज हैं, जो संगीत, नृत्य प्रधान लोकनाट्यों मे महात्मा कबीर, सन्त तुलसीदास, भक्त पूरनमल, सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र, भक्त प्रह्लाद, भक्त ध्रुव आदि की लोक प्रचलित जीवनियों के सहारे लोकनाट्यों के काव्यमय संवादादि लिखते थे और बीच बीच मे भजन, गजल आदि जोडकर लोक रुचि के अनुरूप कथानक में परिवर्तन परिष्कार किया करते थे।

---

(१) बृहद्राग रत्नाकर, पृष्ठ १२३, पद ४८५। (२) वही, पृष्ठ १२४, पद-४८६। (३) वही, पृष्ठ ७९, पद २९२। (४) मीरांबाई की शब्दावली, पृष्ठ २०, शब्द-४४। (५) डाकोर की प्रति, पद-४८। (६) मीरांबाई की शब्दावली, पृष्ठ ३७-३९, शब्द-२, पृष्ठ ४१ शब्द-९। (७) वही, पृष्ठ ३७ शब्द-१। (८) वही, पृष्ठ ४०, शब्द-४। (९) मीरा-पदावली विष्णुकुमारी श्रीवास्तव मंजु, पृष्ठ २७, पद-४४,। (१०) मीराबाई की शब्दावली, पृष्ठ १०, शब्द-१६। (११) वही, पृष्ठ ४०-४१, शब्द-५।

(७) मीरां-पदावली को संपादकीय प्रतिभा की देना

मीरा-पदावली की लोकप्रियता को देखते हुए 'भजन मीराबाई' से लेकर 'मीरा वृहद पद संग्रह' और 'मीरा-सुधा-सिन्धु' तक मीरा-पदावली के संकलन-संपादन हुए हैं। प्रायः प्रत्येक संपादक ने प्रसिद्ध को ही सिद्ध मानकर मीरां के पद संचित कर छपा दिये हैं। राजस्थानी, गुजराती तथा अन्य भाषाओं में प्राप्त प्रक्षिप्त पद भी मीरा की ही रचना मानने के कारण इन संपादकों ने मीरा को कई भाषाओं की कवयित्री और उन पर अनेक सम्प्रदायों का प्रभाव सिद्ध करने के लिए ऐड़ी चोटी का पसीना एक कर दिया है। कुछेक सपादकों ने तो मूल पदों की भाषा का रूपान्तर कर मीरा के प्रामाणिक पदों को भी भ्रष्ट करके छापा है।

इस तरह से विगत चार शताब्दियों में मीरा-पदावली का विकास हुआ है। इस परिवेश में मीरा पदावली और उसके सूक्ष्म पाठानुशीलन के लिए हमारी 'मीरा की प्रामाणिक पदावली' द्रष्टव्य है।

मीरां-पदावली के पाठ पक्षेप की दिशाएँ

भाव, भाषा, ऐतिहासिकता और प्रामणिकता की दृष्टि से प्रस्तुत ग्रंथ के तृतीय खण्ड में मीरा-पदावली का जो मूल पाठ दिया गया है, उसकी तथ्याश्रयता में विवाद के लिए कहीं कोई गुंजाइश नहीं है, किन्तु मीरा की मूल वाणी के गेय रूपों में जो भाव और भाषागत परिवर्तन हुए हैं वे मात्र अवश्य चिन्तनीय हैं। काल भेद, स्थलभेद, साम्प्रदायिक तत्व संयोजन, गायक, अनुगायन और नकल, लोकनाट्यों में संपादकों की 'कृपा' से मीरां के पदों में जो निरन्तर परिवर्तन हुए हैं, उनकी चर्चा हम कर चुके हैं। इसी क्रम में मीरा-पदावली के पाठ-पदावली के पाठ परिवर्तन की दिशाओं पर भी विचार कर लेना उचित होगा।

(१) भाषा-परिवर्तन

मीरा के मूल पद प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में थे, किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया, गायकों ने मूल पद की भाषा का आधुनिकीकरण कर डाला। इस भाषा परिवर्तन से प्रक्षिप्त अंश तथा पाठ भेद पैदा हुए। यथा—

माई म्हा गोविन्द गुण गाणा।
राजा रूठ्या णगरी त्यागा, हरि रूठ्या कठ आणा।
राणा भेज्या विखरो प्यालो, चरणामृत पी आणा।
काड़ाणाग पिटारया भेज्या, शाड़गराम पिछाणा।
मीरा गिरधर प्रेम बावरी सावड्या बार पाणा॥[१]

उक्त पद का भाषा-परिवर्तित रूप निम्नानुसार है :—

मैं गोविंद गुण गाणा।
राजा रूठे, नगरी राखे, हरि रूठ्या कह जाणा।

---

(१) डाकोर की प्रति, पद-६१।

राणा भेज्या जहर पियाला, इमिरत करि पी जाणा।
डविया मे भेज्या ज भुजगम, सालिगराम करि जाणा।
मीराँ तो अब प्रेम दिवाणो, साँवलिया वर पाणा।[१]

मीरा के सभी पद इसी ढंग से आधुनिक राजस्थानी और ब्रज भाषा मे परिवर्तित हुये हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ मे दी गई मीरा की प्रामाणिक पदावली के किसी भी पद के आधुनिक रूप को मूल पद से मिलाकर देखा जा सकता है।

(२) भाव-परिवर्तन

मीरा के पद अनेक प्रान्तो, भाषाओ और सम्प्रदायो में गाये गये है। फलतः उनमे भाषागत परिवर्तन ही नहीं, भावगत परिवर्तन भी हुए हैं। उदाहरणार्थ मूल पद के 'सावडिया' की जगह गेय-परम्परा में 'जोगिया' के आते ही सम्पूर्ण पद की कृष्ण भक्ति जोगी प्रेम में बदल गई।

मूल पद

सावडिया म्हारो छाय रह्या परदेश
म्हारा बिछड्या फेरन भिडया भेज्याणा एक शन्नेस।
रतन आ भरण भूखण छाडया खोरकिया शर केम।
भगवा भेख धरया थें कारण, ढूंढया चारया देस।
मीरा रे प्रभु स्याम मिडणबिणा, जीवण जणम अणेस ॥[२]

भावपरिवर्तित गेयरूप

जोगिया छाइ रह्या परदेस।
जबका बिछड्या फेर न मिलिया, बहोरि न दियो संदेश।
या तन ऊपर भस्म रमाऊँ, खार करू सिर केस।
भगवाँ भेख धरू तुम कारण, ढूंढत चारू देस।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, जीवनि जनम अनेस ॥[३]

इसी तरह मीरा के पदो मे निर्गुणोपासना, रहस्यवाद, रामोपासना, शैवोपासना आदि के संस्कार आ जुड़े और ऐसे परिवर्तनो से मीरा के व्यक्तित्व और वक्तव्य के बारे में भ्रान्तियाँ फैली।

(३) पद-विस्तार

मीरा के पदों का भाषानुवाद, भावानुवाद, छायानुवाद करते समय गायकों ने मूल पद के गेय रूप मे नई नई पंक्तियाँ अपनी ओर से जोड़ी हैं। यथा—

(१) मीराँ मन्द किनो नरोत्तमदास स्वामी, पृष्ठ ६२, पद १३४। (२) काशी की प्रति, पद ७४। (३) मीराँ पदावली विष्णुकुमारी श्रीवास्तव 'मंजु' पृष्ठ २७, पद ४४।

मूल-पद

हे री म्हातो दरद दिवाणी, म्हारा दरदणा जाण्या कोय।
घायड़ रो गत घायड़ जाण्या हिवड़ो अगण सजोय ॥[१]

निर्गुणोपासक सन्तो की कृपा से उक्त दो पंक्तियो के बीच मे दो पंक्तियां और जुड़ गई, और इन पंक्तियो के विस्तार से विद्वानो को मीरा पर सन्तमत और नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव दिखाई देने लगा। मीराबाई की शब्दावली मे उक्त पद का विस्तारित रूप देखिए—

हेरी मैं तो प्रेम दिवानी, मेरा दरद न जाणे कोय ॥टेक॥
सूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोणा होय।
गगन मँडल पे सेज पिया की, किस विध मिलणा होय ॥१॥
घायल की गत घायल जानै, कि जिन लाई होय।
जौहरी की गत जौहरी जानै, कि जिन जौहर होय ॥२॥[२]

(४) नूतन पद सृष्टि

मीरा पदावली की प्रेरणा से विगत चार शताब्दियो मे, सारे देश मे मीरा के नाम पर सैंकड़ो पद रचे गये हैं। पूना की श्रीमती इन्दिरा देवी द्वारा श्रुतांजलि, प्रेमांजलि, सुधाजलि और दीपांजलि मे मीरा के नाम पर ५८३ पदो की रचना इसका ज्वलंत उदाहरण है। सम्प्रति विविध भाषाओ, मे विविध सम्प्रदायो मे जो पद मीरा के नाम से प्रचारित-प्रसारित हैं, वे सब इसी तरह की प्रक्षिप्त पद सृष्टियां हैं।

(५) प्रक्षेप परम्परा

मीरा-पदावली में प्रक्षेपो की भरमार है। इन प्रक्षेपो का स्वरूप निम्नानुसार है—

(अ) शब्दानुवाद

मीरां की प्रामाणिक पदावली के पहले पद की पहली पंक्ति है—

म्हारा री गिरधर गोपाड़ दूसरा णा कुया।...[३]

ब्रजभाषा में उक्त पंक्ति का शब्दशः अनुवाद हुआ—

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।...[४]

उक्त ब्रज भाषान्तरित पद को सुन लोगो ने मीरा को ब्रज भाषा की कवयित्री माना जबकि यह मूल पद का शब्दानुवाद है।

(आ) भावानुवाद

मूल पद—प्रभुजी थें कठ्यां गया नेहड़ा लगाय।
छोड्या म्हा बिसवास संगाती, प्रीत री बाती जड़ाय।

(१) डाकोर की प्रति, पद-१६ (२) मीराबाई की शब्दावली-बैलवेडियर प्रेस, प्रयाग, पृष्ठ ४; शब्द—३ (३) डाकोर की प्रति, पद १ (४) मीरां-वृहत्-पद संग्रह सं० पद्मावती शबनम, पृष्ठ १६५, पद-२५।

विरह समंद मा छोड़ गया छो नेह री नाव चड़ाय।
मीरा रे प्रभु कबरे मिलोगा थें बिण रह्या णा जाय।[1]

भावानुवाद—हो जी हरि कित गये नेह लगाय।
नेह लगाय मेरो मन हर लियो, रस भरि टेर सुनाय।
मरे मन में ऐसी आवे, मरू जहर विष खाय!
छाँडि गयो विश्वासघात करि, नेह केरि नाव चलाय।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, रहे मधुपुरी छाय॥[2]

(इ) शाब्दिक परिवर्तन

मीरा पदावली के गेय रूपों मे हजारो शाब्दिक परिवर्तन हुए हैं। ऐसे शब्द-परिवर्तन से अर्थ-परिवर्तन और अर्थ परिवर्तन से भाव-परिवर्तन अपने आप हो गया है। इस दिशा में साम्प्रदायिक शब्दावली संयोजन का बड़ा महत्व है। शाब्दिक परि-वर्तन का एक उदाहरण देखिए—

चाड़ा मण वा जमणा का तीर।...[3]

गेय-परम्परा मे 'वा' शब्द 'गंगा' में बदल गया, अतः उक्त पंक्ति का गेय रूप हुआ—

चालो मन गंगा जमुना तीर।...[4]

गंगा-जमुना का संयुक्त 'तीर' प्रयाग मे है और मीरा वृन्दावन गई थी, अतः 'गंगा जमुना तीर' का अर्थ गंगा-यमुना के संगम का तट न करते हुए विद्वानों ने 'गंगा' को 'जमुना' का विशेषण बनाकर अर्थ किया—हे मेरे मन! गंगा के समान पुण्यसलिल यमुना के तट पर चल। शब्द परिवर्तन से मीरा की भाव सृष्टि पर बुरा असर हुआ है।

(ई) टेक परिवर्तन

मूल पद—म्हारो परनाम बाँके बिहारी जी।
मोर मुगट मार्या तिड़क बिराज्यां कुंडड़ अड़कां कारो जी।[5]
गेय रूप—हमरो प्रणाम बाँके बिहारी को।
मोर मुगट माथे तिलक विराजे, कुंडल अलकाकारी को।[6]

गेय परिवर्तन में मूल पद की 'जी' टेक, 'को' में बदल गई है।

(उ) चरण-परिवर्तन

कई बार गायको ने मूल पद के चरणों को नवनिर्मित चरणो मे बदल दिया है, फलतः मूल चरण, मूल भाव-सहित लोप हो गया है और उसकी जगह नया चरण नये भाव सहित प्रतिष्ठित हो गया है। जैसे—

---

(१) डाकोर की प्रति, पद-११। (२) मीरां-वृहत् संग्रह-सं० पद्मावती शबनम, पृष्ठ ३२, पद-३१। (३) डाकोर की प्रति, पद-७। (४) मीरां-वृहत्-पद संग्रह-सं० पद्मावती शबनम पृष्ठ २८६, पद-११। (५) डाकोर की प्रति, पद-४। (६) मीरा-मन्दाकिनी-नरोत्तम स्वामी, पृष्ठ ६, पद-११।

मूल चरण—प्रेम भगति रो पैंडा म्हारो और ण जाणा रीत।[1]
परिवर्तित चरण रूप—लगन लगी जदि प्रीत और ही, अब कछु और ही रीत।[2]

कभी-कभी गायकों ने किसी पंक्ति का पूर्व अर्ध चरण बदला है, तो कभी उत्तरार्ध बदल दिया है। इन दोनों प्रकार के परिवर्तनों के लिए देखिए—

मूल चरण—निरमल नीर बह्या जमणा का भोजण दूध दह्या का।[3]

गेय परम्परा में यमुना के निर्मल नीर का प्रवाह तो खो गया पर उसकी जगह वृन्दावन की गायें आ गई, अत उक्त चरण के अनुवाद के साथ साथ, उसका पूर्वार्द्ध बदल गया—

गेय रूप—वृन्दावन मे धेनु बहुत हैं, भोजन दूध दही को।[4]

चरण के पूर्वार्द्ध की तरह कई बार उत्तरार्द्ध भी बदले हैं—

मूल चरण—सुन्दर कमड लोचण, बाँका चितवण नैणा समाणी।[5]
परिवर्तित गेय रूप—सुन्दर वदन कमल दल लोचन, देखत ही बिन मुले बिकानो।[6]

गायकों की स्मृति विस्मृति से गेय पद रूपांतरों मे कभी चरणों का क्रम ऊपर नीचे हुआ है, कभी चरण का चरण लोप हो गया है तो कभी चार-चार नये चरण आकर अनुदित पद में आकर जुड गये हैं।[7]

(६) गेय रूप

मौखिक परम्परा में मीरा के प्रत्येक पद का गेय रूपान्तर प्राप्त है। उदाहरणार्थ डाकोर की प्रति का पद क्रमांक ६३, ग्यारह रूपों में गाया गया है।[8]

(७) पद-संयोजन

कभी-कभी मीरा के दो समतुकान्त और एक ही राग के दो पदों को मिला कर गायकों ने एक वृहद् पद बना लिया है। उदाहरणार्थ डाकोर की प्रति के पद क्रमांक ६७ क और ६७ ख का एक ही संयुक्त रूप मीरा मदाकिनी मे छपा है।[9]

(८) अनुकरण

मीरा के पदों की लोकप्रियता, संगीतात्मकता, सरसता व्यापकता से प्रभावित हो कभी कभी गायकों ने मीरा का अनुकरण कर नये पद रचे हैं उन्हे 'मीरा के नाम पर चला दिया है। यथा—

---

(३) डाकोर की प्रति, पद ६ (४) मीरा-मन्दाकिनी नरोत्तम स्वामी, पृष्ठ १०, पद २३ (५) डाकोर की प्रति, पद ८ (६) मीरा-सुधा सिन्धु स्वामी आनन्द स्वरूप, पृष्ठ ६५८, पद २४५ (७) डाकोर की प्रति, पद ३ (८) मीरा सुधा सिन्धु स्वामी आनन्द स्वरूप, पृष्ठ ५३०, पद ८४ (९) देखिए मीरां की प्रामाणिक पदावली डॉ० भगवानदास तिवारी, पृष्ठ १४१-२७२ (१०) वही, वही, पृष्ठ २१७ से २२० तक (११) मीरां

जोगिया म्हांने दरस दिया सुख होइ।
नातरि दुखी जगमांहि जीवडो, निसि दिन झूरै तोइ।
दइस दिवानी भई बावरी, डोली सब ही देस।
मीरां दासी भई है पंडर, पलटया काला केस॥[१]

यह 'प्यारे दरसण दीज्यो आय' के अनुकरण[२] पर बना है। ऐसे सैंकडो अनुकरणात्मक पद आज विभिन्न भाषाओं में मीरा के नाम पर प्रचलित हैं।

(९) स्मृति भ्रम

गायकों के स्मृति भ्रम से कबीर, सूर, मीर माधो, मीरादास, दासी मीरा, जनमीरा[३] आदि के पद मीरा के नाम पर चल रहे हैं।

(१०) नाटकीय कथनोपकथनात्मक पद

मीरा के नाम से कुछ संवादात्मक प्रक्षिप्त पद मिलते हैं, जो निश्चित रूप से मीरा की रचना नहीं हैं। यथा—

म्हांरे सिर पर सालिगराम, राणाजी म्हारो काई करसी॥टेक॥
मीरा सूं राणा ने कही रे, सुण मीरा मारी बात।
साधों की सगत छोड दे रे, सखियाँ सब सकुचात॥१॥
मीरा ने सुन यो कही रे, सुण राणा जी बात।
साध तो भाई बाप हमारे, सखियाँ क्यू घबरात॥२॥[४]

ये पद नौटंकियों की लोकनाट्य शैली के अनुरूप रचे गये हैं। बाद में इन्हें भ्रमवश 'मीरबाई की शब्दावली' मान लिया गया है। मीरा और उनकी सास, ननद, राणा जी आदि से सम्बन्धित सभी संवादात्मक पद इसी तरह के प्रक्षिप्त पद हैं।

(११) मीरां भाव

मीरां की प्रामाणिक पदावली को देखते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मीरा ने प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी के अतिरिक्त अन्य किसी भी भाषा में पद रचना नहीं की, परन्तु व्रजभाषा में उनके मूल पदों के गेय रूप या परवर्ती प्रक्षिप्त पद आज चल रहे हैं। वास्तव में मीरा ने व्रजभाषा में एक पद तक नहीं लिखा। यही अवस्था गुजराती की है। गुजराती में मीरा के पद आज प्रचलित हैं, वे राजस्थानी मीरां के नहीं, गुजरातन 'बाई मीरा' के पद हैं, जो किसी 'मुनिवर स्वामी' की शिष्य थी। सत समाज भजनावली में 'बाई मीरा' के पद देखिए—

वाट जुबे के मीरा राकडी,
ऊभी ऊभी अरज करे छे दीनानाथ नी॥टेक॥

---

(१) मीरां बृहत् पद संग्रह पद्मावती शबनम, पृष्ठ १६९ पद २६६, (२) काशी की प्रति, पद ६० (३) मीरां की प्रामाणिक पदावली डॉ० भगवानदास तिवारी, पृष्ठ ३१ से ३७ तक (४) मीरांबाई की शब्दावली बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, पृष्ठ ४०-४१।

मुनिवर स्वामी मारे मंदिर पधारो रे,
सेवा करीश दिन रातड़ी रे, ऊभी०…[१]

उपरोक्त पद का दूसरा गेय रूप इस प्रकार है—

अरज करे छे मीरा राकड़ी रे ऊभी ऊभी०
मुनिवर स्वामी मारा मंदिरे पधारा व हाला;
सेवा करीश दिन-रातड़ी रे, ऊभी-ऊभी…[२]

'बाई मीरा' मे ब्रजभाव और गोपी भाव प्रधान था, अतः उनमें कृष्ण लीला-गान की प्रवृत्ति का विशेष रूप से वर्चस्व परिलक्षित होता है। उन्होंने राधा-कृष्ण के हिंडोले पर झूलने का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

ओ हिंदोरो हेली झूले छे नन्दकिशोर, हो हींदोरे झूले छे नन्द किशोर ॥०॥
चम्पे की डार हींदोरे घाल्यो, रेशम नी गज डोर ॥१॥
राधेजी कृष्ण झूलन लागा, झुलावे छे सखियाँ को साथ ॥२॥
दादुर मोर पपैया बोले, कोयल कर रही शोर ॥३॥
'बाई मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणा बलिहार ॥४॥[३]

'बाई मीरा' मे राजस्थानी मीरा की सी आत्मनिष्ठता नही है। 'दही' की अपेक्षा 'मही' बेचने के बहाने वह अपनी सहेली से कहती है कि—

चालने सखी मही बेचवा जैये, ज्या सुदरवर रमतो रे।
प्रेमतणाँ पक्वान लई साथे, जोइये रसिकवर जीमतो रे।[४]

उनके 'धूर्त कृष्ण' छेड़खानी कर उन्हे पनघट पर ककड़िया मारते हैं :—

काकरी मारे धूतारो कान, पाणीडा केमकरी जइये।[५]

यही नहीं, वे 'बाई मीरा' का घूँघट खोलकर देख गये थे—

क्या गयो पेलो मोरली वालो अमारा घुघट खोली रे।[६]

यही नही, उन्होने बलपूर्वक बेचारी गुजरातन 'बाई मीरा' को लूट भी लिया था—

कानुडे वन मा लुटी सखी मने, कानुडे वन मा लुटी ॥०॥
हाथ झाली मारी वाह्य मरोडी, मोतोनी माला टुटी ॥१।

उपरोक्त प्रमाणो से यह सिद्ध होता है कि उक्त पदो की गायिका 'बाई मीरा' मे परकिया भाव प्रधान है, राजस्थानी मीरा मे स्वकीया भाव प्रधान है। उनकी

---

(१) संत समाज भजनावली श्री हरिहर पुस्तकालय, सूरत, पृष्ठ ६०, पद-२० (२) वही, वही, पृष्ठ ७०, पद-४२ (३) मीरां-सुधा सिन्धु स्वामी आनन्द स्वरूप, पृष्ठ ४४८, पद-२४ (४) मीरां-माधुरी, ब्रजरत्नदास, पृष्ठ १३७, पद-३२७ (५) वही, वही पृष्ठ १३६, पद-३८० (६) वही, वही, पृष्ठ ६४८, पद-२१२ (७) मीरां-सुधा सिन्धु-स्वामी आनन्द स्वरूप, पृष्ठ ६६७-६८, पद-२७६ ।

पदावली मे कुल वधू की शालीनता है, जबकि गुजरातन 'बाई मीरा' के कृष्ण ने रस-लीला के समय गोपियां के चीर तान तानकर (खींच-खींचकर) फाड दिये थे—

जल रे जमुना नां अमे पाणीडां गयां तां वाह्‌ला,
कानुड़े उडाडयां आछां नीर, उडयां फरररररर रे ॥
वृंदा रे वनमां वाले रास रच्यो छे,
सोलसें गोपीनां ताण्यां चीर, फाटयां चरररररर रे ॥[1]

यह अनुभूति और यह अभिव्यक्ति राजस्थानी मीरा की नही हो सकती। यह 'बाई मीरा' कोई और ही व्यक्तित्व है, जो गोपी भाव की प्रेरणा से 'मीरां' के नाम पर पद रचती रही है। गुजराती विद्वानो को इस बाई मीरा' का अध्ययन-अनुशीलन करना चाहिए।

प्रक्षेप-परम्परा आर वस्तुनिष्ठ सत्य

मीरा पदावली की जटिल प्रक्षेप-परम्परा के बारे में डॉ० आई० जे० सोराबजी तारापोरवाला ने लिखा है कि—

"Miran's songs have been current in three vernaculars-Hindi, Marwari and gujarati And during the centuries that have elapsed since her time, a great lot of mixing of dialects in her songs has come out It is probable, however, that she herself a Rajputani used the mixture of these three dialects in her later years But her very poputarity in all these three vernaculars has made it extremely difficult to determin, what is her own genuine work and what is later forgery ?"[2]

डॉ० तारापोरवाला के मत के सम्बन्ध मे हमारा निवेदन है कि मीरा ने केवल 'मारवाडी' में ही पद रचे थे, हिन्दी और गुजराती के 'मीरा' नामधारी सभी पद या तो उनके मूल पदों के गेय रूप हैं, या परवर्ती प्रक्षेप हैं। मीरा ने स्वयं उपरोक्त तीनों भाषाओं मे पद रचना नही की। इसी तरह इतरेतर भाषाओं में प्राप्त 'मीरां' नामधारी पद राजस्थानी मीरा की रचनाएं नही हैं।

●

---

(१) मीरा-माधुरी-ब्रजरत्नदास, पृष्ठ १६८-६६ पद ४६४ (२) Selec Te...
from Cl...

मीरां का व्यक्तित्व

मनस्विनी नारी और भक्तात्मा मीरां

मीरां के समस्त जीवन और काव्य मे एक उदात्त, दृढव्रती, आत्मचेता व्यक्तित्व की ऊर्ध्वगामी भक्ति-साधना का प्रतिबिंब परिलक्षित होता है, जिसमे हमें एक ऐसी मनस्विनी नारी के दर्शन होते हैं, जो सम्पत्ति मे उदार, विपत्ति मे धीर, भगवद्भक्ति मे गंभीर रहकर आध्यात्मिक उन्नयन के सम्पूर्ण व्यवधानो को निर्भीक मन से पार करती हुई दिखाई देती है, जो नियति के प्रहारो, पारिवारिक क्लेशो, सामाजिक प्रताडनाओ और साम्प्रदायिक गुटबन्दियो द्वारा उपेक्षित और तिरस्कृत होकर भी सुख-दुःख-सब शुद्ध-समभाव से सहती है तथा श्रद्धा, निष्ठा और प्राणघाती विरोधियो के बीच आत्मविश्वासपूर्वक अविचल कृष्णभक्ति करते हुए जीवनयापन करती है।

मीरा अमरवधू थी। कृष्ण उनके जन्म-जन्म के भरतार थे और वे उनकी चिरसंगिनीचिर परिणीता दासी थी। कृष्ण से उनका जो स्वप्न मे परिणय हुआ था, वह उनका आध्यात्मिक विवाह था, अतः दाम्पत्य-भाव से गिरिधर नागर से प्रेम कर उन्होंने अपना समग्र जीवन कृष्णार्पण कर दिया, परिणामतः प्रियमिलन की कामना उनके रोम-रोम में आ बसी थी।

मीरा विद्रोहिणी थी। कृष्ण-प्रेम के लिए, भगवद् भक्ति के लिए, अन्तःप्रेरणा और आध्यात्मिक चेतना के लिए, उन्होने अपने राजकुल की प्रतिष्ठा, लोक-लाज और सामाजिक मर्यादाओ की लोहशृंखलाएँ तृणवत तोडकर फेंक दी, तथा अपने पैरो मे शील के घुंघरू, हृदय मे गिरिधर और उस हृदयस्थ गिरिधर को पाने के लिए पार्थिव शरीर मे बन्दी विकल प्राण लिये हुए वे एक सक्रिय, साक्षात्कारेप्सु स्वकीया की भांति अपने भावोन्मेषपूर्ण, व्यक्तिनिष्ठ, अनलंकृत काव्य के सहज स्वरो से अपने प्रिय को खोजती पुकारती फिरी। भक्ति-भावावेश मे साधु समाज में, प्रबल आत्मोल्लास के क्षणों मे वे ताल, पखावज और मृदग के समवेत स्वर के बीच स्वय इकतारा या करताल बजाती हुई हरिमन्दिर मे नृत्य करती थीं। उनकी यह भक्ति भावना सांसारिक विरक्ति की दिव्य निष्पत्ति थी। वे भौतिक जीवन और दृश्य जगत् की नश्वरता से भली-भाँति परिचित थी, इसीलिए वे अपने आराध्य-अविनश्वर की खोज मे चल पडी थी। यह एक दूसरी बात है कि कृष्ण को खोजते खोजते वे स्वय खो गई, बिन्दुवत् सिंधु मे समा गई और सिंधु बन गई किन्तु अपने आराध्य से तादात्म्य स्थापित करने के सायास प्रयासो मे, मीरां की सहन-शीलता, ध्येयवादिता और संकल्पनिष्ठा स्पष्टतः परिलक्षित होती है।

मीरा का जीवन उत्सर्ग की बलिवेदी और समर्पण का त्योहार था। इसलिए उसमें लौकिक संघर्ष की ज्वाला आत्मशक्ति की शीतलता और विरहविगलित प्राणो की असीम करुणा एक साथ दिखाई देती है। उनके व्यक्तित्व में, वैष्णवो की आचार-निष्ठा, सगुणोपासको की पूजा, उपासना और तीर्थयात्रा; विनीत भक्ति का दैन्य; तत्वज्ञानी सन्तों का आत्मदर्शन; प्रेमबावले सूफियो की सी प्राणों को मथने वाली अलौकिक विरह वेदना, निर्गुणियों की सी जीवन और जगतविषयक यथार्थ दृष्टि, विरक्त सन्यासियो सी निर्लिप्तता; परम भक्तो का सा नृत्य, कीर्तन, भजन; विदग्ध प्रेयसी के समान चेतना को झकझोर देने वाला प्रणय-निवेदन; प्रेम योगिनी की करुण पुकार और आत्मा के सनातन नारीत्व का परम पुरुष, परमात्व तत्व भगवान कृष्ण के प्रति समर्पण साकार हो गया है।

एक क्षत्रिय वीरागना की तरह मीरा ने राजवंशो की प्रतिष्ठा को चुनौती दी, कुल मर्यादा को ठोकर मारी, संघर्षों का जी खोलकर स्वागत किया और भक्ति-मार्ग पर चलते समय कदम कदम पर प्रतिकूल परिस्थितियो की विभीषिका में पुनः पुनः अग्नि परीक्षा दी, विषपान किया और सांप पिटारे मे 'सालिगराम' पाने की पात्रता अर्जित की।

मीरा नीतिमान थीं। आर्य चाणक्य की "त्यजदेकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलत्यजेत्। ग्राम जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथ्वी त्यजेत्॥" नीति के अनुसार उन्होने अपने आत्मोद्धार के लिए संसार और सासारिक माया मोह, को तिलाजलि दे दी थी। उनकी चेतना वैष्णव भक्ति के उदात्त भागवत-संस्कारो से अनुप्राणित थी। वे पुनर्जन्म मे विश्वास करती थी और स्वयं को राधा का अवतार[1] मानती थी। द्वापर की वृषभानुनन्दिनी राधा तो कृष्ण मिलन के लिए बरसाने मे तडपती रही, तरसती रही, बेचारी कृष्णानुसंधान के लिए वह व्रज की सीमाओं के बाहर न जा सकी, परन्तु रत्नसिंह दुलारी के रूप मे—मीरा के रूप में जन्म लेने वाली मध्य-कालीन राधा ने अवश्य कृष्ण की खोज क लिए आजीवन महत् प्रयास किये, मेडता, मेवाड, और वृन्दावन से द्वारका तक यात्रा की।

मीरां की प्रेमभक्ति में नामस्मरण, रूप वर्णन, लीलागान और धाम विषयक आस्था विश्वास की रूप रेखाएँ विद्यमान हैं। इन चारो तत्वो के सयोजन से मीरा का 'भक्त' रूप बना है।

मीरा की प्रेमाभक्ति के आधार

(क) नाम-स्मरण—नारद भक्ति सूत्र में देवर्षि नारद ने 'तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति'[2] कहकर परम विह्वलता से अखण्ड हरिनाम स्मरण को भक्ति का लक्षण कहा है, अत. प्रत्येक भक्त को पाप नाश, सुख और निर्भय मोक्षपद की प्राप्ति के लिए हरि-नाम-कीर्तन करना चाहिए—

---

(१) डाकोर की प्रति, पद ७ (ख)। (२) नारद भक्ति सूत्र १९।

किया करते हैं। मीरा की यह धाम कल्पना रूपकात्मक शैली में प्रकट हुई है।

इस लोक तक पहुँचने के लिए मीरा ने सबसे पहले सांसारिक सुख की बावड़ी के बरसाती गन्दे जल को छोड़ भगवद्भक्ति के अमृत रस से अपनी प्यास बुझाई यथा—

"चौमास्या री बावड़ी, ज्यारूँ णीर णा पीवां।
हरि निर्झर अमृत झरयां म्हारी प्यास बुझावां ॥[1]

मीरा को यह कल्पना कदाचित् श्रीमद्भागवत के अधोलिखित श्लोक से मिली थी—

"यस्य भक्ति भगवति हरौ नि श्रेय सेश्वरे।
विक्रीडतोऽ मृताम्भोधौ किं क्षुद्रै खात कोद कैः ॥[2]

अर्थात् जो परमकल्याण के स्वामी भगवान की हरिभक्ति करता है, वह अमृत के समुद्र मे क्रीड़ा करता है। उसका मन इधर उधर के भरे मामूली गन्दे जल के सदृश किसी भी भोग या स्वर्गादि से चलायमान नहीं होता।

मीरा के व्यक्तित्व के स्रोत और स्वरूप

मीरां के व्यक्तित्व के निर्माण मे संत-सत्संग, श्रीमद्भागवत् और गीता का, बड़ा योगदान था। भक्ति के दायरे में सत्संग की बड़ी महिमा है। नारद भक्तिसूत्र के अनुसार—

"महत्सगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ॥
लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव ॥
तस्मिंस्तज्जने भेद भावात् ॥[3]

महापुरुषों का संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है। वह भी भगवत्कृपा से ही प्राप्त होता है क्योंकि भगवान और उनके भक्तों मे भेद का अभाव है। कदाचित् इसी लिए मीरा ने कहा था कि—

"साधां संगत हरि-सुख पास्यूँ, जग सूँ दूर रह्यां।"[4]

मीरा ने भी सम्प्रदायों के साधु संतो से सत्संग किया, किन्तु किसी भी प्रकार की साम्प्रदायिक संकीर्णता के साथ समझौता नहीं किया। वार्ता साहित्य के प्रसंग इसके प्रमाण हैं। वे नीर-क्षीर विवेक बुद्धि से सत्संग करती थी, और उनकी सारग्राहिणी प्रज्ञा केवल केवल 'सार सार' को लेकर 'थोथा' छोड़ देती थी।

उनका भावविभोर भक्तरूप भी श्रीमद्भागवत के अधोलिखित श्लोको से प्रभावित सा प्रतीत होता है—

"श्रृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन विलज्जो विचरेद सङ्ग ॥

---

(१) डाकोर की प्रति, पद ३७। (२) श्री मद् भागवत, ६।१२।२२ (३) नारद भक्ति सूत्र, ३९, ४०, ४१। (४) डाकोर की प्रति, पद ६०।

एवंव्रतः स्वप्रियनाम कीर्त्याजातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोक बाह्यः ॥[१]

अर्थात् भक्त भगवान चक्रपाणि के कल्याणकारक एव लोक प्रसिद्ध जन्मो और कर्मों को सुनता हुआ, उनके अनुसार रखे गये नामों को लज्जा छोड़कर गाता हुआ संसार मे अनासक्त होकर विचरता है। इस प्रकार का व्रत धारण कर अपने प्रियतम प्रभु के नाम संकीर्तन से, उनमे अत्यंत प्रेम हो जाने के कारण द्रवितचित्त हुआ, उन्मत्त के समान कभी अलौकिक भाव से खिलखिलाकर हँसता है, कभी रोता है, कभी चिल्लाता है, कभी ऊँचे स्वर से गाने लगता है, और कभी नाच उठता है। उन्मत्त की तरह आचरण करता हुआ प्रेमी भक्त जब आत्मविभोर हो आनंदमग्न हो जाता है, आत्मलीन, मौन, शात और पूर्णकाम हो जाता है, तब प्रभु की मूर्ति उसके हृदय में प्रगट हो जाती है और वह उनकी रूपमाधुरी मे रससिक्त हो ध्यानमग्न हो जाता है।

मीरा के व्यक्तित्व का स्वरूप और उनका अन्तर्जगत बहुत कुछ ऐसा ही था। कविकर्म की उपासना करना मीरा का लक्ष्य न था, परन्तु उनकी आहो में इतना असर अवश्य था कि उनकी संवेदना का हर स्पन्दन शाश्वतकाव्य का शृंगार बन गया है, जिसमे हर दर्द आवाज देता हुआ दिखाई देता है और हर पुकार गीत बनकर गूँज उठी है। निजानुभूति की प्रचुरता के कारण मीरा के काव्य मे प्रवाह प्रभाव और रसान्वित का जादू अपने आप आ गया है। व्यक्तिनिष्ठता उनके व्यक्तित्व की एक और विशेषता है, जिसके प्रभाव से विगत चार शताब्दियो मे अनेक व्यक्तियो ने, अनेक अवसरो पर, अनेक सन्दर्भों मे 'मीरा भाव' से प्रेरित हो रचनाएं लिखी हैं। कालप्रवाह मे मीरा का व्यक्तित्व प्रभावक ही नही, संक्रामक बनकर जीता चला आ रहा है।

मीरा स्वयं सिद्ध कवयित्री, आत्मप्रबुद्ध विदुषी, रससिद्ध गायिका और नैसर्गिक संगीतज्ञा थी। उनके स्वयंस्फूर्ति पदो में अनुराग, संयोग और वियोग की जिन भाव-छवियो का अंकन हुआ है, उनके एक-एक शब्द में उनका व्यक्तित्व बोलता है। जीवन सत्य और काव्यसत्य का यह तादात्मय उसके व्यक्तित्व और वक्तव्य की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मीरा स्वयं तो किसी संप्रदाय मे नही बँधी, न उन्होने किसी सम्प्रदाय का सूत्रपात ही किया, किन्तु उनके पदों ने अनेकानेक सम्प्रदायो को अपनी स्वरलहरी मे बाँध लिया है, यही मीरा, मीरा के व्यक्तित्व और मीरा के कृतित्व की उल्लेखनीय उपलब्धि है। इस रूप मे मीरा का व्यक्तित्व प्रेरणास्पद ही नही, श्रद्धास्पद, प्रशसनीय और वन्दनीय भी है। उनका सम्पूर्ण काव्य उनकी व्यथा-कथा का शब्दरूप है। इसी तरह से भगवान कृष्ण के प्रति मीरा के सम्पूर्ण समर्पण और आत्मोद्धार का विश्वास कदाचित् गीता के उस महावाक्य पर आधारित है, जिसके

(१) श्रीमद्भागवत, ११।२।३९-४०।

द्वारा भगवान कृष्ण ने अर्जुन को अतर्कबुद्धि से आत्मसमर्पण कर अपनी शरण में आने के लिए प्रेरणा देते हुए कहा था कि—

"मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रति जाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वं धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वं पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच॥"[1]

हे अर्जुन! तू अपने हृदय में मुझे बसाकर मेरी शरण में आ। मेरी कृपा-दृष्टि से तुझे परम शांति प्राप्त होगी। तू मन को पूर्णतया मुझमें लीन कर, मेरी उपासना कर, मेरी पूजा कर, मेरे लिये ही यज्ञ कर। तू मोक्षगति को अवश्य प्राप्त करेगा, क्योंकि तू मुझे बहुत प्रिय है। सब धर्मों को त्यागकर मेरी शरण में आ। मैं तुझे समस्त पापों से मुक्त कर मोक्ष प्रदान करूँगा। सम्भवतः इसी आश्वासन ने मीरां के श्रद्धावान्, साधक, समर्पित व्यक्तित्व को आकार दिया था, जिसके फलस्वरूप अनन्य शरणागति भाव से उनके कंठ से पहला गीत फूटा था- –

म्हारा री गिरधर गोपाळ दूसरा णा कूयां।
दूसरा णा कोयां साधां सकळ लोक जूआं।[2]

---

(१) श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय १८, श्लोक ६५, ६६। (२) डाकोर की प्रति, पद १।

द्वितीय खण्ड

समीक्षा और मूल्यांकन

मीरां की प्रामाणिक पदावली का वस्तुमूलक अध्ययन

मीरा के समस्त जीवन और काव्य मे एक उदात्त आत्मचेता व्यक्तित्व की भक्ति-साधना और पुकार-साकार वेदना का प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है। उसमे हमे एक ऐसी मनस्विनी नारी के दर्शन होते हैं, जो सम्पत्ति मे उदार, विपत्ति मे धीर और भगवद्चिन्तन में गभीर रहकर आत्मोत्थान के समस्त व्यवधानो को बडी निर्भीकता से पार कर जाती है, पारिवारिक सकटों, सामाजिक प्रताडनाओ और साम्प्रदायिक गुटबन्दियो द्वारा व्यक्त अपमान और तिरस्कार की उपेक्षा कर अपनी श्रद्धा, निष्ठा और प्रेम प्रतीत के सहारे आजीवन अपने प्रिय की खोज मे व्यग्र रहती है, तथा अन्ततः प्रिय को खोजते खोजते स्वयं को खो देती है। उनके व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियाँ और काव्य के वर्ण्य विषयो मे अनन्य भाव सम्बन्ध है, जिसके आधार पर हम मीरा के काव्य विषयो का अध्ययन, विवेचन और विश्लेषण कर सकते है।

मीरां के काव्य-विषयो का वर्गीकरण

प्रेमाभक्ति के विविध उपादानो के अतिरिक्त मीरा का कथ्य अधोलिखित २७ विषयों से सम्बद्ध है :—

(१) जीव, जगत और ब्रह्म-विवेचन

जीव, जगत और ब्रह्म विवेचन प्रायः सभी मध्यकालीन सन्तो का प्रिय विषय था, किन्तु आलम्बन, आश्रय और तद्विषयक सम्बन्ध सूत्रों की विविधता के कारण सगुण निर्गुण सन्तो की मान्यताओ मे बडा अन्तर है। जीव आश्रय है, ब्रह्म आलम्बन है और जीव का ब्रह्म से आभ्यन्तरिक स्नेह सम्बन्ध भक्ति है। मीरा की भक्ति, प्रेममूला थी। वे शरीर को नश्वर, ससार को चिन्ताओं का बाजार एव दृश्य जगत के समस्त उपादानो को क्षणभगुर मानती थी।[१] उनकी दृष्टि मे सासारिक बन्धन और लौकिक नाते रिश्ते असत्य थे,[२] अत उन्होने मातृ-बन्धु, सगे सम्बन्धियो को त्याग[३] प्रेम-रस के महार्णव गिरिधर नागर से अपना नाता जोडा था[४]। वे एक प्रबुद्ध भक्तात्मा थी, जो कृष्ण को खोजते खोजते खो गई और अन्ततः अपने 'नटनागर' से मिलकर उन ही में लीन हो गई।[५] उनका सारा जीवन कृष्ण-प्रेम के हौज मे नीर क्षीर विवेकी हस की

---

(१) डाकोर की प्रति पद-२। (२) वही, पद-४३। (३) वही, पद-१। (४) वही, पद ६४। (५) वही, पद-२२।

भांति क्रीडा करते हुए बीता। उन्होंने आजीवन श्याम का ध्यान किया, चित्त को उज्ज्वल किया, साधु संतों से भगवद्चर्चा की, शील-संतोष के साथ भक्ति की।[1] कृष्ण उनके जनम-जनम के साथी थे, और उन्हें पाने के लिए उनका 'जीव' विकल था, उद्विग्न था। जीवात्मा की विकलता, संसार के प्रति उदासीनता, और भगवद्प्राप्ति के लिए सतत ध्यान, भक्ति प्रेम और प्रतीक्षा में मीरा का जीवन बीता। उनका जीव ब्रह्म विषयक विचार दाम्पत्य भाव मूलक था, अतः उनकी भक्ति मधुरा भक्ति थी।

(२) संत-सत्संग-माहात्म्य वर्णन

संत आत्मोद्धार के साधन हैं। उनके सत्संग में ईश्वरीय प्रेम का अमृत बरसता है, जिससे मीरा की अनन्त आत्म पिपासा का शमन हुआ करता था।[2] वे जानती थी कि सांसारिक प्रपंचों में फँसे हुए लोग "साधां जणा री निंद्या ठाणा, करम रा कुगत कुमावां। साध संगत मा भूडणा जावा, मूरिख जणम गुमावा ॥,"[3] किन्तु आध्यात्मिक पथगामी साधक के लिए तो संत परमात्म तत्त्व बोधक, भक्ति सुधा सिंधु और आत्मरस के निर्झर होते हैं। इसी भावना से प्रेरित हो मीरा सन्तों में उठती-बैठती थी, हरिगुण श्रवण करती थी, नाचती और गाती थी। उनका संकल्प था कि, "साधां सन्त रो संग ग्याण जुगला करां। धरां सांवरो ध्यान चित्त उजलो करां।"[4] बिहारी ने भी श्याम प्रेम में मन की उज्ज्वलता वाली यही बात कही है :—

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूडै स्याम रँग, त्यों त्यों उज्ज्वल होय ॥[5]

(३) व्यक्तिगत जीवन और सांसारिक क्लेशों के संकेत

मीरा के जीवन और काव्य में अद्वैत है। वे अमरवधू थी, इसीलिए उन्होंने यह दृढ़ निश्चय किया था 'वर णा बरया बापुरो, जणम्या जणम णसाय। बरयां साजण सांवरो, म्हारो चुडलो अमर हो जाय।'[6] कृष्ण को ही अपना प्राणपति मान मीरा ने भाई-बन्धु, सगे सम्बन्धियों को छोड दिया था तथा सगुणोपासिका भक्तात्मा की भांति भजन-पूजन, सत-सत्संग, नृत्य कीर्तन, तीर्थाटन और हरि नाम स्मरण में अपनी जीवन यात्रा पूरी की।[7]

राजकुल की तथाकथित प्रतिष्ठा' के प्रतिकूल आचरण करने के कारण उन्हें अपने भगवत्प्रेम की अग्निपरीक्षा देनी पडी। वे 'जग हांसी' का शिकार हुई, लोगों ने उन्हें 'बिगनी' कहा। उन्हें 'मदण बावरी' और 'श्याम प्रीत मा कावा समझकर विषपान कराया गया, सर्प दंशन कराने के प्रयत्न हुए,[8] किन्तु मनस्विनी मीरा इन

(१) डाकोर की प्रति, पद ७१। (२) वही, पद-३७। (३) वही, पद ५५। (४) काशी की प्रति, पद ७१ (५) बिहारी-प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, वाणी वितान, ब्रह्मनाल, बनारस १, संवत् २०१०, पृष्ठ २४०, दोहा-५५०। (६) काशी की प्रति, पद ८९। (७) डाकोर की प्रति, पद-२, ४७, ७, ८ इत्यादि। (८) वही, पद ४८।

सब प्राणातक प्रसगो मे बाल बाल बच गईं। उन्होने विष के प्याले को चरणामृत समझ कर पी लिया और पिटारी मे काले नाग की जगह उन्हें 'सालिगराम' मिले।[१] वे मेवाड त्याग वृ दावन और फिर वृन्दावन से द्वारका गईं, जहां गिरधर नागर ने उनकी बाँह गहे की लाज रखी और वे कृष्णमय हो गईं।[२]

(४) प्रार्थना और विनय

भौतिक शरीर और दृश्य जगत की नश्वरता से अभिभूत हो मीरा ने जिस अमर प्रियतम की बाँह गही थी, जिस 'गिरधर नागर' को अपना जीवन सर्वस्व मानकर उससे जन्मजन्मान्तर का नाता जोडा था, वह रिश्ता सासारिक विपदाओ और प्राणघाती क्लेशो से छिन्न भिन्न नही हुआ। वे श्री हरि से भवसागर से बचाने के लिए, बाँह गहे की लाज रखन के लिए, तथा अपने उद्धार के लिए आजीवन प्रार्थना करती रही।[३]

(५) नाम-माहात्म्य

कलियुग मे भगवन्नाम ही भगवद्प्राप्ति का साधन है, अत सभी सन्तो भक्तों ने मुक्तकठ से भगन्नामगुणगान किया है। मीरा तो हरि के नाम पर लुभा गईं थी। भगवन्नाम के प्रभाव से पानी पर पत्थर तैर गये थे, गजेंद्र, गणिका, अजामिल का उद्धार हुआ था।[४] ध्रुव, प्रह्लाद,[५] अहिल्या, द्रौपदी, सुदामा आदि की विपत्ति टल गईं थी[६]— इस तथ्य से मीरा सुपरिचित थी, अत उन्होने प्राणो की समस्त व्याकुलता को वाणी मे ढाल कर श्री हरि का नाम स्मरण किया और उन्ह आजीवन खोजती-पुकारती रही।

(६) मीरा के प्रभु के नाम

मीरा ने अपने आराध्य को प्राय 'गिरिधर गोपाल' कहा है, जो भगवान-कृष्ण का पर्यायवाची है। 'गिरिधर' शब्द कृष्ण के 'विपत्ति विदारक' और गोपाल 'रक्षक' रूप का द्योतक है।

इनके अतिरिक्त उन्हाने श्री हरि को "गिरधर गोपाड, स्याम गिरधर नागर, मोहण, कान्हा, बाँके बिहारी मदण मोहण, साँवरा, प्रातम प्यारो, बल बीर, ठाकुर, मोहणा, हरि, अविणासी, पिया, पिय, पिव, प्रीतम, प्रभुजी, गोविन्द, गिरधर ला‍ल, मुरारी, भुवनपति, प्यारे, स्याम सुन्दर, महाराज, साँवरा गिरधारी, कृपा निधान, कमड दड लोचणा, व्रज वणता री कन्त, गिरधारी लाडा, मोहण मुरलीवाले, दीणाणाथ, सिरी ब्रजनाथ, शामरो, गावरधण गिरधारी, जणम जणम रो साथी, सुखसागर स्वामी, नन्दलाल, साँवरियो, सावडया, प्रभु, ओडगियाँ, सामरिया, गिरधर, ब्रजवासी, प्रभु अविनाशी, रणछोड, तरण तारण, असरण-सरण, णन्दणन्दण, नागर णन्दकुमार,

(१) डाकोर की प्रति पद ६१। (२) काशी की प्रति, पद १०३। (३) डाकोर की प्रति, पद २२, २८, ६८ इत्यादि। (४) वही, पद २५। (५) वही, पद-१४। (६) वही, पद-३४।

साजरा, गिरधर लाड, नट-नागर, मोहरा, काण्हडो, अन्तर जामी, सरताज, गुणागर नागर, व्रजराज, पीव, कन्हैया शुखराशी, प्राण अघारो" आदि वह कर स्मरण किया है।

प्रभु के उपराक्त नामो का एक गोपनीय रहस्य यह है कि इनमे से प्रत्येक सम्बोधन के पीछे मीरा का एक विशप भाव और एक विशिष्ट अर्थ छवि विद्यमान है।

(७) जन्मजन्मान्तर के सस्कारो के उल्लेख

डाकोर की प्रति के पद क्रमाक ६७ (ख) की प्रथम पक्ति "रास पूणो जणमिया री राधका अवतार ' व ी रहस्यमय पक्ति है। यह पक्ति मीरा के समग्र जीवन, भाव जगत भक्ति साधना के उस गापनीय रहस्य का मूल मत्र है, जिससे यह सिद्ध होता है कि मीरा स्वय का 'राधा' का अवतार मानता थी। व कृष्ण की जन्म जन्म को दासी[१] थी, पूर्व जन्म की पुरातन प्रीति[२] क कारण वे अपने जन्म-जन्म के साथी 'गिरधर नागर' को भल नहा पाती थी[३]। बचपन से ही उनके मन मे कृष्ण की अमरवधू होने का सस्कार जाग गया था, अत उन्होने उस लौकिक पति का वरण नही किया, जो जन्म लता है और मर जाता है, बल्कि उन्होने उस साँवरे को वरा, जिससे उनका सुहाग अमर हो गया।[४]

मीरा के रूप मे राधा के पुर्नजन्म का एक भेदक तथ्य यह है कि द्वापर की राधा व्रजक्षेत्र की परिधि मे ही वह ज्वालामुखी की तरह धधकती रही, सिसकती रही, पर कलियुग का जन्मा राधा (मीरा) ने अपने सावरिया क लिए राजस्थान, व्रज और गुजरात की गली गली छानी। प्रिय को पुकारती हुई मीरा ने उनकी खोज मे बडे कष्ट सहे और अन्त मे प्रिय को खोजते खोजते स्वय को खो दिया।

(८) प्रिय की खोज के प्रयास

मीरा 'दरद दिवाणी' थी, अत उनसे प्रिय के बिना क्षण भर भी रहा नही जाता था।[५] परिवार और समाज की निंदा सहकर भी उन्होने 'गिरधर' और 'गिरधर भक्ति' का त्याग नही किया। पारिवारिक त्रास से सत्रस्त होने और राणा (विक्रमादित्य) के रूठ जाने के कारण उन्होने घर गृहस्थी और राजनगरी का परित्याग कर[६], रत्नाभरण का जगह जागन का वश धारण किया[७], और वन वन म अपने प्रिय की खोज शुरू का।[८] अन्त प्रेरणा स भगवान कृष्ण का लोला भूमि मे पधारी[९], यमुना के किनार 'प्रिय दशन किये'[१०] और फिर उनके ही चरण चिन्हो का अनुसरण करती हुई द्वारका पहुँची।

---

(१) डाकोर की प्रति, पद २८ । (२) वही, पद ३० (३) वही, पद ४३ (४) काशी की प्रति, पद ८६। (५) डाकोर की प्रति, पद-१७। (६) वही, पद ६१। (७) काशी की प्रति, पद ४७। (८) डाकोर की प्रति, पद ५३ (९) वही, पद ८। (१०) वही, पद ७।

(९) वृन्दावन का प्रकृति चित्रण

मीरा अपनी सखी ललिता के साथ वृंदावन गईं। वहां के धार्मिक वातावरण और नैसर्गिक सौन्दर्य मे उन्हें बडा आनन्द प्राप्त हुआ।[१] यमुना तट पर वेणु वादन करते हुए कृष्ण की त्रैलोक्यमोहिनीमूर्ति की कल्पना कर और उनका दर्शन कर मीरा का हृदय गदगद हो गया।[२]

(१०) आराध्य का रूप-वर्णन

मोरमुकुट, मकराकृति कुण्डलधारी, बांसुरीवादक गोपाल की छवि देख वे आत्मविभोर, आत्मलीन और आत्मविस्मृत हो गईं। उन्होने श्री हरि की उस मादक छवि पर अपना तन मन जीवन सब कुछ न्योछावर कर दिया[३], और उनसे अपना आंखों में बसने के लिए प्रार्थना की।[४]

(११) आराध्य की मूर्तियो के वर्णन

मीरा ने वृन्दावन मे श्री गोविंदजी[५], श्री बांके बिहारीजी[६] और श्री मदन मोहन जी[७] की मूर्तियो के दर्शन किये तथा डाकोर और द्वारका मे श्री रणछोड जी[८] की प्रतिमा का स्तवन किया।

(१२) आराध्य का गुण-वर्णन

मीरा के आराध्य सूरादि कृष्णभक्तो के उपास्य की भांति लीलावतारी कृष्ण नहीं, अपितु भक्तवत्सल, दीनहितकारी विष्णु के अवतार थे। उनके सुदर, शीतलचरण, कमल की भांति कोमल और तापत्रय नाशक थे। वे नख शिख श्रीसम्पन्न थ, अशरण-शरण थे, परम कृपालु थे।[८], ध्रुव, प्रह्लाद, अहिल्या, गणिका, द्रौपदी, सुदामा, कुब्जा, गजेन्द्र आदि की पुकार सुन उन्होंने उनकी रक्षा की थी और उन्ह मोक्ष प्रदान किया था। इसीलिए मीरा भी उनसे अपने उद्धार के लिए अहर्निश प्रार्थना करती रहती थी।

(१३) लीला-वर्णन

मीरा ने विष्णु के रूप म कृष्ण के भक्तोद्धारक अनेक अवतारो का उल्लेख तो किया है, किन्तु इतरेतर कृष्णभक्तो की भांति कृष्ण की माखनचोरी लीला, पनघट लीला, चीरहरण लीला या कुंजगलियो मे गोपियो के साथ छेड छाड आदि का वर्णन नही किया। वे परम वैष्णवी, परम साध्वी कुलांगना थीं, अत सलज्ज कुलवधू की भांति उन्होने कृष्ण को 'व्रज वणआ रो कंत'[१] तो माना, किंतु व्रजवनिताओं और कृष्ण की प्रेम लीलाओं का उल्लेख नही किया। प्रिय के प्रति अपना एकनिष्ठ प्रेम, आत्म

---

(१) डाकोर की प्रति पद ८। (२) वही, पद ७। (३) देखिये डाकोर की प्रति, पद ६२, ६३, काशी की प्रति, पद ७७, ८५, १०० इत्यादि। (४) डाकोर की प्रति, पद ४६। (५) वही, पद ८। (४) वही, पद ४। (६) वही, पद ५। (७) वही, पद-२४। (८) वही, पद ३२।

समर्पण और विरह निवेदन करना ही उनकी वाणी का ध्येय था, अन्य का आधा
था। अन्य गोपियों के साथ कृष्ण की प्रेमक्रीडाओं का चिंतन या वर्णन मीरां के शी
और सतीत्व की सीमा के बाहर है।

(१४) अभिलाषा

मीरा का अधिकांश काव्य एक परमप्रेमपूर्ण, अतृप्त आत्मा की विकल पुका
है। एक वीर क्षत्राणी की तरह उन्होंने अपने गिरधर प्रेम के लिए पारिवारिक प्रता
नाएँ, विषपान और लोकनिंदा सही, जगल-जगल की खाक छानी। इस सबके पी
उनकी एक उत्कट अभिलाषा यह थी कि गिरिधर नागर उन्हें एक बार मिलें औ
उनकी जन्म जन्म की वेदना का शमन करें, उनके दोषों को क्षमा कर, उनकी बां
पकड़े और उन्हें भवसागर में डूबने से बचाएँ, उनका उद्धार करें।[1]

मीरा की यह अभिलाषा उनके आध्यात्मिक प्रेम और भक्तिभाव
ज्ञापिका है।

(१५) होली

मीरा के मन में प्रिय मिलन की अभिलाषाओं की होली जल रही थी। ऐस
अवसर पर बसंत आया, होली आई।"झांझ, मृदंग, मुरली और इकतारे बजने लगे।
सबने होलिकोत्सव मनाया होली की रंगरेलियां मनाईं। केवल जन्म जन्म की कुमारी
मीरा प्रिय वियोग में दुःखी थी, अकेली थी। उन्हें न तो घर सुहाता था, न आंगन। वे
खड़े-खड़े अपने परदेशी प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही थी। वे अपनी व्यथा भी किसीसे
कह नहीं पाती थीं। उन्हें सेज, घर, अटारी, गाँव और देश सब सूने सूने से लगते
थे। प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा करते करते, दिन गिनते गिनते उनकी अँगुलियों की
रेखाएँ घिस गई थी। कोई ऐसा स्नेही न था, जो उन्हें प्रिय के शुभ आगमन का शुभ
समाचार देता। वे उस क्षण की प्रतीक्षा में व्यग्र थी, जब प्रियतम आकर उन्हें कण्ठ-
लगाने वाले थे।"[2]

(१६) वर्षा

वर्षा आई। काली पीली घटाएँ उमडने घुमडने लगी। बादल पर बादल जम
गए। मधुर पवन सनसनाने लगा। जमकर बरसात हुई। प्यासी धरती तृप्त हो गई
पर, मीरा प्रिय की प्रतिक्षा में आखें बिछाकर द्वार पर खड़े खड़े भीगती रही।[3]

मीरा के उक्त होली वर्षा-वर्णन स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण नहीं, विरहोद्दीपक
प्रकृति-वर्णन हैं।

---

(१) देखिए-डाकोर की प्रति, पद १२, २३, ६६, ६८ और काशी की प्रति, पद ६०, ६७ आदि। (२) काशी की प्रति, पद ७०, १०२। (३) डाकोर की प्रति, पद ४०, ५३।

(१७) प्रेमालाप

मीरा भगवान कृष्ण के दर्शन के लिये आतुर थी। अपने जन्मजन्मान्तर के साथी से—गिरिधर नागर से—उन्होंने प्रार्थना की कि, हे महाराज! मेरे यहाँ पधारो। मैं आपके लिए आँखें बिछाऊँगी आपको हृदय के आसन पर बिठाऊँगी, सिर पर धारण करूँगी। हे भक्तों के संकटों का नाश करने वाले! हे पुण्य के प्रतिष्ठापक!! हे जगोद्धारक अतिथि!!! आओ, और मेरे भाग्य का शृंगार करो।[१]

मीरा के प्रिय ने मीरा की पुकार सुनी। वे मीरा के घर आये। युग-युग की विरहिणी मीरा ने अपने प्रिय को पाया। उन्होंने उनपर रत्न न्यौछावर किये, उनकी आरती उतारी, प्रिय के इस शुभागमन से मीरा पुलकित हो गईं[२] और मीरा के लोभी नैत्र प्रियतम के रूप-सौन्दर्य को देखकर अटक गये। उन्होंने जी भरकर प्रिय की छबि देखा। उस समय उनके पास कहने के लिए इतना कुछ था, कि वे कुछ भी न कह सकी। भावावेश में केवल इतना ही कह सकी कि—

'थाणे काई' काई' बोड़ शुणावा म्हारा सांवरा गिरधारी···[३]

मीरा अपने प्रिय के रूप-सौन्दर्य पर न्यौछावर हो गईं और बार-बार उनकी बलिहारी जाने लगी।

मीरा और कृष्ण का यह साक्षात्कार एक विशिष्ट भावदशा है। इस "साक्षात्कार की जड़ भौतिक मीमांसा के वितण्डवाद में न पड़ते हुए आजकल के बुद्धिवादियों से मेरा अनुरोध है कि वे इस साक्षात्कार को 'आत्मसाक्षात्कार' के रूप में मान लें। इसके सम्बन्ध में मेरा यह मत है कि साधना के क्षेत्र में, साधक के मन में जब आराध्य के प्रति भावना और चिन्तन अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं, तब हृदय की उस तल्लीन अवस्था में, जिसे साधना-पद्धति में 'समाधि-दशा' कहा गया है, साधक को अन्तर्पट पर अपने साध्य का स्वरूप सजीव दृष्टिगोचर होता है और आराध्य सम्बन्धी भाव, विचार और कल्पना मूर्त प्रतीत होते हैं। आत्मोल्लास की परम दशा में आराध्य का यह मूर्त आभास ही 'आत्मसाक्षात्कार' है। यह साक्षात्कार केवल अनुभूति का ही विषय है, अभिव्यक्ति का नहीं। कदाचित इसी प्रकार सगुणोपासक भक्तों और सन्त-महात्माओं ने अपने आराध्यदेवों का दर्शन किया होगा।"[४]

मीरा और कृष्ण का उक्त मिलन इसी प्रकार का एक अत्यन्त गोपनीय, मनोवैज्ञानिक आध्यात्मिक मधुर-मिलन है, जो स्थूल जगत से परे भाव जगत की अपूर्व उपलब्धि है।

---

(१) डाकोर की प्रति पद-२६। (२) काशी की प्रति, पद ७६। (३) डाकोर की प्रति पद-१०। (३) श्रीमद्भगवद्गीता : जीवनी और तत्त्वज्ञान—डॉ० भगवानदास तिवारी द्वितीय आवृत्ति, पृष्ठ ६। (४) डाकोर की प्रति, पद-३०।

(१८) दर्शनानन्द

श्याम के शुभागमन के उपलक्ष मे मीरा ने भविष्यवक्ता ज्योतिषी को बधाई दी[1] और अपने स्वामी से प्रार्थना की कि—

> बस्या म्हारे णेणण मा नन्दलाड।
> मोर मुगट मकराकृत कुडड अरुण तिडक शोह्या भाड।
> मोहन मूरत सांवरां शूरत नैणां बण्या बिशाड।
> अधर सुधारश मुरडी राजा उर बैजण्ता माड।
> मीरा प्रभु सता शुखदाया, भगत वछड गोपाड।

इस रूप मे मीरा ने प्रिय का दर्शनानन्द पाया।

(१९) मुरली

कृष्ण की मुरली नाद ब्रह्म की जननी थी। यमुना पुलिन पर शान्त, स्निग्ध, फेनोज्ज्वल चन्द्रिका के वितान तल जब कृष्ण वृन्दावन में मुरली बजाते थे, तब उनका मादक स्वर जड़-चेतन पर अपूर्व प्रभाव डालता था। गोपियाँ लोक लाज, भय सकोच, कुल मर्यादा और स्वजनों को छोड़ आतुरता से कृष्ण मिलन के लिए दौड़ पड़ती थीं। व्रज की गोपियाँ ही क्या, देव विमानों में उपस्थित देवांगनाएँ भी अपने शरीर और वस्त्रों की सुध बुध भूल जाती थीं और उनकी वेणी में गुम्फित फूल नीचे गिर गिर पड़ते थे।[2]

मीरा ने यह 'मुरली ध्वनि' सुनी थी और उसके प्रभाव की स्वीकृति देते हुए उन्होंने कहा था कि —

> नागर णदकुमार लाग्यो थारो णेह।
> मुरडी धुण सुण बीसरा, म्हारो कुणबो गेह।[3]
> × × ×
> मुरडिया बाजा जमणा तीर।
> मुरडी म्हारो मण हर लीन्हो, चित्त धराणा धीर।[4]

भावजगत में कृष्ण के दर्शन तथा मनोजगत में उनकी मुरली की धुन सुनकर मीरा की अन्तरात्मा उन्हें यमुनातट पर चलने के लिए प्रबोधने लगी। उन्होंने अपने मन से कहा—हे मन! निर्मल जलवाली यमुना के तट पर चल, जिसमें अवगाहन करने से मन पावन और शरीर शीतल हो जाता है। वहाँ बलराम को साथ ले कृष्ण वंशी बजाते और गाते हैं।[5]

(२०) उपालम्भ

कृष्ण मीरा से मिल और उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर अन्तर्धान हो गए,

---

(१) डाकोर की प्रति पद ४६। (२) श्रीमदभागवत, स्कन्ध १०, अध्याय २१, श्लोक ६, १२। (३) काशी की प्रति पद ७८। (४) वही पद ६४। (५) डाकोर की

अत, मीरा उनके वियोग म मछली सी तडपने लगी, पतगे सी जलने लगी।[१] कृष्ण ने उनकी पीडा नही पहचाना अत मीरा ने ही उन्ह उपालम्भ दिया कि हे प्रभु! तुम मुझे प्रेमामृत पिलाकर अब विरह का विष क्यो पिला रहे हो?

(२१) मनोराज्य

प्रिय वियोग से मीरा बेचैन हो गई।[२] वे निरतर उनका ध्यान, चितन और स्मरण करने लगी,[३] तथा उनकी खोज मे घरद्वार छो॰ वृदावन की गलियो मे भटकने लगी। कल्पना लोक म उन्होंने कृष्ण स प्रार्थना की कि हे गिरिधारीलाल! तुम मुझे चाकर रख लो। मैं तुम्हारी चाकरी करूंगी, तुम्हार लिए बाग लगाऊँगी। 'चाकरी' मे दर्शन और 'खरची' म 'नामस्मरण' पाऊँगी। मेरा हृदय तुमसे मिलने के लिए अधीर है। तुम मुझे आधी रात को यमुना जी के तट पर दर्शन देना।[४]

कृष्ण के लिए मीरा जागन बन गई और उन्हे ढूँढने चल दी।[५] इस तरह से मिलन का मनोराज्य, आजन्म विरह, पीडा और पुकार मे बदल गया।

(२२) आजन्म विरह

विरह अमर काव्य का प्राण है। मीरा का अधिकाश काव्य उनकी विरहानुभूति से ओतप्रोत है। विरह की तीव्रता और प्रचुरता क कारण मीरा के पदा मे बडी मर्मस्पर्शी पीडा पाई जाती है। "माई म्हाणे सुपणामा परण्या दीणानाथ"[६] से मीरा का 'पूर्वराग' सकेतित है, किन्तु जब से उन्होंने कृष्ण को 'जणम जणम रो साथो'[७] कहा, तबसे उनका पूर्वराग इसी जन्म का नही, जन्मजन्मान्तर की धरोहर बन गया। इस प्रौढ पूवराग की दसो दशाएँ मीरा क काव्य मे विद्यमान हैं।

प्रौढ पूर्वराग की दस दशाएँ

(१) लालसा—मीरा के मन में प्रिय मिलन की उत्कट लालसा थी—

"पीया विण रह्या न जावा।
तण मण जीवण प्रीतम वारया।
निसदिण जोवा वाट क्र रूप लुभावा।
मीरा रे प्रभु आशा थारी दासी कठ आवा॥"[८]

× × ×

"मीरा रे प्रभु कबरे मिलोगा थे विण रह्या णा जाय।"[९]

× × ×

"वा गिरिया कब होशी म्हारो हस पिय कण्ठ लगावा।"[१०]

---

(१) काशी की प्रति, पद ७८। (२) डाकोर की प्रति, पद ८। (३) वही, पद ५७। (४) वही, पद ३५। (५) काशी की प्रति, पद ७४। (६) डाकोर की प्रति, पद ३६। (७) डाकोर की प्रति, पद ४३। (८) वही, पद १७। (९) वही, पद-११। (१०) काशी की प्रति, पद ७०।

(२) उद्वेग—भावावेश में मीरां की लालसा उद्वेग में बदल गई। उन्होंने अपनी सखी ललिता से कहा—

"सजणी कब मिडश्या पिव म्हारा।
चरण कवड गिरधर शुख देश्या, राख्या णेणा णेरा।
णिरखा म्हारो चाव घणेरो, मुखडा देख्या थारा।
व्याकुड़ प्राण धरया णा धीरज, बेग हरया म्हा पीरा।"[१]

अधीर प्राणों के उद्वेग को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि—

"आवा मोहणा जी जोवा थारी वाट।
खाण पाण म्हारे 'णेक णा भावा नेणा खुड़ा कपाट।
थे आया विण शुखणा म्हारा हिवड़ो घणो उचाट॥"[२]

(३) जागरण—विरह और उद्वेग के कारण उन्हें पल भर भी चैन नहीं पड़ती थी, न घर अच्छा लगता था, न नींद आती थी।[३]

सखी म्हारी णीद णशाणी हो।
पिय रो पथ निहारता शव रैण बिहाणी हो।[४]

मीरा ने अपने निद्रा-नाश का वर्णन अनेक पदों[५] में किया है।

(४) तानव—निरन्तर जागरण, प्रतीक्षा और विरह वेदना के कारण मीरा का शरीर क्षीण हो गया। परिणाम यह हुआ कि—

भूख गया निदरा गया पापी जीव णा जावा रे।"[६]

× × ×

"अग खीण व्याकुड भया मुख पिव-पिव बाणी हो।"[७]

(५) जड़िमा—कृष्ण का विरह मीरा की सम्पूर्ण चेतना पर कुछ इस तरह से हावी हो गया था कि उनके सामने 'क्या करूँ, क्या न करूँ ?' की समस्या निर्माण हो गई। अपनी सखी से उन्होंने कहा कि—

"कहा करा, कित जावा सजणी, म्हा तो स्याम डशी।"[८]

यह कर्त्तव्याकर्त्तव्य की समस्या विरह दशा से अनुस्यूत है, बुद्धि-सभ्रम से नहीं।

(६) वैवग्र्य (व्यग्रता)—मीरा की व्यग्रता उनकी विवशता थी। उसके चंचल नेत्र, मन और प्राण पराये हाथो बिक गये थे। लोग उन्हे बुरा भला कहते थे। उनकी व्यग्रता देखिए—

"कड़णा पडता हरिमग जोवा, भया छमाशी रेण।

---

(१) डाकोर की प्रति पद ६७। (२) डाकोर की प्रति, पद-१६। (३) वही, पद-२१। (४) वही, पद ३६। (५) डाकोर की प्रति, पद-२१, २३, ३७, ३६ तथा काशी की प्रति, पद ८१, ६३, ६६। (६) डाकोर की प्रति, पद-२३ (७) वही, पद,

थे विछडया म्हा कडपा प्रभुजी, म्हारो गया शब चेण।
मीरा रे प्रभु कबरे मिलोगा दुख मेटण शुख दण।"३

(७) व्याधि—प्रेम, विरह, लालसा, उद्वेग, जागरण, तानव, जडिमा और व्यग्रता से मीरा का शरीर जजर हो गया। उन्होंने 'प्राण गुमाया भूरता रे, णेण गुमाया रोय :"४ यहा नही, वलिक वे—

"पाणाज्यूं पीडी पडी री लोग कहया पिड वाय।
बावडा वेद बुडाइया री, म्हारी वाह दिखाय।
वेदा मरम णा जाणा री, म्हारो हिबडो करका जाय।"६

मीरा की यह पीडा शारीरिक नहीं, अन्तर्पीडा थी, जिसका एक ही इलाज था—

"मोरा री प्रभु पीर मिटागा, जद वेद सावरो होय।"७

(८) उल्लास—मीरा की व्याधि का मूल कारण था—

"हरि विण क्यूं जिवा री माय।
श्याम विणा वौरा भया मण काठ ज्यू घुण खाय।
मूड ओखद णा डग्या म्हाणे प्रेम पीडा खाय।"८

विरह म निरन्तर प्रिय चिन्तन के कारण मीरा का प्रिय क दर्शन हुए, अन्तमंन मे साक्षात्कार हुआ और वे हर्ष विभोर हो हरि रग म रँग गईं, भावमग्न हो पैरों म घुंघरू बाँधकर नाचने लगी। यथा—म्हा गिरधर आगा नाच्या री।

णाच णाच पिव रसिक रिझावा प्रीत पुरातन जाच्या री।"...९

मीरा का यह मिलनोल्लास भावजगत को काल्पनिक सृष्टि थी। यह मिलन उनके स्वप्न मे हुए परिणय की ही भाँति स्वप्नवत् था, परन्तु स्वप्न के टूटते ही सत्य का साक्षात्कार हुआ और उन्हें प्रिय का वियोग पहले से भी अधिक तीव्रता से भास मान होने लगा।

(९) मोह (मूर्च्छा)—विरह व्यथा के अतिरेक स उनकी अवस्था यह हुई कि—

'अंग खीण व्याकुळ भया, मुख पिव पिव वाणी हो।
अन्तर वेदण विरह री, म्हारी पीड णा जाणी हो।
ज्यूं चातक घण कूं रटा मछरी ज्यूं पाणी हो।
मोरा व्याकुड विरहणो, सुध-बुध विसराणी हो।"१०

मीरा की यह मूर्च्छा मूफियो के 'हाल' स मिलती जुलती है, यथा—

---

(४) डाकोर की प्रति, पद २० (५) वही, पद २१ (६) काशी की प्रति, पद ७६। (७) डाकोर की प्रति, पद १६। (८) वही, पद ४० (९) वही, पद ५६। (१०) डाकोर की प्रति, ३६।

"विरह भुवंगम डस्या कड़ेज्या इहर हड़ाहड़ जागी।
मारा व्याकुड़ अत अकुडाणो, स्याम उमंगा ड़ागी।"[१]

(१०) मृत्यु—विरह की दशम दशा मृत्यु है। प्राणांतक पीड़ा का अंत प्राणों का प्रयाण है। मीरा के प्राण पीडित थे, इसीलिए उन्होंने कहा था कि—

"रावडो विडद म्हाणे णूढो ड़ागा पीड़त म्हारो प्रांण।"[२]

उक्त प्राण-पीडा के कारण वे मदेह होकर भी विदेह दशा मे रहती थीं—

"मीरा रे प्रभु सावरो थे विण देह अदेह।"[३]

अन्तत. मीरा के प्रभु उन्हें मिल गये और वे आकर उनकी आँखो मे बस गये।

"णेणा वणज वसावा री म्हारा सावरा आवा।
णेणा म्हारा सावरा राज्या डरता पड़कणा डावा।
म्हारा हिरदा वश्या मुरारी पड पड दरशण पावा।
स्याम मिलण सिगार शजावा शुख री सेज बिछावा।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर बार बार वड़ जावा।"[४]

हृदयस्थ मुरारी से मीरा का यही महामिलन हुआ। सावरे मीरा की आंखो मे आकर समा गए और मीरा की आँखें खुली की खुली रह गईं। मीरा कृष्णमय हो गईं।

समंजस पूर्व राग की दस दशाएँ

प्रौढ पूर्वराग की दस दशाओ की तरह मीरा के काव्य मे समंजस पूर्वराग की दस दशाएँ भी पाई जाती हैं। ये दशाएँ निम्नानुसार है—

(१) अभिलाषा, (२) चिन्ता, (३) स्मृति, (४) गुणकीर्तन, (५) उद्वेग, (६) विलाप, (७) उन्माद, (८) व्याधि, (९) जड़ता और (१०) मृत्यु।

मीरा कृष्ण की जन्म-जन्म की दासी थी और वे इस जन्म मे भी अपने प्रियतम से मिलने की अभिलाषा करती थी। दिन रात वे अपने प्रियतम से मिलने की चिन्ता में उद्विग्न रहती थी तथा अपने प्रियतम के रूप-गुण औदार्य और विरुद्ध की स्मृति करती रहती थी। साधु-सन्तो की सगति मे अथवा परम एकान्त म बैठ वे अपने 'गिरधर' का गुण कीर्तन करती थी और उनके वियोग मे उद्वेगवश विलाप करती थी। भावुकता मे उनकी विरहदशा उन्माद का रूप ले लेती थी और वे लोक लाज-कुल मर्यादा को त्याग अपने गिरधर की प्रतिमा के समक्ष पैरो मे घुंघरू बांधकर नृत्य करती थी। दिन-रात आध्यात्मिक विरह के सताप के कारण वे व्याधि ग्रस्त हो गई था। और उनका शरीर क्षीण हो गया था। यह व्याधि भी अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी—"गणता गणता घिश गह्या रेखा आगरिया री सारी।"[५] पक्ति से प्रियतम की

(१) काशी की प्रति, पद-९३। (२) डाकोर की प्रति, पद-३३। (३) काशी की प्रति, पद-७८ (४) वही, पद १०३। (५) काशी की प्रति, पद १०२।

प्रतिक्षा मे दिन गिनते गिनते अंगुलियो की रेखाओ के घिस जाने का उल्लेख निस्सन्देह व्याधि की चरम सीमा का सकेत है। अपने प्रिय के बिना मीरा के लिये ससार शून्य था। उन्हें समझ मे नही आता था कि क्या करे? कहाँ जायें? यही उनकी जडता थी। अन्तत. अपने प्रिय की खोज मे उन्होने अपने आपको खो दिया। वे वृन्दावन से द्वारका गई और वही कृष्णमय हो गई। भावदशा के अनुरूप यही भौतिक मीरा की मृत्यु और यही आध्यात्मिक मीरा के प्रभु से महामिलन का सुयोग था।

साधारण पूर्व राग और उसकी दशाऐं

साधारण पूर्व राग की प्रथम छ दशायें समजस पूर्व राग की प्रथम छ दशाओ की भाँति अभिलाप से प्रारम्भ होकर विलाप पर समाप्त हो जाती है। इसके बाद मान, प्रेम-वैचित्र्य और प्रवास होना है। मीरा के काव्य मे मान और प्रेम-वैचित्र्य के भाव नही है, किन्तु उनका विरह प्रवास जन्य क्लेश से प्रेरित है। हाँ, मीरा के भाव जगत मे प्रिय-प्रवास के चिह्न अवश्य अंकित हैं—

"सांवडिया म्हारो छाय रह्या परदेस।
म्हारा बिछडया फेर न मिडया, मेज्याणा एक शन्नेस।'[1]

प्रिय-प्रवासजन्य मानसिक क्लेश से दुखी होकर मीरा ने प्रिय को पान के लिए स्वय प्रयास किए।

प्रवासजन्य-क्लेश की दस दशाएँ

प्रवास-जन्य क्लेश की दसो दशाएँ समजस पूर्व राग की दसो दशाओ के अनुसार होती हैं, जिनका विवेचन पहले किया जा चुका है। इन सभी विरह दशाओ का मीरा के काव्य में वर्णन पाया जाता है।

(२३) मीरां की उपासना-पद्धति का स्वरूप

मीरा वैष्णव भक्त थी, अतः उनकी उपासना-पद्धति नवधा-भक्ति के अन्तर्गत आती है। पति-पत्नी भाव से कृष्ण के प्रति प्रेम करने के कारण मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की भक्ति थी। मीरां ने अपने आप को कृष्णार्पण कर सारे-संसार से नाता तोड लिया था। वे विरक्तात्मा थी। अत. उन्होंने राजसी वैभव, रत्नाभूषणादि का परित्याग कर दिया था और सिर पर जटायें बढा ली थीं। प्रिय की खोज के लिये उन्होंने भगवा वस्त्र धारण किय थे और वे उन्हें चारो दिशाओं में ढूंढती फिरती थी।[2] वे अगम्य देश में प्रवेश पाने के लिये साधु-सन्तों से सत्सग और ज्ञान चर्चा करती थी। सांवरिया का ध्यान धरकर हृदय को उज्ज्वल बनाती थी, शील के घुंघरू बांधकर संतोष मे नृत्य करती थीं। गिरधर से ही उनकी प्रीति थी अतः वे सासारिक जीवों से विमुख थी।[3] उनका मन निरन्तर श्याम नाम रटा करता था।[4] वे ससार

(१) काशी की प्रति, पद-७४। (२) वही, पद-७४। (३) वही, पद-७१।
(४) डाकोर की प्रति, पद ५८।

ो बीड का काँटा मानती थी और उसे प्रभु प्रेम के पथ का बाधक तत्व समझती थी। भवसागर से पार होने के लिये वे श्याम नाम का जहाज चलाती थी, गोविन्द के गुण गाती थी, नित्य प्रात काल उठकर गिरधर के मादर मे जाती थी, दर्शन करती थी रणामृत लेती थी और भाव भक्ति स हरि के मदिर मे नृत्य करती थी। वे गिरधर े सम्मुख राज भोग' का थाल प्रस्तुत करती थी और उन्हे "छप्पण भोग छत्तीशा बजण" अर्पण किया करती थी।[1]

२४) विधि-विधान की स्वीकृति

मीरा ने अपनी पदावली मे दो स्थला पर भाग्यवाद का विधि विधान का उल्लेख कया है। ये दोनो पद बडी गभीर साकेतिकता से परिपूर्ण हैं। उन्होने कहा है कि विधि का विधान ही न्यारा है। उसने मृग को बडे बडे नेत्र दिये है, पर वे वन वन रे मारे फिरते है। (मछली को मारकर खाने वाले कपटी) बगुलो का वर्ण शुभ्र होता और (मधुर स्वर से गाने वाली) कोयल का रग काला है। नदियो मे निमल जल ो धारा प्रवाहित है, किन्तु (रत्नाकर) समुद्र का जल खारा है। मूख लोग सिहासन र बिराजते हैं और पडित (ज्ञानी) दर दर मारे मारे फिरते हैं।"[2]

"भाग्य को गति टालने से भा नहो टलती। भाग्यवश सत्यवादी राजा हरिश्न्द्र को डोम के घर पानी भरना पडा। पाँचा पाण्डव और उनकी रानी द्रोपदी के ड हिमालय पर्वत पर गल। राजा बलि ने इन्द्रासन पाने क लिये यज्ञ किया, किन्तु न्हे पाताल म जाकर रहना पडा। (मेरे परिवार वालो ने राणा विक्रमाजीत न) के विष दिया, किन्तु गिरधर नागर ने उस विष को अमृत मे परिवर्तित कर या।[3]

पहले पद मे "मूरख जण सिंघासण राजा' द्वारा राणा विक्रमादित्य का सकेत या गया है और दूसरे पद मे उसके द्वारा दिये गये विष का अमृत मे रूपान्तरण हो ने का उल्लेख है, जो मीरा पर भगवदीय कृपा का निदशक है।

२५) आराध्य के नाम और मीरा का उनसे सम्बन्ध

मीरा ने अपने प्रिय को अनेक नामो से पुकारा है। उनका प्रत्येक सम्बोधन प्रयोजन और विशिष्ट भावबोधक है। इन सम्बोधनो के आधार पर मीरा के निम्न लिित रूपो का दर्शन किया जा सकता है।

(क) विनीता—भाव बन्धन से मुक्ति पाने के लिए विनीता मीरा ने अपने जन्म म के साथी को गिरधर नागर, स्याम (पद क्रमाक २), ठाकुर (८),[4] प्रभुजी १), गिरधर डाड (१४), महाराज (२६), कृपानिधाण (३१), गिरधारी डाडा ५), प्रभु (५३), दीणाणाथ (३६), शामरी (३७), गोबरधण गिरधारी (४२),

---

(१) काशी को प्रति, पद ८२। (२) डाकोर की प्रति, पद ९१। (३) वही, ५४। (४) कोष्ठक में दिए गये अक प्रस्तुत ग्रन्थ में दी गई 'मीरां की प्रामाणिक दवली' की पद सख्या के द्योतक हैं।

सरण तारण (६७-क), असरण सरण (६८), अन्तरजामी (६०), सरताज (६१), शुखरासी (६५), प्राण अधारो (१००) आदि कहकर पुकारा है।

(ख) गुण-लीला-गायिका—प्रभु के गुण और उनकी लीला का गायन करते समय मीरा ने उन्हें बलबीर (७), कान्हा (७), मुरारी (१८), कमड दड डोचणा (३२), गोपाड (४६), व्रजवाशी (६२) नटनागर (८३), गुणागर नागर और व्रजराज (६१), कहा है।

(ग) दर्शनार्थी—दर्शनानन्द लेते समय मीरा ने अपने प्रिय को कान्हा (३), बांके बिहारी (४) मदण मोहण (५), सांवरा गिरधारी (३०), शुखसागर स्वामी (४४), नन्दलाड (४६), सामरिया (४७), रणछोड (६५), णण्दणण्दण (७२), श्याम कन्हैया (६५) कहकर स्मरण किया है।

(घ) आराधिका—आराधिका और साधिका के नाते से मीरा ने कृष्ण को गिरधर गोपाड (१), हरि अविणासी (६), व्रज वणता रो कंत (३२) मोहण मुरडी वाडो (३५) जोडगिया (५६), प्रभु अविनाशी (६२), गिरधर लाड (८३) और घरणी-घर (६७) शब्दों से सम्बोधित किया है।

(ङ) विरहिन प्रेयसि—चिर वियोगिनी के रूप मे मीरा ने अपने प्रियतम को मोहण (३), सांवरा (८) प्रीतम प्यारो (६), मोहणा (६), पिया (१०) प्रीतम (१८), भुवनपति (२३) प्यारे (२६), स्याम सुन्दर (२७) सिरी व्रजनाथ (३६) पिव, पिय, गोबिन्द (३६), जणम जणम रो शाथी (४३) सांवरियो (४८) गिरधर (५६) सावडया (६१), नागर णण्दकुमार (७८), साजण (७६) मोहण (८७) काण्हडो (८६), पीव (८६) कहकर उनके समक्ष अपनी अन्तर्व्यथा और पीडा प्रकट की है।

(२६) मीरां की छाप

मध्यकालीन संगीतज्ञ, सूक्तिकार तथा भक्त कवियों की भांति मीरा ने भी अपने नाम की छाप अपने पदों मे रखी है। मुल पदावली में यह छाप निम्नलिखित रूपों में पायी जाती है—

१. मीरां (केवल नाम)—पद क्रमांक १, ३, ४, ५, ६, १३, १५, १६, १६, २३, ३०, ३१, ३६, ३७, ३६, ४६, ५६, ५६, ६१, ६३, ६८, ७०, ७६, ८१, ८३, ८५, ८६, ८८, ६३

२ मीरां रे प्रभु गिरधर नागर—पद क्रमांक २, ७, ८, १०, २८, २६, ३२, ३५, ३८, ४१, ४२, ४३, ४५, ४७, ४८, ५०, ५१, ५७, ६२, ६४, ६५, ६६, ७२, ८४, ८७, ६२, ६४, ६६, ६७, ६६, १००, १०१, १०२.

३ मीरां रे प्रभु हरि अविणासी—पद क्रमांक ६, ४६, ५२, ५८, ६०, ७५, ८६, ६५.

४ मीरां रे प्रभु—पद क्रमांक ६, ११, १२, १७, २०, २१, २२, २७, ३४, ४०, ५३, ५४, ५५, ७४, ७७, ७८, ६१, ६८, १०२.

६

५ दासी मीरां डाड़ गिरधर—पद क्रमाक १४, २६, ६७ (स), ६६
६ मीरां रे हरि—पद क्रमाक १८,
७ मीरां दासी—पद क्रमाक २४, २५, ३३, ७३, ८०, ८२, ६०.
८. मीरां रे शुखसागर स्वामी—पद क्रमाक ४४,
६. मीरां रे शुख सागरां—पद क्रमाक ७६

१० छाप हीन पद—पांडुलिपियों में पद क्रमाक ६७ क और पद क्रमाक ७१ अधूरे उपलब्ध हुये हैं, उनकी अतिम पक्ति न मिलने के कारण उनमे मीरा की जो छाप रही होगी, उसका पता नही है।

मीरा की इन्ही 'छापो' को उलट-फेर के साथ गेय परम्परा मे प्रयुक्त किया गया है, और सत भक्तो ने मीरा की भाव-धारा के अनुरूप नये पदो की सृष्टि कर उन्हें भी मीरा के नाम से चला दिया है।

(२७) मीरां-भाव

भावना की दृष्टि से मीरा की सम्पूर्ण पदावली प्रेममूला भक्ति-भाव पर आधारित है। प्रेममूला भक्ति निर्गुणियो सन्तो और सगुणोपासक भक्तो मे समान रूप मे पाई जाती हैं। कबीर जैसे निर्गुणियो ने जीव और ब्रह्म पर पत्नि पति भाव आरोपित कर "राम मोर पिउ, मैं राम की बहुरिया" कहा है। तत्वत: यह एक आध्यात्मिक रूपक है, जो प्रतीक के रूप मे अभिव्यक्त हुआ है और जिससे कबीर ने नारीत्व अपने ऊपर आरोपित कर लिया है। प्रेममार्गी सूफियों मे भी प्रेममूला भक्ति पाई जाती है, जहां जीव (रूह) और ब्रह्म (खुदा) के आध्यात्मिक रूपक क्रमश. प्रिय-प्रेयसि के रूप मे पाये जाते हैं, जो भारतीय धर्म-दर्शन की मान्यता के सर्वथा प्रतिकूल है। सूफी सन्तो मे यह भाव वैयक्तिक न होकर तटस्थ रूप से व्यक्त हुआ है। अर्थात् ज्ञानमार्गियो ने उसे अपने ऊपर आरोपित किया है तो प्रेममार्गी सूफियो ने अपने कथानको मे पात्रो के माध्यम से जीव-ब्रह्म सबध या रूह खुदा के इश्क का विवेचन किया है। सूफी तटस्थ कथाकार थे, उन्होने आत्म-कथा न कहकर अन्य पात्रो की प्रतीकात्मक कथायें कही हैं अत: वे जीव-ब्रह्म सम्बन्ध के प्रतीकात्मक, प्रेमाख्यानक गायक थे।

इसके दूसरी ओर सगुणोपासक भक्तो की परम्परा है, जो रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा के रूप मे विकसित हुई है। राम चराचर के स्वामी, शील, शक्ति, सौन्दर्य-सम्पन्न सच्चिदानद सन्दोह विष्णु के अवतार थे। उनके प्रभु व के आगे उनके सेवक और दास ही ठहर सके हैं। महर्षि बाल्मीकि ने राम को धीरोदात्त आदर्श नृपति मान उनकी यशगाथा गाई है और कवि श्रेष्ठ तुलसी ने दास्य भाव से प्रेरित हो भगवान राम को अपना स्वामी माना है। आगे चलकर कृष्ण काव्य की रसिक वृत्ति के संस्कारो की छाया रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय के रूप मे प्रकट हुई। गीता और श्रीमद्भागवत पुराण मे कृष्ण का ब्रह्म रूप प्रतिष्ठित है, अत: गोपियो पर

आत्म भाव-जीव भाव आरोपित हुआ है। इसलिए भक्ति-दर्शन में कृष्ण ब्रह्म और गोपियां जीवात्माओं के रूप में निरूपित हैं।

गोपी भाव का विकास चतुर्विध है। व्रज की गोपियां सर्वसामान्य जीवात्माएं हैं। राधा कृष्ण की विशेष अनुकम्पा प्राप्त आह्लादिनी शक्ति है। राधा का धार्मिक अस्तित्व सर्वमान्य किन्तु ऐतिहासिक अस्तित्व विवाद्य है। मीरा राधा का अवतार थी, स्वयं प्रमाण थीं। राधा में परकीया भाव भी प्रतिष्ठित है, किन्तु मीरा पूर्णतः स्वकीया थीं। राधा-कृष्ण के वियोग में व्रज में रोती रही, कुढती रही, सिसकती रही, धधकती रही, किन्तु मीरा ने व्रज तथा द्वारका तक जाकर अपने प्रिय को खोजा। *राधा में भावुकता अधिक थी, तो मीरा में कर्मनिष्ठा और प्रयत्न की पराकाष्ठा दिखाई* देती है। राधा में मान आदि के भाव हैं, तो मीरा में समर्पण का प्राधान्य है। यहां इस तथ्य का निर्देश कर देना आवश्यक है कि धर्म दर्शन और आध्यात्मिकता के धरातल पर राधा और मीरा की तुलना करना समीचीन नहीं है। राधा परम ब्रह्म कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति ही नहीं, परम प्रिया थी। तत्सुख सुखी भाव के कारण व कृष्णमय हो गई थी। राधा कृष्ण के बीच द्वैत में अद्वैत और अद्वैत में द्वैत का रहस्य है किन्तु मीरा में ऐसा कोई रहस्य नहीं है। स्वयं को राधा का अवतार समझने पर भी उन्होंने "तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति। तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति"[१] जीवन-यापन किया।

कृष्ण को पति मानकर उपासना करने का एक रूप देवदासियों का भी था। अन्दाल, सखुबाई और कान्होपात्रा आदि देवदासियों का लौकिक विवाह आराध्य की मूर्तियों के साथ हुआ था। व्रज की गोपियों ने कृष्ण को पति के रूप में माना था, राधा कहीं स्वकीया, कहीं परकीया मानी गई है, देवदासियों का प्रभु प्रतिमाओं से विवाह हुआ था, परन्तु इस परंपरा में मीरा का व्यक्तित्व किंचित् भिन्न है। मीरा का स्वप्न में व्रजनाथ से परिणय हुआ था। उनका यह भाव सम्बन्ध आन्तरिक एवं आध्यात्मिक था, जो कभी भी स्थूल जगत में मूर्त नहीं हुआ। भक्तिकाल के अनेक कृष्णोपासक सम्प्रदायों में राधा भाव, गोपी भाव की उपासना हुई है किन्तु उनमें पुरुष भक्तों ने स्वयं पर 'नारीत्व' आरोपित कर भावाभिव्यक्ति के प्रयास किये हैं। मीरां के स्वतः सिद्ध नारीत्व के कारण उनके पदों में नैसर्गिक अनुभूतियों का एक निराला ही आकर्षण है। उसमें प्रथम पुरुष में आत्मा की प्रत्यक्ष आवाज मुखरित हुई है। फलतः 'मैं', "आत्मा" और "मीरा" तीनों मिलकर स्वकीया प्रेमपरक आध्यात्मिक मीरां भाव बना है, जिसकी प्रेरणा से नाथ सम्प्रदाय, निर्गुण-सम्प्रदाय, शाक्त सम्प्रदाय और रामोपासक भक्तों ने मीरां के नाम पर अनेक पद रचे हैं और आज भी पूना में श्रीमती इन्दिरा देवी मीरा के नाम पर गान लिखे जा रहे हैं। मीरां पदावली का यह 'मीरां भाव' अपने-आप में एक ऐतिहासिक गरिमा लिए हुए है।

---

(१) नारद भक्ति सूत्र, सूत्र क्रमांक ५५।

५ दासी मीरां लाल गिरधर—पद क्रमांक १४, २६, ६७ (ख), ६६
६ मीरां रे हरि—पद क्रमांक १८
७ मीरां दासी—पद क्रमांक २४, २५, ३३, ७३, ८०, ८२, ६०
८. मीरां रे शुखसागर स्वामी—पद क्रमांक ४४,
६. मीरां रे शुख सागरां—पद क्रमांक ७६

१० छाप हीन पद—पाडुलिपियों मे पद क्रमाक ६७ क और पद क्रमाक ७१ अधूरे उपलब्ध हुये हैं, उनकी अतिम पक्ति न मिलने के कारण उनमें मीरा की जो छाप रही होगी, उसका पता नही है।

मीरा की इन्हा 'छापो' को उलट-फेर के साथ गेय परम्परा मे प्रयुक्त किया गया है, और सत भक्तो ने मीरा की भाव धारा के अनुरूप नये पदो की सृष्टि कर उन्हे भी मीरा के नाम से चला दिया है।

(२७) मीरा-भाव

भावना की दृष्टि से मीरा की सम्पूर्ण पदावली प्रेममूला भक्ति भाव पर आधारित है। प्रेममूला भक्ति निर्गुणियो सन्तो और सगुणोपासक भक्तो मे समान रूप से पाई जाती हैं। कबीर जैसे निर्गुणियो ने जीव और ब्रह्म पर पत्नि पति भाव आरोपित कर "राम मोर पिउ, मैं राम की बहुरिया" कहा है। तत्वत, यह एक आध्यात्मिक रूपक है जो प्रतीक के रूप मे अभिव्यक्त हुआ है और जिससे कबीर ने नारीत्व अपने ऊपर आरोपित कर लिया है। प्रेममार्गी सूफियों मे भी प्रेममूला भक्ति पाई जाती है जहां जीव (रूह) और ब्रह्म (खुदा) के आध्यात्मिक रूपक क्रमश प्रिय प्रेयसि के रूप म पाये जाते हैं, जो भारतीय धर्म-दर्शन की मान्यता के सर्वथा प्रतिकूल हैं। सूफी सन्तो मे यह भाव वैयक्तिक न होकर तटस्थ रूप से व्यक्त हुआ है। अर्थात् ज्ञानमार्गियो ने उसे अपने ऊपर आरोपित किया है तो प्रेममार्गी सूफियो ने अपने कथानको म पात्रो के माध्यम से जीव ब्रह्म सबध या रूह खुदा के इश्क का विवेचन *किया है। सूफी तटस्थ कथाकार थे, उन्होंने आत्म कथा न कहकर अन्य पात्रों की* प्रतीकात्मक कथायें कही हैं अतः वे जीव ब्रह्म सम्बन्ध के प्रतीकात्मक, प्रेमाख्यानक गायक थे।

इसके दूसरी ओर सगुणोपासक भक्तो की परम्परा है, जो रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा के रूप में विकसित हुई है। राम चराचर के स्वामी, शील, शक्ति, सौन्दर्य सम्पन्न सच्चिदानद सन्दोह विष्णु के अवतार थे। उनके प्रभुत्व के आगे उनके सेवक और दास ही ठहर सके है। महर्षि बाल्मीकि ने राम को धीरोदात्त आदर्श *नृपति मान* उनकी यशगाथा गाई है और कवि श्रेष्ठ तुलसी ने दास्य भाव से प्रेरित हो भगवान राम को अपना स्वामी माना है। आगे चलकर कृष्ण काव्य की रसिक वृत्ति के सस्कारो की छाया रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय के रूप में प्रकट हुई। गीता और श्रीमद्भागवत पुराण मे कृष्ण का ब्रह्म रूप प्रतिष्ठित है, अत गोपियो पर

आत्म भाव-जीव भाव-आरोपित हुआ है। इसलिए भक्ति-दर्शन मे कृष्ण ब्रह्म और गोपियां जीवात्माओं के रूप मे निरूपित हैं।

गोपी भाव का विकास चतुर्विध है। ब्रज की गोपियां सर्वसामान्य जीवात्माएं हैं। राधा कृष्ण की विशेष अनुकम्पा प्राप्त आह्लादिनी शक्ति है। राधा का धार्मिक अस्तित्व सर्वमान्य किन्तु ऐतिहासिक अस्तित्व विवाद्य है। मीरा राधा का अवतार थी, स्वय प्रमाण थीं। राधा में परकीया भाव भी प्रतिष्ठित है, किन्तु मीरा पूर्णतः स्वकीया थी। राधा-कृष्ण के वियोग में ब्रज में रोती रही, कुढती रही, सिसकती रही, धधकती रही, किन्तु मीरा ने ब्रज तथा द्वारका तक जाकर अपने प्रिय को खोजा। राधा में भावुकता अधिक थी, तो मीरा मे कर्मनिष्ठा और प्रयत्न की पराकाष्ठा दिखाई देती है। राधा मे मान आदि के भाव हैं, तो मीरा में समर्पण का प्राधान्य है। यहां इस तथ्य का निर्देश कर देना आवश्यक है कि धर्म-दर्शन और आध्यात्मिकता के धरातल पर राधा और मीरा की तुलना करना समीचीन नहीं है। राधा परम ब्रह्म कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति ही नही, परम प्रिया थी। तत्सुख सुखी भाव के कारण वे कृष्णमय हो गईं थी। राधा कृष्ण के बीच द्वैत में अद्वैत और अद्वैत मे द्वैत का रहस्य है, किन्तु मीरा मे ऐसा कोई रहस्य नही है। स्वय को राधा का अवतार समझने पर भी उन्होने "तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति। तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति"[१] जीवन-यापन किया।

कृष्ण को पति मानकर उपासना करने का एक रूप देवदासियो का भी था। अन्दाल, सखुबाई और कान्होपात्रा आदि देवदासियो का लौकिक विवाह आराध्य की मूर्तियो के साथ हुआ था। ब्रज की गोपियो ने कृष्ण को पति के रूप मे माना था, राधा कही स्वकीया, कही परकीया मानी गई है, देवदासियों का प्रभु-प्रतिमाओ से विवाह हुआ था, परन्तु इस परंपरा में मीरा का व्यक्तित्व किंचित् भिन्न है। मीरा का स्वप्न में ब्रजनाथ से परिणय हुआ था। उनका यह भाव सम्बन्ध आन्तरिक एवं आध्यात्मिक था, जो कभी भी स्थूल जगत मे मूर्त नहीं हुआ। भक्तिकाल के अनेक कृष्णोपासक सम्प्रदायों मे राधा-भाव, गोपी भाव की उपासना हुई है, किन्तु उनमें पुरुष भक्तों ने स्वयं पर 'नारीत्व' आरोपित कर भावाभिव्यक्ति के प्रयास किये हैं। मीरा के स्वतः सिद्ध नारीत्व के कारण उनके पदो मे नैसर्गिक अनुभूतियो का एक निराला ही आकर्षण है। उसमे प्रथम पुरुष मे आत्मा की प्रत्यक्ष आवाज मुखरित हुई है। फलतः "मैं", "आत्मा" और "मीरा" तीनो मिलकर स्वकीया प्रेमपरक आध्यात्मिक मीरां भाव बना है, जिसकी प्रेरणा स नाथ-सम्प्रदाय, निर्गुण-सम्प्रदाय, शाक्त-सम्प्रदाय और रामोपासक भक्तो ने मीरा के नाम पर सैकड़ो पद रचे हैं और आज भी पूना मे श्रीमती इन्दिरा देवी मीरा के नाम पर गीत लिखे जा रहें हैं। मीरा-पदावली का यह 'मीरा भाव' अपने-आप मे एक ऐतिहासिक गरिमा लिए हुए है।

---

(१) नारद भक्ति सूत्र, सूत्र क्रमांक ५५।

मीरां की भक्ति और उसका स्वरूप

प्रेम श्रद्धा का और श्रद्धा भक्ति का आधार है। भक्ति, भक्त और भगवान के भाव-सम्बन्ध की अभिव्यक्ति है, जो मनुष्य की ब्रह्म जिज्ञासा तथा आत्मा परमात्मा के पारस्परिक सम्बन्धो की चिन्तना और कल्पना पर आधारित है। वह भक्त के मन मे भगवान के प्रति पूज्य बुद्धि प्रेरित ऐसे भावों को जन्म देती है, जिनमे आत्मीय सम्बन्ध और आत्मोद्धार की कामना एक साथ काम करती है। भक्ति का यह स्वरूप मनुष्य जितना पुराना है।

भक्ति का विकास

भारतीय साहित्य में वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत, गीता, श्रीमद्भागवत व विविध स्तोत्र-ग्रन्थो मे भक्ति की चर्चा की गई है, किन्तु नारद भक्ति सूत्र, शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, रूप गोस्वामी कृत उज्ज्वल नीलमणि, भक्तिरसामृत सिन्धु तथा मधुसूदन सरस्वतीकृत भक्तिरसायन आदि ग्रन्थों में भक्ति के तात्विक सैद्धान्तिक पक्ष का सुन्दर विवेचन हुआ है।

"महाभारत के शांति पर्व के ३४८ वें अध्याय में सात्वत धर्म (पाञ्चरात्र मत) को निष्काम भक्ति का मार्ग बताया गया है। पाचरात्र मत मे चतुर्व्यूह कल्पना और एकांतिक भक्ति मार्ग का प्राधान्य है।" शंकराचार्य ने (ब्रह्म सूत्र २।२।४२) वासुदेव के चतुर्व्यूह की उपासना की पाच विधियाँ बताई हैं—(१) अभिगमन अर्थात् मन, वचन और कर्म से अवधान पूर्वक देव मंदिर में गमन, (२) उपादान अर्थात् पूजा द्रव्यो का अर्जन, (३) इज्या अर्थात् पूजा, (४) स्वाध्याय अर्थात् अष्टाक्षर आदि मंत्रो का जप और (५) योग अर्थात् ध्यान। इन्हीं का परिवर्धित रूप नवधा भक्ति है। पाँच से नव के विकास की एक सीढी का पता मिला है—ज्ञानामृतसार में, जो समवत शंकर के बाद की और भागवतपुराण के पूर्व की रचना है। इसमें छ प्रकार की भक्ति बताई गई है–स्मरण, कीर्तन, पादसेवन, अर्चन और आत्म निवेदन।

भागवत (७।५।२३।२४) मे भक्ति के तीन रूप और बढे श्रवण, दास्य और सख्य।"[1] उधर देवर्षि नारदजी ने भक्ति की व्याख्या करते हुए कहा कि—

"सात्वस्मिन परम प्रेम रूपा। अमृत स्वरूपा च। यत्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति॥ यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति, न शोचति न द्वेष्टि, न रमते

---

(१) मध्यकालीन धर्म-साधना—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ १२४ १२५.

नोत्साही भवति ॥ यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति ॥ सा न कामयमाना निरोध रूपत्वात् ॥ निरोधस्तु लोकवेदव्यापारन्यास ॥ तस्मिन्ननन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च ॥ अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता ॥"[1]

अर्थात् भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा, और अमृत स्वरूपा है। उसे पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है, तृप्त हो जाता है। परम प्रेमरूपा भक्ति को पाकर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है, न द्वेष करता है, न किसी वस्तु में आसक्त होता है और न उसे विषय भोगो की प्राप्ति म उत्साह ही होता है। उसे पाकर और जानकर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध (शान्त) हो जाता है और आत्माराम बन जाता है। यह प्रेमाभक्ति कामनायुक्त नहीं है, क्योंकि वह निरोध स्वरूपा है। लौकिक और वैदिक समस्त कर्मों के त्याग को निरोध कहते हैं। अपने परम प्रियतम भगवान मे अनन्यता और उसके प्रतियोग विषय मे उदासीनता भी निरोध है। अपने प्रियतम भगवान को छोडकर दूसरे आश्रयो के त्याग का नाम अनन्यता है।

मीरां की भक्ति का स्वरूप—मीरा की भक्ति का स्वरूप परम प्रेमरूपा है। उनके ही शब्दो में —

"म्हारा री गिरधर गोपाळ दूसरा णा कूया।
दूसरा णा कोया साधा सकळ लोक जूया।"[2]

बन्धु, बान्धव, सगे सम्बन्धी और सारे ससार को त्याग मीरा ने अनन्य भाव से कृष्ण की भक्ति की। उनकी भक्ति परम प्रेमरूपा थी। उन्होंने अपने अश्रु जल से सीच सीचकर प्रेम-वेलि बोई थी। दही मथन कर घृत काढ लिया था और छाछ छोड दिया था।[3]

महर्षि शाण्डिल्य ने भक्ति को ईश्वर के प्रति परम अनुराग[4] कहा है। मीरा की भक्ति इसी प्रकार की है। उसमें कृष्ण के प्रति मीरा का दिव्य भव्य, उदात्त अनुराग व्यजित हुआ है। मीरा के शब्दों में उनकी 'रसीली भक्ति का स्वरूप इस प्रकार है—

"माई सावरे रग राची।
साज शिंगार बाध पग घू घर, लोक लाज तज णाची।
गया कुमत लया साधा शगत, स्याम प्रीत जग शाची।
गाया गाया हरि गुण निस दिण काळ व्याळ री बाची।
स्याम बिणा जग खारा लागा जग री बाता काची।
मीरा सिरी गिरधर नटनागर, भगत रसीली जाची।"[5]

---

(१) नारद भक्ति सूत्र, सूत्रक्रमांक २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ और १०। (२) डाकोर की प्रति, पद १। (३) वही, पद १। (४) सा परानुरक्तिरीश्वरे।—शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, प्रथम आह्निक, सूत्र २। (५) काशी की प्रति पद ८३।

मीरा की यह रसीली भक्ति प्रेमपथगामिनी थी। यथा—

"प्रेम भगति रो पैंडा म्हारो, और णा जाणा रीत।"[1]

× × ×

"मीरा गिरधर प्रेम बावरो, सावड्या वर पाणा।"[2] से ज्ञात होता है कि मीरा दाम्पत्य भाव से प्रेरित हो कृष्ण प्रेमोन्मत्त की भांति भक्ति करते हुए जीवन यापन करती थी।

प्रेमा भक्ति और आसक्तियाँ

भक्ति को 'परमप्रेमरूपा'[3] घोषित करने के बाद महर्षि नारद ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भावगत आसक्तियों का आधार ले भक्ति को ग्यारह रूपों में वर्गीकृत करते हुए लिखा है कि—

"गुणमाहात्म्यासक्तिपूजासक्तिस्मरणासक्तिदास्यासक्ति सख्यासक्तिकान्तासक्ति वात्सल्यासक्त्यात्मनिवेदनासक्तितन्मयतासक्तिपरमविरहासक्तिरूपाएकधाप्येकादशधा भवति।"

अर्थात् वह प्रेमरूपा भक्ति एक होकर भी (१) गुणमाहात्म्या सक्ति, (२) रूपासक्ति, (३) पूजासक्ति, (४) स्मरणासक्ति, (५) दास्यासक्ति (६) सख्यासक्ति (७) कान्तासक्ति (८) वात्सल्यासक्ति (९) आत्मनिवेदना सक्ति (१०) तन्मयतासक्ति और (११) परमविरहासक्ति नामक एकादश प्रकारों में अभिव्यक्त होती है।

श्रीपरशुरामजी चतुर्वेदी ने नारद-भक्ति-सूत्र की उक्त ग्यारह आसक्तियों और श्रीमद्भागवत की नवधा भक्ति में कोई विशेष अन्तर न मानते हुए लिखा है कि "नारद की 'स्मरणासक्ति', 'दास्यासक्ति' एवं 'सख्यासक्ति' ठीक श्रीमद्भागवत के क्रमश: 'स्मरण', 'दास्य' एवं 'सख्य' का अनुसरण करती जान पड़ती है। इनकी 'पूजासक्ति' के अन्तर्गत उसके 'पाद-सेवन', 'अर्चन' एवं 'वन्दन' का समावेश किया जा सकता है। यदि इनकी 'गुणमाहात्म्यासक्ति' के साथ इनकी 'रूपासक्ति का भी सम्बन्ध जोड़ा जा सके तो इसमें 'श्रवण' एवं कीर्तन दोनों को ही अन्तर्भुक्त कर दिया जा सकता है। इसी प्रकार यदि इसकी 'आत्म निवेदना सक्ति', 'तन्मयतासक्ति', 'कान्ता सक्ति', 'वात्सल्यासक्ति' एवं परम 'विरहासक्ति' को भी एक साथ ले लिया जा सके, तो ये सभी उसके 'आत्म निवेदन के अन्तर्गत समाविष्ट हो जा सकती है और इस प्रकार उपर्युक्त दोनों तालिकाओं वाले नामों के मूल में कोई विशिष्ट अंतर नहीं आ सकता।"[4]

माधुरी भक्ति के कारण मीरा के काव्य में वात्सल्यासक्ति को छोड़कर शेष सभी आसक्तियाँ पाई जाती है —

---

(१) डाकोर की प्रति, पद ६। (२) वही, पद ६१। (३) नारद भक्ति सूत्र-८२। (४) भक्ति साहित्य में मधुरोपासना-आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ३।

(१) गुणमाहात्म्यासक्ति—मीरा के प्रभु गिरिधर नागर बडे कृपानिधान, शरणागतरक्षक, दीनहितकारी, पतितोद्धारक थे।[१] उनके चरण सुभग सीतड कवड कोमड, जगत ज्वाडा हरण' थे, जिनके प्रभाव से प्रह्लाद को इन्द्र पदवी और ध्रुव को अटल पद प्राप्त हुआ था।[२] उनके नाम से पानी पर पत्थर तैर गये थे।[३] उन्होंने कौरवों की सभा में सकटग्रस्त निरीह द्रौपदी की लज्जा रखी थी।[४] वे संतो को सुख देने वाले भक्तवत्सल गोपाल थे।[५] इस तरह से मीरा ने भगवान के गुण और माहात्म्य का अनुगायन किया है।

(२) रूपासक्ति—कृष्ण की सांवली सूरत विश्व विमोहिनी थी। वह मधुर छवि मीरा की आंखो मे बस गई थी[६] और वे सुध बुध खोकर कृष्ण के प्रेम मे तल्लीन हो गई थी अत उन्होंने लोक लाज, कुल मर्यादा का त्याग कर[७] अपनी सखी से कहा कि—

"आडी री म्हारे णेणा बाण पडी।
चित्त चढी म्हारे माधुरी मूरत, हिवडा अणी गडी।
अटक्या प्राण सावरो प्यारो, जीवण मूर जडी।
मीरा गिरधर हाथ बिकाणी, लोग कह्या विगडी।'[८]

इसी तरह डाकोर की प्रति के पदक्रमाक ३, ४, ५ मे मीरा की मोहन, बांके बिहारी जी तथा मदनमोहनजी की प्रतिमाओ के प्रति रूपासक्ति तथा श्रद्धा-भक्ति प्रकट हुई है।

(३) पूजासक्ति—पूजासक्ति मे अर्चन, पादसेवन और वन्दन सम्मिलित हैं। मीरां हरि मदिर मे जाकर दर्शन करती थीं, चरणामृत लेती थी, भजन गाती थी, नृत्य करती थी।[९] वे प्रभु के चरण स्पर्श कर[१०] उन्हे छप्पन भोग, छत्तीसो व्यजन और राजभोग अर्पित करती थी[११] तथा आत्मोद्धार के लिये उनसे निरन्तर प्रार्थना करती थी।[१२]

(४) स्मरणासक्ति—मीरा का यह विश्वास था कि भगवन्नाम स्मरण से सासारिक जीवो के कोटि कोटि पाप नष्ट हो जाते हैं और उनके जन्म-जन्मान्तर के पापों का लेखा मिट जाता है। इसीलिए उनका मन निरतर सांवरे का नाम रटता रहता था।[१३] वे हरि के नाम, रूप, गुण, ऐश्वर्य और प्रभाव का स्मरण कर उन्हें उनके विरद की याद दिलाया करती थीं। अपने मन को प्रबोधते हुए वे प्राय कहा करती

---

(१) डाकोर की प्रति, पद ३१। (२) वही, पद-१४। (३) वही, पद २५। (४) वही, पद ४२। (५) वही, पद-४६। (६) काशी की प्रति, पद ८७ (७) वही, पद ८८। (८) डाकोर की प्रति, पद १५। (९) काशी की प्रति, पद-१०१। (१०) डाकोर की प्रति, पद-१४। (११) काशी की प्रति, पद ८२। (१२) डाकोर की प्रति, पद ३४। (१३) वही, पद-५८।

थी कि हे मन ! अविनाशी प्रभु के चरण कमलों का भजन कर।[१]

(५) दास्यासक्ति—मीरा की दास्यासक्ति तुलसी की तरह सेवक-सेव्य भाव की नहीं पत्नी-पति सम्बन्ध पर आधारित वह कान्तासक्ति है, जिसमें एक आदर्श भारतीय नारी अपने पति की जन्म जन्म की 'दासी' होती है। इसी अर्थ में मीरा ने अपनी दास्यासक्ति प्रकट की है :—

"मीरा दाशी गिरधर नागर, चेरी चरण धरी री।"[२]

× × ×

"मीरा दाशी जणम जणम री·······"[३]

× × ×

"मीरा हरि रे हाथ विकाणी, जणम जणम री दाशी।"[४]

जन्म-जन्म की 'दासी' होने के कारण ही मीरा चाकरी करने के लिए तैयार थी, जिसमें उसे 'वेतन', 'खरचो' और जागीर मिलने की अभिलाषा थी।[५]

(६) सख्यासक्ति—मीरा की सख्यासक्ति सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों की सख्यासक्ति से भिन्न थी। मीरा के हरि अपने भक्तों के मित्र थे।[६] मीरा ने उनका वरण किया था।[७] अतः वे मीरा के जन्म जन्म के साथी थे।[८] अतः मीरा का जीवन-मरण सर्वस्व उन्हीं के हाथों में था।[९]

(७) कान्तासक्ति—कान्तासक्ति मीरा-मीरा की भक्ति और उनके काव्य की आत्मा का मूल भाव है। यह भाव ऋग्वेद के मन्त्रों से जुड़ा है—

"अच्छा म इन्द्र मतय स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उपतीरनूषत।
परिष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये॥"[१०]

अर्थात् सुख का ज्ञान रखने वाली, एक ही मार्ग में बढ़ने वाली, प्रभु-प्राप्ति की कामना से संयुक्त मेरी समस्त बुद्धियाँ आज प्रभु की सेवा में लगी हुई हैं, और जैसे स्त्रियाँ अपने पति का आलिंगन करती हैं, वैसे ही मेरी बुद्धियाँ स्वरक्षा के लिये ऐश्वर्यशाली पवित्र प्रभु का आलिंगन कर रही हैं।

"सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः।
पतिं न पत्नीरुशती रुशन्त स्पृशन्ति त्वा शवसावन्मनीषा॥"[११]

हे दर्शनीय देव ! सनातनत्व की अभिलाषिणी और तुम्हारे अन्दर बस जाने की कामना करने वाली मेरी बुद्धियाँ नवीन स्तोत्रों और नमन के द्वारा तुम्हारी ओर दौड़ रही हैं। हे सर्वशक्ति सम्पन्न प्रभु ! ये बुद्धियां तुम्हारा वैसा ही स्पर्श करना चाहती हैं, जैसे कामनाशील पत्नी कामनायुक्त पति का स्पर्श करती हैं।

---

(१) डाकोर की प्रति पद-२। (२) काशी की प्रति, पद ७३। (३) वही, पद-८०। (४) वही, पद-८६। (५) डाकोर की प्रति, पद ३५। (६) डाकोर की प्रति, पद ६१। (७) काशी की प्रति, पद ८६, डाकोर की प्रति, पद-३६। (८) डाकोर की प्रति पद-४८। (९) काशी की प्रति, पद-८१। (१०) ऋग्वेद १०।४३।१। (११) वही, १।६२।११।

छप्पन करोड़ बरातियों के साथ आकर 'गिरधर' ने मीरा का हाथ पकड़ा था और उन्हें अचल सुहाग प्रदान किया था। पूर्वजन्म के पुण्य और सौभाग्य से मीरा 'अमरवधू' बनी थी।[1] मीरा की कान्तासक्ति में सर्वत्र स्वकीया भाव का पावित्र्य है, 'परकीया' का अपावित्र्य नहीं। इसीलिए मीरा और मीरा की कान्तासक्ति श्रद्धेय हैं, पूज्य हैं। मीरा की विरहव्यथा मे भी उनकी कान्तासक्ति की ही कसक है।[2]

(८) वात्सल्यासक्ति — कान्तासक्ति प्रेरित भक्ति होने के कारण मीरा के काव्य में नन्द-यशोदा आदि की भांति वात्सल्यासक्ति के लिए कोई जगह न थी, इसलिए मीरा के भावजगत मे वात्सल्यासक्ति का अभाव है।

(९) आत्मनिवेदनासक्ति—सांसारिक क्लेश और भवबन्धन से मुक्ति के लिए आत्मनिवेदन, प्रपत्ति या शरणागति आवश्यक है। भक्तिरसज्ञ आचार्यों ने इसे षड्विध कहा है—

"अनुकूलस्या सकल्पः प्रतिकूलस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरण तथा ॥२८॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा, शरणागतिः॥२९॥[3]

अर्थात् अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का त्याग, गोप्तृत्व वरण, रक्षा का विश्वास, आत्मनिक्षेप और कार्पण्य आत्मनिवेदन के छः अंग हैं। मीरा के काव्य में आत्मनिवेदन के ये छहों अंग विद्यमान हैं—

(क) अनुकूल का संकल्प—प्रभु-प्राप्ति मे सहायक साधनों को दृढ़तापूर्वक अपनाने का शुभ संकल्प अनुकूल का सकल्प' है। मीरा ने प्राणों के मोल पर भी 'अनुकूलस्य संकल्प' की रक्षा की।[4]

(ख) प्रतिकूल का त्याग—भगवद्प्राप्ति के बाधक तत्त्वों का परित्याग 'प्रतिकूल का त्याग' है। मीरा ने लोक-लाज, कुल-मर्यादा[5], भाई-बन्धु, सगे-सम्बन्धी[6] 'राणा' और उनकी नगरी[7] इसीलिए छोड़ दी, कि ये सब उनके कृष्ण-प्रेम मे बाधक थे तथा मन, प्राण, जीवन की समप्रवृत्तियों को 'सांवरिया' से जोड़ लेने के कारण वे 'औरां' से पराङ्मुख हो गईं।[8]

(ग) गोप्तृत्ववरण—प्रभु को त्राता मान, रक्षक के रूप मे उनका वरण करना 'गोप्तृत्ववरण' है। मीरां ने सुना था कि उनके हरि अधमोद्धारक, भव-भयतारण हैं। वे भक्तों का कष्टनिवारण करते हैं। उन्होंने गजेन्द्र की रक्षा की, द्रौपदी का चीर बढ़ाकर दुःशासन का गर्व हरा, और प्रह्लाद की रक्षा के लिए नृसिंह रूप ले हिरण्यकश्यप का उदर विदीर्ण किया[9], अतः मीरा ने उन्हें अपना जीवन-सर्वस्वमान अपनी सुधि लेने के लिए प्रार्थना की।[10]

---

(१) डाकोर की प्रति, पद-३६। (२) देखिए डाकोर की प्रति, पद-१७, १९, ३२, ४४ इत्यादि। (३) अहिर्बुध्न्य संहिता ३७।२८।२९। (४) डाकोर प्रति, पद-१०। (५) वही पद २९। (६) वही, पद-१। (७) वही, पद-६१। (८) काशी की प्रति, पद-७१। (९) डाकोर की प्रति, पद-३४। (१०) वही, पद-४२।

(घ) रक्षा का विश्वास— प्रभु की शरण में जाते ही भक्त के मन में 'रक्षा का विश्वास पैदा होता है। इसी विश्वास पर मीरा हँसते-हँसते विष पी गई[1] और उनके लिए काला नाग सालिग्राम बन गया।[2]

(ङ) आत्मनिक्षेप—सर्वात्मना अपने आपको भगवान के हाथो मे सौंपना 'आत्मनिक्षेप' है। "म्हारा री गिरधर गोपाऊ, दूसरा णा कूयां"[3] मे मीरा का आत्म निक्षेप प्रकट है। यही भाव डाकोर की प्रति के ६८वें पद मे भी है।

(च) कार्पण्य—कार्पण्य का अर्थ है, भक्त का दैन्य, जिसके सहारे वह भगवान की करुणा को उद्बुद्ध कर उसकी धारा अपनी ओर मोडने का प्रयास करता है। मीरा की प्रेम पुकार में उनका दैन्य साकार हो गया है।[4]

(१०) तन्मयतासक्ति—तन्मयतासक्ति भक्ति की प्रौढावस्था है, जिसमें भक्त भगवान के रूप, गुण, विभव, औदार्य, लीलादि का ध्यान करते-करते तल्लीन हो जाता है। इस अवस्था मे भक्त को न तो स्वयं का ध्यान रहता है, न लोक-लाज मर्यादा की चिन्ता ही रहती है। यह निजानन्द, आत्मानंद, ब्रह्मानंद को अवस्था है। मीरा इसी अवस्था मे भावविभोर हो भक्ति करती थीं, हरि-मंदिर मे नाचती, गाती-कीर्तन करती थी।[5]

(११) परम विरहासक्ति—विरहासक्ति प्रेम-साधना का शृंगार है। मीरां के पद आंसुओं से भींग कर सांसो पर उतरे थे और सिसकियों में सनश्वर संगीत बद्ध हुए थे, इसलिए मीरा का काव्य-परमविरहासक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। उन्होने अश्रुजल से सींच सींचकर प्रेम बेलि बोई थी।[6] सांवरिया के प्रेमबाण से बिद्ध होने के कारण उनके प्राण अधीर थे।[7] वे प्रेम की नाव मे बैठकर विरह समुद्र मे अकेली तड़प रहीं थी।[8] न उन्हे खाना अच्छा लगता था, न पीना। मन 'उचाट' था।[9] वियोग की रात 'छमासी' हो गई थी, जी चाहता था कि 'कासी' जाकर करवत ले लें।[10] विरह मे रो-रोकर उन्होने अपनी आखें खो दी थी और घुल-घुल कर प्राण गवां दिये थे।[11] उनकी अन्तर्वेदना को कोई नहीं जानता था, पर वे चातक और मछली की तरह प्रिय विरह मे उद्विग्न थी, तड़पती रहती थी।[12] विरह विदग्ध प्राणों की ज्वाला को शांत करने के लिए वे जीवन भर प्रिय को पुकारती रही, खोजती-भटकती रहीं। मीरा के पदो की भावाकुलता, विकलता और हृदय स्पर्शिता के पीछे उनकी परम-विरहाशक्ति का आधार है। उनकी इस विरह-साधना मे जन्म-जन्म से बिछुड़ी हुई आत्मा की आराध्य के प्रति प्रगाढ अनुरक्ति और प्रेम मे हारे, लुटे, टूटे हुए हृदय की

---

(१) डाकोर की प्रति, पद-४७। (२) वही, पद-६१। (३) वही, पद १। (४) देखिए—डाकोर की प्रति, पद १२, २२, ४० आदि। (५) काशी की प्रति, पद-८३ ७७ तथा डाकोर की प्रति, पद-६३। (६) डाकोर की प्रति, पद-१। (७) वही पद ६। (८) वही, पद-११। (९) वही, पद-१६। (१०) वही, पद-२०। (११) वही, पद-२१। (१२) वही, पद-३६।

पुकार अक्षरमूर्त हुई है। इसीलिए मीरा का काव्य शाश्वत साहित्य की अनमोल निधि है। यह आत्मनिष्ठ परमविरहाशक्ति है, जिसमे पार्थिव संवेदनो को खोजना व्यर्थ है।

नवधा भक्ति

मीरा के काव्य में श्रीमद्भागवत के अधोलिखित श्लोक के अनुसार नवधा भक्ति के समस्त उपादान विद्यमान हैं—

श्रवण कीर्तनं विष्णो स्मरण पादसेवनम्।
अर्चन वदनं दास्य सख्यमात्मनिवेदनम्॥—७-५-२३,

(१) श्रवण—मीरा साधु-सन्तो के बीच बैठकर अधमोद्धारक, भव भय भजक भगवान के नाम, गुण, कथा प्रसंगादि का श्रवण करती थी—

"म्हा सुण्या हरि अधम उधारण।
अधम उधारण, भव-भय-तारण।"[१]

भगवन्नाम श्रवण से उनकी श्रद्धा दृढीभूत और भक्तिभाव परिपुष्ट हुआ।

(२) कीर्तन—कीर्तन भक्ति का प्रधान अग है। इससे पूर्वकृत पापो का क्षय और पुण्यफल की वृद्धि होती है। भावविभोर मीरा साधु सन्तो के बीच इकतारा और करताल ले कीर्तन करती थी। उनका विचार था कि भजन के बिना मानवजीवन नीरस है, निस्सार है। यथा—

"मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, भजणबिणा नर फीका।"[२]

मीरा के कीर्तन-सम्बन्धी कुछ और विचार निम्नानुसार हैं—

"माई म्हा गोविन्द गुण गाणा।
राजा रूठ्या णगरी त्यागा हरि रूठया कठ जाणा।[३]
× × ×
"गाया गाया हरि गुण लिस दिण काड ब्याड री बांचो।[४]
× × ×
साधा सगत हरि गुण गाश्या और णा म्हारी लार।"[५]

(३) स्मरण—मीरा के प्रभु की बडी महिमा थी। उनके नामस्मरण से अनेक पापियों का उद्धार हो गया था, जन्म-जन्मान्तर के पापों का लेखा मिट गया था, इसलिए मीरां उनके नाम का नित्य 'उमरण शुमरण' करती थीं। वे प्रिय पर तो आसक्त थीं ही, किन्तु उनके नाम पर भी लुभा गई थी। यथा—

"पिया थारे णाम लुभाणी जी।
णाम लेता तिरता सुण्या जग पाहण पाणी जी।

---

(१) डाकोर की प्रति, पद ३४। (२) डाकोर की प्रति, पद ८। (३) वही, पद-
११। (४) [illegible]

कीरत काई णा किया घणा करम कुमाणो जी।
गणका कीर पढ़ावता वैकुण्ठ बसाणी जी।
अरध णाम कुंजर लया दुख अवध घटाणी जी।
गरुड छाड़ पग धाइया, पसु जूण पटाणी जी।
अजामेड अध ऊधरे जम त्रास णसाणी जी।
पूतणामजश गाइया जग सारा जाणी जी।
सरणागत थे वर दया परतीत पिछाणो जी।
मीरा दासी रावली अपणी कर जाणी जी।[1]

× × ×

"सावरो उमरण सावरो शुमरण, सावरो ध्यान धरा री।"[2]

× × ×

"म्हारो मण सावरो णाम रट्या री।
सावरो णाम जपा जग प्राणी, कोट्या पाप कट्या री।
जणम जणम री खता पुराणी णामा स्याम मट्या री।"[3]

गिरिधर के नामस्मरण के साथ-साथ मीरा दिन-रात उनका ध्यान भी करती थी—

"गिरधर ध्याण धरा निशवासर, मूरत मोहण म्हारे बशी।"[4]

(४) पादसेवन—भवसागर से पार उतरने के लिए मीरा भगवान के सुभग, शीतल, कमलवत् कोमल, जगत ज्वाला-हरण श्री चरणों का स्पर्श करते हुए अपने मन से कहती थी कि—

"मन थे परसि हरि रे चरण।
सुभग सीतड़ कंवड़ कोमड़ जगत ज्वाडा हरण।
× × ×
दासि मीरा लाल गिरधर, अगम तारण तरण॥"[5]
× × ×

उन्हे भगवान के चरणों की कुछ ऐसी लगन लगी थी कि उन्होंने संसार और संसार की माया को स्वप्नवत् समझ भव-भय तथा समस्त जग-कुल बन्धन भगवान के ही चरणों में अर्पित कर दिये—

"म्हा लागा लगण सिरि चरणा रो।
दरस विणा म्हाणे कछु णा भावाँ जगमाया या सुपणारो।

(१) डाकोर की प्रति; पद-२५। (२) वही, पद-५७। (३) वही, पद-५८। (४) काशी की प्रति, पद ७७। (५) डाकोर की प्रति, पद-१४।

भो सागर भय जग कुड बण्घण डार दया हरि चरणा री।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर आस गह्या थे सरणा री।।"[१]

(५) अर्चन—गिरिधर के पूजन-अर्चन के समय मीरा मोतियों का चौक पूरती थीं, उनकी बलिहारी जाती थी—

"मोती चौक पुरावा णेणा तण मण डारा वारी।"[२]

वे उन्हें छप्पन भोग, छत्तीसों व्यंजन और राजभोग अर्पित करती थीं—

"थे जीम्या गिरधर लाड।
मीरा दासी अरज करया छे, म्हारो लाड़ दयाड।
छप्पण भोग छतीशा बिंजण पावा जण प्रतिपाड़।
राजभोग आरोग्यां गिरधर सण्मुख राखा थाड़।
मीरा दासी सरणा ज्याशी, कीज्यां वेग निहाड़।"[३]

(६) वदन—भक्त को अगम, अपार भवसागर से पार करने के लिए भगवान ही एकमात्र साधन हैं। इस कामना से प्रेरित हो मीरा प्रार्थना करती थी कि—

भो समुन्द अपार देखा अगम ओखी धार।
ड़ाड़ गिरधर तरण तारण बेग करश्यो पार।।[४]

द्रौपदी की लज्जा रखनेवाले गोवर्धन गिरिधारी से मीरा ने यह निवेदन किया कि—

"थें बिण म्हारे कोण खबर डे गोबरधण गिरधारी।
मोर मुगट पीतांबर शोभां कुडड री छब ण्यारी।
भरी सभां मा द्रुपद सुतारी राल्या डाज मुरारो।
मीरा रे प्रभु गिरिधर नागर, चरण कवण वडहारी।"[५]

(७) दास्य—कृष्ण मीरां के जन्म-जन्म के साथी थे और "मीरां हरि रे हाथ बिकाणी, जणम जणम री दासी" थी।[६] शाश्वत पतिव्रता की तरह इस जन्म में भी उनकी यही कामना थी कि—

"म्हाणे चाकर राखा जी गिरधारी ड़ाड़ा चाकर राखा जी।
चाकर रह्श्यूं बाग ड़गाश्यूं णित उठ दरशण पाश्यूं।
ब्रिन्दाबणरी कुंज गेड़ मां गोविण्द ड़ीड़ा गाश्यूं।
चाकरी मां दरसण पाश्यूं सुमरण पाश्यूं खरची।
भावभगत जागीरां पाश्यूं जणम जणम री तरशी।"[७]

मीरां का दास्य भाव उनकी माधुरी भक्ति का अंग है।

---

(१) काशी की प्रति, पद-९९ (२) डाकोर की प्रति, पद-३०। (३) काशी की प्रति, पद ८२। (४) डाकोर की प्रति, पद-६७ (क)। (५) डाकोर की प्रति, पद-४२। (६) काशी की प्रति, पद ८६। (७) डाकोर की प्रति पद-३५।

(८) सख्य—मीरां का सख्य भाव 'दोस्ती' नहीं, सहजीवन बिताने वाले पति-पत्नी की साहचर्य-भावना का द्योतक है—

"म्हारो जणम जणम रो साथी, थाणे, ना बिसर्‌या दिण राती।"[१]

(९) आत्मनिवेदन—भगवान कृष्ण मीरा के जीवन, प्राण-आधार थे। उनके लिए कृष्ण के बिना तीनों लोकों मे और कोई सहारा न था।[२] वे कृष्ण-प्रेम में रंग गईं, थीं; और उनकी कृपादृष्टि पाने के लिए प्रार्थना किया करती थी। आत्मोद्धार के लिए, भवसागर से पार उतरने के लिए श्याम से उनका निवेदन था कि—

"स्याम म्हां बाँहड़िया जी गह्यां
भो सागर मझधारा बूड्यां, थारी सरण लह्यां।
म्हारे अवगुण वार अपारां, थे विण कूण सह्यां।
मीरां रे प्रभु हरि अविणासी, ड़ाज बिरद री बह्यां।"[३]

विरहजन्य व्याकुलता और प्रिय-मिलन की उत्कंठाभिव्यक्ति भी मीरा के आत्मनिवेदन का ही एक अंग थी—

"मीरां रे प्रभु कब रे मिलोगां थें विण रह्या णा जाय।"[४]

× × ×

"मीरां सरण गह्यां चरणां री, लाज रखां महाराज।"[५]

मीरां के आत्मनिवेदन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे परलोक में नहीं, इसी जीवन मे, इहलोक मे कृष्ण को आने के लिए और आकर मिलने के लिए आमन्त्रित करती हैं, तथा उनसे बाँह पकड़कर भवसागर से उबारने के लिए प्रार्थना करती हैं।

मधुरा भक्ति

जीव-ब्रह्म-सम्बन्ध के आधार पर मीरा की कान्तासक्ति मधुराभक्ति के रूप मे प्रकट हुई है। मीरा द्वारा कृष्ण के लिए 'भुवनपति', 'स्वामी', 'भो भो रो भरतार', 'जणम जणम री साथी', 'पिय', 'पिया', 'प्रीतम', 'साजण' आदि सम्बोधन इसी दाम्पत्य भाव मूला मधुराभक्ति के प्रतीक हैं। उनका समर्पण, प्रेम, विरह, सेवा भाव और मिलनातुरता सभी मधुराभक्ति से प्रेरित हैं।

इसके अतिरिक्त मीरा के पदों में भगवान कृष्ण की रूपमाधुरी, विग्रह माधुरी, लीलामाधुरी, वेणुमाधुरी, प्रेम-माधुरी, बिरहमाधुरी और ऐश्वर्यमाधुरी का सतरंगी सौन्दर्य भी द्रष्टव्य है।

मीरां की भक्ति-साधना और उसके उपकरण

मीरा की भक्ति साधना मे सासारिक वितृष्णा से परे पारमार्थिक अनुभूति और आत्मोद्धार की विराट चेतना क्रियमाण है। उसमे चिन्तनशील आत्मा की

---

(१) डाकोर की प्रति पद ४३। (२) वही, पद-२२। (३) वही, पद-१०६ (४) वही; पद-२२। (५) वही, पद-११। (६) वही, पद ६८।

विरक्ति, ध्येयनिष्ठ साधक की लगन, भावुक प्रेमिका का एकनिष्ठ प्रेम, तत्वज्ञ चिंतक का सत्यान्वेषण, और कर्मठ दार्शनिक का पुरुषार्थ एक साथ परिलक्षित होता है। परम वैष्णवी कृष्णोपासिका के नाते उनकी भक्ति मे आत्मा के सनातन नारीत्व की परमब्रह्म कृष्ण के प्रति परम प्रगाढ प्रीति प्रकट हुई है। इसीलिए मीरा का काव्य भावप्रचुर व्यक्तिनिष्ठ अनुभूतियो से सराबोर है।

कायिक, वाचिक और मानसी भक्ति

मीरा की कायिक, वाचिक और मानसी भक्ति का स्वरूप निम्नानुसार था,—

तीर्थाटन करना, मन्दिरों में जाना, देव प्रतिमाओं के दर्शन करना, पूजा करना, धूप-दीप जलाना, आरती उतारना, भोग लगाना, चरणामृत लेना, झांझ, मृदग, इकतारे के बीच, करताल, आदि वाद्य बजाना, और नृत्य करना मीरां की भक्ति के कायिक उपकरण हैं।

हरिनामजप, कीर्तन, भजन, भगवद्चर्चा तथा प्रभु के रूप, गुण, सौंदर्य व उनकी वत्सलता, उदारता, कृपालता, आदि गुणो का वर्णन करना, अपने दु ख, दैन्य, पाप, आत्मनिवेदन और प्रभु के प्रति प्रेम, विरह आदि भाव वाणी द्वारा व्यक्त करना मीरा की वाचिक भक्ति के उपकरण हैं।

ईश्वर का निरतर ध्यान, और स्मरण करना, उनकी प्राप्ति के लिए व्याकुल हृदय से उद्विग्न रहना, आत्मोद्धार के लिए आत्मनिवेदन करते समय मन ही मन उनका अनवरत चिन्तन करना मोरा की मानसी भक्ति के उपकरण हैं।

इस तरह से मीरा मनसा, वाचा, कर्मणा सात्विक भक्तात्मा थी, जिनके आचार, विचार व्यवहार और साधना मे सगुणोपासक वैष्णव भक्ति का उदात्त रूप सर्वत्र प्रकट हुआ है।

मीरा का भक्त रूप

मीरा की वाणी में उनका भक्त रूप निम्नानुसार था—

"म्हा गिरधर आगा नाच्यारी।
णाचणाचम्हा रसिक रिझावा प्रीत पुरातन जाच्या री।
स्याम प्रीत रो बाध घूघरया मोहण म्हारो साच्या री।
डोक डाज कुड रा मरज्यादा जग मा णेक णा राख्या री।
प्रीतम पड छण णा बिसरावा मीरा हरि रग राच्या री।"[१]

नाभादासजी के शब्दो मे

सदृस गोपिका प्रेम प्रकट कलिजुगहि दिखायो।
निरअंकुश अति निडर रसिक जस रसना गायो॥
दुष्टन दोप विचार मृत्यु को उद्दिम कीयो।

(१) डाकोर की प्रति, पद ५६।

वार न बाँको भयो गरल अमृत ज्यो पीयो ॥
भक्ति निसान बजाय के काहू ते नाहिन तजी।
लोक-लाज कुल श्रृंखला, तजि मीरा गिरिधर भजी।[२]

परमवैष्णवी मीरां

मीरा ने अपने पदो में राम, कृष्ण, नरसिंह, वामन आदि विष्णु के अवतारो की चर्चा अपने आराध्य के ही सन्दर्भ में की हैं और इन अवतारो मे अद्वैतबुद्धि से अपनी श्रद्धाप्रकट की है। मीरा की प्रामाणिक पदावली मे पद क्रमांक ६, १२, १४, २०, २२, २४, ३४, ३८, ४०, ४१, ४३, ४५, ४७, ४६, ५८, ५६, ६०, ६६, ७५, ८६, ८८, ८६, ६२, ६५, ६६ में मीरां ने कृष्ण के लिए 'हरि' शब्द का प्रयोग किया है, जिससे कृष्ण और विष्णु की एकरूपता समर्थित है। मीरा की यह दृष्टि उन्हें परमवैष्णवी कृष्णोपासिका सिद्ध करती है।

•

(२) श्री नाभादासजीकृत भक्तमाल सटीक-पृष्ठ २४७, छप्पय-११५।

मीरां-पदावली के कलापक्ष का विवेचन

१. भाषा

मीरा पदावली की भाषा का स्वरूप अत्यंत विवादास्पद है। हस्तलिखित मूल प्रतियो के अभाव मे, गेय परम्परा से प्राप्त पदो के भाषा-वैविध्य को देखते हुये मीरा-पदावली के सकलनकर्त्ताओ, सम्पादकों, समीक्षको और शोधकर्त्ताओ ने 'प्रसिद्ध' को ही 'सिद्ध' मानकर मीरा को अनेक भाषाओ की कवयित्री घोषित करने का प्रयास किया है। इस स्वीकारोक्ति के अन्तराल मे एक अनिश्चितता-एक संशयात्मक स्थिति-एक भ्रामक धारणा भी सुगबुगाती रही है। अतः रागकल्पद्रुम से लगाकर संत समाज भजनावली के प्रकाशन तक मीरां-पदावली के सभी सम्पादक मीरा की भाषा के सम्बन्ध में सुनिश्चित निष्कर्षों तक नही पहुँचे। परिणाम यह हुआ कि गत शताब्दियो में मीरा पदावली की भाषा विषयक दुविधात्मक स्थिति यथावत् बनी रही।

मीरां पदावली की भाषा का स्वरूप

आज तक मीरा-पदावलियो के प्रायः सभी पद मौखिक परम्परा और संदिग्ध तथा अशुद्ध हस्तलिखित गुटको से लिये गये हैं, जिसके फलस्वरूप उनमे भाव, भाषा, संगीतात्मकता भक्तिविषयक धारणा और स्वरूपात्मकता के आधार पर अनेक परिवर्तन होते गये हैं। राग कल्पद्रुम[1] के पद मौखिक परम्परा पर आधारित हैं, अतः उनमें व्रज और व्रज मिश्रित राजस्थानी का प्राधान्य है। 'मीराबाई के भजन[2] भी इसी प्रकार प्रकाशित हुये हैं। मीराबाई की शब्दावली[3] भी संकलन ग्रन्थ है, जिसमे संत मत प्रभावान्वित पदो की भरमार है। उसमे खडी बोली के पद भी मीरा की ही रचना मान लिये गये हैं। सम्पादक जी ने व्रज भाषा और पूर्वी बोली के शब्दो से संयुक्त पदो को भी मीरा की ही रचना मानने का आग्रह करते हुए लिखा है कि "हम पूरे विश्वास से नहीं कह सकते कि जो कुछ हम चुन कर छाप रहे हैं, वह स्वच्छवानी मीराबाई की है।············मीराबाई सस्कृत भी जानती थी और देश-देशान्तर के साधुओ के समागम से व्रजभाषा और पूरबी बोली भी अच्छी तरह समझती और लिख पढ सकती थी, इसलिये उनके कोई-कोई 'शब्द', जो उन बोलियो मे हैं, उन्हे केवल इसी कारण से क्षेपक न मान लेना चाहिये।"[4]

---

(१) रागकल्पद्रुम, भाग १ से ४ तक—कृष्णानन्द व्यास 'रससागर'। (२) मीराबाई के भजन—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, कलकत्ता। (३) मीरांबाई की शब्दावली—बेलवेडियर, प्रेस, प्रयाग, पृष्ठ ३५, पद ११। (४) वही, वही, मीराबाई का जीवन चरित्र, पृष्ठ ७।

यहाँ 'शब्द' शब्द विचारणीय है। मीराबाई की शब्दावली सत बानी पुस्तक माला का प्रकाशन है, जिसमें 'सन्तो' की बानो का प्रकाशन होना था। कबीर आदि निर्गुण परम्परावादी-सन्तो के भजनो की ही भाँति इस ग्रन्थ के सम्पादक ने मीरा के पदो को 'शब्द' कहा है और उनका वर्गीकरण 'उपदेश का अंग', 'बिरह का अंग' आदि 'अंगो' मे किया है, पर इस 'शब्दावली' के पदो की भाषा मीरा की भाषा नही है वह सन्तो मे प्रचलित प्रक्षिप्त मीरा-पदावलो के विभिन्न गेय पद रूपो की भाषा है।

श्री नरोत्तमदास जी स्वामी ने मीराबाई की कविता की भाषा राजस्थानी मानी है। उनका मत है कि "मीराबाई की कविता की भाषा राजस्थानी है, जो पश्चिमी हिन्दी का एक प्रधान विभाग है। राजस्थानी की उत्पत्ति अपभ्रंश से हुई है और वह अपभ्रंश की सबसे जेठी बेटी है। राजस्थानी, ब्रज और गुजराती का उद्गम स्थान एक ही है और तीनो में बहुत समानता पाई जाती है। प्राकृत और अपभ्रंश की अनेक विशेषतायें इसमे सरक्षित है। ब्रजभाषा और गुजराती का पृथक् विकास विक्रम की चौदहवी और पन्द्रहवी शताब्दियो मे हुआ। कालान्तर मे राजस्थानी के दो रूप हो गये। एक मे अपभ्रंश बहुत कुछ मिली रही। इसको चारण भाटो ने अपनाया और आगे चलकर यह रूप डिंगल कहलाने लगा। राजस्थानी का यह साहित्यिक रूप कुछ दिनो में स्थिर stereotyped हो गया और मृत भाषा बन गया। चारण-भाट अभी तक इस रूप मे कविता किया करते हैं। पृथ्वीराज रासो डिंगल का एक प्रसिद्ध उदाहरण है। राजस्थानी का दूसरा रूप जन-साधारण की प्रचलित बोली थी। उसमे भी साहित्य का अभाव नही था। बाद मे मीरा आदि भक्त कवियो ने इस रूप को अपनाया और इसी मे कविता की। जन-साधारण के बोधगम्य होने के कारण इसमे लिखी हुई रचनाओ का खूब प्रचार हुआ।

मीराबाई की भाषा मे मिश्रण बहुत है। गुजराती की विशेषतायें भी अनेक स्थानो पर पाई जाती हैं। पजाबी, खडी बोली, पूरबी आदि का आभास भी कई स्थानो पर मिलता है। उनके अनेक पद शुद्ध गुजराती मे भी पाये जाते हैं, पर इसमे सन्देह है, कि वे उनके ही बनाये हुये हैं।[१]

मीराबाई के पद जिस रूप मे पाये जाते है, ठीक उसी रूप मे वे लिखे गये थे, यह कहना कठिन है।......इस सग्रह मे मीरा के पद एक हस्तलिखित प्रति से लिये गये है, जिसका पाठ हमें अधिक शुद्ध और प्राचीन मालूम हुआ है।[२]

मीरा-मन्दाकिनी मे नरोत्तमदास जी ने जिस 'हस्तलिखित प्रति' से पदो का संकलन किया है, उसका स्रोत, स्वरूप और इतिहास आदि का कहीं उल्लेख नही

---

(१) देखिये-बृहत् काव्य दोहन-ग्रंथ ७ मा पृष्ठ ७०१ टिप्पणी। (२) मीरां-मन्दाकिनी-नरोत्तमदास स्वामी, मीरांबाई की कविता की भाषा, प्रस्तावना, पृष्ठ १५-१७।

किया। मीरा मंदाकिनी के सभी पद गेय परम्परा पर आश्रित हैं और उनकी भाषा, वह राजस्थानी भाषा नहीं है, जिसमे मीरा ने मूल पदो को वाणी दी थी।

श्री महावीर सिंह जी गहलोत का कथन है कि "मीरा के पदों के रचना काल भी भिन्न-भिन्न हैं और देश भी। देश परिवर्तन के साथ साथ भाषा भी रूप बदलती रहती है। यह सिद्धान्त परिवर्तनशील भी है। जैसे किसी कारण आवेश आ जाय तो कवि अपनी भाषा में ही रचना करेगा। भाषा फेर के अन्य कारणों मे से लिपि और बहिया भी हैं। अन्य लिपियो मे जाकर शब्द कुछ रग बदल देते हैं तो कुछ शब्द बहिया (लेखक या प्रतिलिपिकार) की कृपा से अपना रूप ही बदल लेते हैं। गेय पदो (मुक्तक छन्दो) की भाषा पर कुठाराघात संगीत के खिलाडी भर कर देते हैं। मूल पद किस राग मे था, इसका पता न होने पर जब पद को भिन्न राग मे गाने की चेष्टा की जाती है, तब ताल के अनुसार मात्राओं को बिठाने मे शब्दों को तोडा-मरोडा जाता है और इस प्रकार पद की भाषा बदल जाती है। अंतिम प्रहार कभी-कभी पद के सम्पादकों द्वारा भी हो जाता है। संपादकों ने ऐसा भी किया है।...... मीरा के व्रज मे रचे पद जब व्रज लीला को अपना विषय बनाते हैं, तब शुद्ध व्रज भाषा के होते हैं।...हम मीरा की भाषा पर केवल इतना ही लिखना चाहेंगे कि वह 'पिंगल' है। पिंगल से हमारा तात्पर्य व्रज भाषा के उस रूप से है, जो मध्यकाल मे राजस्थान की काव्य भाषा (विशेषकर भक्ति सम्बन्धी पदो) का रहा है।"[1]

गहलोत जी की मान्यता के अनुसार मीरा के पदो का रचनाकाल भी भिन्न-भिन्न है और देश भी। इसमे कोई सन्देह नहीं है कि मीरा ने मेडता, मेवाड, वृन्दावन और द्वारका मे विविध अवसरो पर पद-रचना की थी, किन्तु मीरा ने देश परिवर्तन के साथ साथ अपनी भाषा भी बदली थी। यह धारणा गलत है। मीरा द्वारा व्रजभूमि में व्रज भाषा में पद नहीं रचे गये और द्वारका जाने पर मीरा ने गुजराती मे पद रचना नहीं की। डाकोर की प्रति के पद क्रमांक ३, ४, ५, ७, ८ आदि मे वृन्दावन और उससे सम्बन्धित नैसर्गिक सौन्दर्य और कृष्ण की विविध प्रतिमाओं के वर्णन हैं, किन्तु मूल रूप मे इन पदो की भाषा व्रजभाषा नहीं है। इसी प्रकार डाकोर की प्रति के पद क्रमांक ६५ मे रणछोड जी का जो वर्णन है, वह मूल पद भी गुजराती भाषा मे नहीं है। वृन्दावन सम्बन्धी पदों का व्रज भाषान्तरण और रणछोड सम्बन्धी पद का गुजरातीकरण बाद की रचनायें हैं, अत गहलोत जी की यह मान्यता कि स्थान भेद के अनुसार मीरा ने अपनी भाषा बदली होगी निराधार और भ्रांत है।

गहलोत जी की यह धारणा भी कि "किसी कारण आवेश आ जाय, तो कवि अपनी भाषा में ही रचना करेगा" विचारणीय है। मीरा का सम्पूर्ण काव्य भक्ति भावावेश की सहज अभिव्यक्ति है, अतः उसका "मीरा की अपनी भाषा" मे ही रचा

---

(१) मीरां-जीवनी और काव्य—महावीर सिंह गहलोत पृष्ठ ५५-५६।

जाना स्वाभाविक है, किन्तु मीरा की अपनी भाषा प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी थी, उसे ब्रजभाषा का राजस्थानी रूप नहीं कहा जा सकता। डाकोर और काशी की प्रतियों के पदों में 'मीरा' की अपनी भाषा' ही विद्यमान है, क्योंकि मीरा का देश मारवाड था और प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी मीरा की भाषा थी। ब्रजभाषा समन्वित पिंगल न तो मेडता के राजकुलों की भाषा थी, न मेवाड की, अतः प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी को ही मीरा की भाषा मानना चाहिये।

भाषा-परिवर्तन और उसके कारण

मीरा की भाषा मे जो परिवर्तन हुये हैं, उनके प्रमुख कारण इस प्रकार हैं—

लिपि भेद से भाषा भेद

लिपि परिवर्तन से भाषा मे पर्याप्त परिवर्तन हो जाता है। साथ ही शब्द, ध्वनि, अर्थ और प्रयोजन मे भी परिवर्तन हो जाते हैं।

मीरां का मूल पद

जाणा रे मोहणा जाणा थारी प्रीत।
प्रेम भगति रो पैंडोम्हारो, और णा जाणा रीत।
इमरित पाइ विषा क्यूं दीज्या कूण गाव री रीत॥
मीरा रे प्रभु हरि अबिणासी, अपणो जण रो मीत।[१]

राजस्थानी मे लिपि भेद

जावो नरमोहीयाजी, झीणो तेरी प्रीतडी॥टेक॥
लगन लगी जब और प्रीति छी, अब कछु अवली रीतड़ी॥१॥
ईम्रत पाइ विषे क्यूं पोजिये, कौण गाव की रीतड़ी॥२॥
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, जौ गायो किसकी मीतडी॥३॥[२]

राजस्थानी की ही तरह गुजराती में भी लिपि भेद के अनुसार मीरा-पदावली में भाषा भेद पाया जाता है।

मूल पद

थारो रूप देख्या अटकी।
कुड कुटम्ब सजण सकड़, बार बार हटकी।
बिशर्‌या णा डगण ड्गा, मोर मुगट णटकी।
म्हारो मण मगण स्याम डोक कह्या भटकी।
मीरा प्रभु सरण गह्या जाण्या घट घटकी॥[३]

---

(१) डाकोर की प्रति-पद क्रमांक ६। (२) राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (भाग ३) उदयसिंह भटनागर, पृष्ठ २२० पद ३। (३) डाकोर की प्रति, पद क्रमांक ६३।

लिप्यान्तरित गुजराती रूप

तेरो रूप देखी लटकी।
देहथि विदेहभई, गिरी परी शिरे मटकी ॥१॥
तात मात सजन बन्धु, जननी मिलि हटकी।
सदि थिमाहो टरत (न) नाही छबी (वि) नागर नटकी।
अब तो मन वासु मान्यो, लोक कहत भटकी।
मीरा प्रभु गिरीधर विना को जाणे आ घटकी ॥२॥[१]

लहिया और भाषा भेद—डाकोर की मूल प्रति के उक्त दोनो राजस्थानी और गुजराती रूप दो अलग अलग भाषाओ के लिपिका की कृपा के फल है। उक्त दो पदों में ही यह स्थिति हुई है, सो बात नही है। राजस्थानी और गुजराती के सम्पूर्ण पद इसी प्रकार भाषान्तरित, भाव परिष्कृत परवर्ती और प्रक्षिप्त गेय पद हैं।

सगीतकारो द्वारा गेय पदो मे भाषा परिवर्तन

मूल पद

प्रभूजी थें कठया गया नेहडा लगाय।
छोडया म्हा बिसवास सगाती, प्रीत री बाती जडाय।
विरह समदमा छोड गया छो, नेहरी नाव चडाय।
मीरा रे प्रभु कबरे मिलोगा, थें बिण रहया णा जाय।[२]

मूल पद राग दरबारी मे गाया जाता था, किन्तु जब उसे राग सोरठ मे गाया गया, तो पूरे पद की भाषा टेक तथा अन्तरा के शब्द विन्यास मे, ताल लय और गति के अनुसार परिवर्तन हो गया। मूल पद को राग सोरठ मे गाने पर उसका रूप इस प्रकार बना—

हो जी हरि कित गये नेह लगाय।
नेह लगाय मेरो मन हर लीयो, रस भरी टेर सुनाय।
मेर मन म ऐसी आवे, मरू जहर विष खाय।
छाडि गयो बिसवास घात करि, नेह केरी नाव चढाय।
मीरां के प्रभु कबरे मिलोगे, रहे मधुपुरी छाय।"[३]

सम्पादकीय 'कृपा' से भाषा परिवर्तन

प्राचीन कवियो का रचनाओ को सम्पादित करते समय सम्पादकीय प्रतिभा भी बडे महत्वपूर्ण परिवर्तन करती है। सम्पादकगण किस प्रकार कवि की मूल भाषा को

---

(१) गुजरात हाथ प्रतोनी सकलित यादी, गु० व० सो० अहमदाबाद पृष्ठ ६। हस्तप्रति म० द ४७७ क। (२) डाकोर की प्रति, पद क्रमाक ११। (३) मीराबाई की पदावली, परशराम चतुर्वेदी पृष्ठ १५५ पद १५०।

लोक भाषानुरूप परिवर्तित करते हैं, इसके मीरा-पदावली में अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। यहाँ केवल दो उदाहरण पर्याप्त होंगे।

मूल पद

मुरिडया बाजा जमणा तीर।
मुरडी म्हारो मण हर ड़ीन्हो, चित्त घरा णा धीर।
श्याम कन्हैया, स्याम कमरया, स्याम जमणरा नीर।
घुण मुरड़ी शुण शुध बुध बिशरा, जरजर म्हारो शरीर।
मीरा रे प्रभु गिरधरनागर, वेग हर्‌या म्हा पीर।[1]

मीरां वृहद पद संग्रह में मूल पद का गेय रूप

मुरलिया बाजे जमुना तीर।
मुरलि सुनत मेरो मन हरि लीन्हो, चीत धरत नहिं धीर।
कारो कन्हैया, कारी कमरिया, कारो जमुना को नीर।
मीरां के प्रभु गिरिधरनागर, चरण कमल पै सीर।[2]

मीरां माधुरी में उक्त पद का सम्पादित रूप

मुरलिया बाजै जमुना-तीर।
मुरली म्हारो मन हर लीन्हो, चीत धरत नहि धीर॥
कारौ कन्हैया, कारी कमरिया, कारौ[1] जमुन कौ नीर।
धुन मुरली सुनि सुध बुध बिसरी, जर जर म्हारो सरीर।[2]
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, चरन कँवल पै सीर[3]॥

मीरा-माधुरी में दिये गये पद में तीसरी पंक्ति के पाँचवे शब्द "कारौ" पर (१) चौथी पंक्ति के अंत में (२) और पाँचवीं पंक्ति के उत्तरार्ध पर (३) पाठान्तर सूचक अंक दिये गये हैं, और सम्पादक श्री ब्रजरत्नदास जी ने पाठान्तर में लिखा है कि "(१) काशी की प्रति में 'कारो', कारी के स्थान पर 'स्याम' है। (२) यह पंक्ति काशी की प्रति से ली गई है। (३) पाठा० वेग हर्‌या मा पीर।"[4] स्पष्ट है कि ये पाठान्तर मूल प्रति के हैं, किन्तु सम्पादक जी ने गेय परम्परा से प्राप्त पद को जब सम्पादित किया तो गेय पद में मूल प्रति की अप्राप्य पंक्ति को स्वयं अनुवादित कर गेय पद रूप को मूल पद के भावानुरूप, प्रचलित भाषा में पूरा कर दिया और भाषान्तरित एक पंक्ति अपनी ओर से जोड़ दी।

श्री ब्रजरत्नदास जी ने स्वसंपादित 'मीरा-माधुरी' के द्वितीय संस्करण की भूमिका में लिखा है कि, 'मीरा-माधुरी' के प्रथम संस्करण में चार सौ उनहत्तर पद

---

(१) काशी की प्रति, पद क्रमांक ६४। (२) मीरा वृहद पद संग्रह—पद्मावती शबनम पृष्ठ २८६, पद ७। (३) मीरा माधुरी—ब्रजरत्नदास, पृष्ठ १२, पद-३३। (४) वही, पृष्ठ १२ फुटनोट।

सग्रहीत हुये थे, इस द्वितीय सस्करण मे सैंतीस पद नये बढ़ाये गये हैं। दस पद डाकोर की तथा चौदह पद काशी की उन हस्तलिखित प्रतियो के हैं, जो मीरा स्मृति ग्र थ मे प्रकाशित पदावली में दिये हैं और चार उसी ग्र थ के पृष्ठ १४१-५२ पर श्री जगदीश प्रसाद गुप्त द्वारा सवत् १६६५ को हस्तलिखित प्रति से उद्धृत हैं। इसके सिवा नौ पद राजस्थान मे श्री रत्न शर्मा द्वारा उद्धृत किये हैं।"[1]

ब्रजरत्नदास जी ने डाकोर और काशी को प्रतियो के पदो को सम्पादित करते समय मूल पदो को यथा रूप न लेकर उनका ब्रजभाषा मे रूपान्तर कर दिया है। प्राचीन काव्य का जो रूप सौष्ठव और भाव वैभव है, वह उनकी प्राचीनता के संरक्षण मे है। सम्पादको को प्राचीन कवियो के पद, यदि हस्तलिखित प्रति में मिलें तो उन्हे यथावत सम्पादित करना चाहिये। सम्पादक का सस्कारक बनकर मूल पदो की भाषा मे हेर फेर करना समीचीन नहीं है।

साधु-सन्तो द्वारा भाषा-परिवर्तन

भ्रमणार्थी साधु सन्तो द्वारा भी मीरां पदावली की भाषा मे बड़े विशद परिवर्तन किये गये हैं तथा राजस्थानी, ब्रज, गुजराती, पजाबी, बिहारी, खड़ी बोली के साधु संतो ने अनेक मिश्रित भाषाओ के पद मीरा के नाम पर रचकर उन्हे जन-समाज मे प्रसारित कर दिया है। इस तरह से हस्तलिखित प्रति के अभाव म गेय परम्परा मे विविध भाषाओ के पद मीरां के नाम पर निरन्तर बनते रहे, जुड़ते रहे और चलते रहे हैं।

श्रीमती विष्णु कुमारी मजु ने लिखा है कि "यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो मीरा के पदो मे कई प्रकार की भाषाओ के शब्द मिलेंगे। इसका मुख्य कारण है उनका तीर्थाटन और साधु-सत्सग। भगवत्प्रेमी सन्त समुदाय मीरा के दर्शनार्थ आया करता था, जिससे उनके शब्द मीरा के पदा मे आ गये। इसके अतिरिक्त मीरा का सम्बन्ध चार विभिन्न प्रदेशो से रहा है, मारवाड, मेवाड, गुजरात और ब्रज। यद्यपि इनकी भाषा राजस्थानी है, तथापि उसमे ब्रज भाषा के शब्द अधिक प्रयुक्त हुय हैं। गुजराती, पजाबी, फारसी, आदि के शब्द भी कहीं कहीं प्रयुक्त हुय हैं। पूर्वी (बिहार आदि की) भाषा का भी कहा कहीं रूप मिलता है। फिर भी यह कहना पड़ेगा कि मीरा की कविता मे बहुत सी भाषाओं का सम्मिश्रण पाये जाने पर भी उनकी कविता की भाषा, राजस्थानी है, जो पश्चिमी हिन्दी की एक प्रधान शाखा है।"[2]

मीरा पदावली की इस दुविधात्मक स्थिति को सभी विद्वानो ने प्रत्यक्ष अथवा

---

(१) मीरां माधुरी—ब्रजरत्नदास द्वितीय आवृत्ति पर दो शब्द, पृष्ठ ७। (२) मीरां-पदावली—विष्णु कुमारी मजु, पृष्ठ ण-त।

परोक्ष रूप से स्वीकारा है।[1] अत अद्यतन प्रकाशित सभी पद-संग्रहों में विविध भाषाओं में रचित मीरा नामधारी पद पाये जाते हैं, किन्तु वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। मीरा की प्रामाणिक पदावली शुद्ध पश्चिमी राजस्थानी मे ही है।

गुजराती समीक्षकों की मान्यतायें

डॉ० निर्मला लालभाई झावेरी का मत है कि "मीरानु बाल पण मारवाडमा वीत्युँ, लग्ने ऍ मेवाडी बनी, वृन्दावन मा वसी, व्रजवासी थइ, अनेशेष जीवन ऍने द्वारका मा पूरु कर्यु, आ थी मारवाड, मेवाड, व्रज अने गुजरात मा जुदे-जुदे स्थने ऍ रही होवा थी पदोमा जुदी जुदी छाट देखाय छे। ऍना पदोनी मूल भाषा मारवाडी राजस्थानी कही छे, ते, छे, या जुनी पश्चिम राजस्थानी डॉ० टैसीटरी ने मते गुजराती तथा मारवाडी नी जननी छे।"[2]

श्रीमती झावेरी यह भी स्वीकार करती हैं कि "मीरा नो समय ईसुनी पंदरमी सोलमी सदीनी अपभ्रंश साहित्य नो युग छे। ये समय नी भारतनी जुदा-जुदा भागमा वपराती भाषाना अपभ्रंश स्वरूप मां घणु साम्य छे। ऍज समय मारचा ऍला प्राचीन साहित्य मा हालनी भाषा ऍना अपभ्रंश स्वरूप मा जोवा मलेछे, द० त० भालणना "नलाख्यान" अने पद्मनोरू संवत १५१२ मा रचेला "कान्हडदे प्रबन्ध" मे ऍना उदाहरणो मले छे मीरानो पण ऍज काल होवा छता ऍना समकालीन साहित्य नी भाषा अने ऍना पदोनी भाषा मा घणो तफावत छे, ऍनु कारण ये छे के ऍना स्वरचित पदोनीप्रत उपलब्ध न थी।"[3]

मीरा के युग की भाषा को डॉ० निर्मला झावेरी भी मारवाडी राजस्थानी मानती हैं, और वे उसे प्राचीन राजस्थानी का अपभ्रंश स्वरूप भी बतलाती हैं।

इसी तरह से श्री के० एम० मशी[4] श्री केशवराम काशीराम शास्त्री[5] *श्रीसूर्यकरण पारीख[6] आदि विद्वानो के मत एवं डॉ० निर्मला लाला भाई झावेरी के* मत एक जैसे ही हैं।

वस्तुतः हिन्दी और गुजराती के सभी विद्वान मीरा और उनके युग की भाषा को सोलहवी शताब्दी के पश्चिमी राजस्थानी मानते हैं और गुजराती विद्वान उसे तद्युगीन पश्चिमी राजस्थानी का अपभ्रंश रूप मानने के पक्ष मे हैं। डाकोर और काशी

---

(१) मीरां और उनकी प्रेमवाणी ज्ञानचद, जैन पृष्ठ ४५, मीराबाई (जीवनी और काव्य)–डॉ० श्रीकृष्णलाल, पृष्ठ १६८ मीरां दर्शन–प्रो० मुरलीधर श्रीवास्तव, पृष्ठ ५६ तनम जोगिण मीरा प्रो० शभुप्रसाद बहुगुणा मीरां स्मृति ग्रंथ-पृष्ठ ५० ५१ मीराबाई की पदावली परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ ५६, मीरां माधुरी ब्रजरत्नदास, पृष्ठ-१७७। (२) मीरां जीवन अने कवन डॉ० निर्मला लालभाई झावेरी, पृष्ठ २५३, (३) वही, पृष्ठ २५३-२५४। (४) गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर श्री के० एम० मुंशी पृष्ठ १३३-१३४ (५) कविचरित भाग १ श्री के० का० शास्त्री, पृष्ठ १८८। (६) राजस्थानी हिन्दी और ...ौर श्री सूर्यकरण पारीख-ना० प्र० पत्रिका संवत् ११६१ भाग १६ अक १ पृष्ठ २३४।

की प्रतियो का भाषा ऐसी ही है, अत. ऐतिहासिक दृष्टि से डाकोर और काशी की प्रतियो के पदो की भाषा मीरा की मूल भाषा है।

मूल पदावली-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण तथ्य

(१) मीरा, मीरा का युग और उनके राज परिवार की मूल भाषा को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि मीरा की मातृभाषा और उनकी काव्य भाषा पश्चिमी राजस्थानी ही थी, जो राजस्थानी अपभ्रंश रूप से विकसित हुई थी। प्रस्तुत पदावली मे संकलित डाकोर और काशी की प्रतियो की भाषा, (सामान्य लिपि भेद को छोडकर) यही है, अत. मीरा ने ब्रज, गुजराती, आधुनिक राजस्थानी, बिहारी, पजाबी आदि अन्य भाषाओ में पद रचना नही की।

(२) आधुनिक राजस्थानी के पद मीरा के पद नही हैं। ब्रज-भाषा मे भी मीरा ने पद नही रचे। अत, आधुनिक गुजराती तथा अन्य भाषाओं में प्राप्त मीरा के तथाकथित सभी पद प्रक्षिप्त हैं। वे मीरा भाव से प्रभावित साधु सन्तो और गायको की रचनायें हैं, मीरा को नही, अतः उन्हें 'मीरा' की अपेक्षा 'मीरा भाव' की रचना मानना चाहिए।

(३) अद्यावधि प्राप्त प्रमाणो के अनुसार मीरा ने केवल १०३ पद प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी में हा ग ये थे, अतः वे ही मीरा के प्रमाणिक पद हैं। डाकोर और काशी की हस्तलिखित प्रतियो की प्राचीनता इसका एक प्रामाण है।

(४) मीरा के इन सभी मूल पदों का ब्रज भाषा और गुजराती मे पद्यानुवाद हुआ है, और इसी ढंग स रचे गये अनेक पद विभिन्न प्रदेशों मे मीरा के नाम पर प्रचारित हुए हैं।

(५) मूल पदावली की भाषा और भावधारा के अनुसार मीरा सम्प्रदाय-मुक्त वैष्णवी थी। नाथपंथी, रैदासी, निर्गुण-सम्प्रदाय, सूफी सम्प्रदाय, रामानन्दी सम्प्रदाय आदि की साम्प्रदायिक शब्दावली मीरा के पदों में नहीं गेय रूपो में बाद मे जुडी है।

(६) भाषा-शास्त्र और उसके इतिहास से भी प्रस्तुत पदावली की प्रामाणिकता समर्थित है। इसके सभी पदो के परवर्ती रूप अन्य पद-संग्रहो में मिलते हैं।

(७) ब्रज और गुजराती भाषाओ के जो पद अन्य गुटको मे मिलते हैं, वे अशुद्ध हैं, और वे मूल पदो की भाषा की तुलना में अन्य लेखकों द्वारा लिखे गये जान प ते हैं, अतः उन्हें प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। अस्तु, प्रामाणिक पदावली के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मीरा ब्रज और गुजराती की कवयित्री कदापि नहीं थीं।

प्रामाणिक पदावली की भाषागत विशेषतायें

(१) डाकोर की प्रति मे पार्श्विक अन्य प्राण सघोष वर्त्स्य 'ल' के स्थान पर अल्पप्राण सघोष मूर्धन्य उत्क्षिप्त ध्वनि 'ळ' लिखित रूप में पाई जाती है, जिसका

प्राचीन राजस्थानी में पार्श्विक अल्पप्राण मूर्धन्य व्यंजन 'ळ' के अनुरूप उच्चारण होता था। आधुनिक राजस्थानी मे भी यह ध्वनि विद्यमान है, किन्तु लिखा 'ल' ही जाता है।

डाकोर की प्रति मे डोक, जड, वेड, प्याडा, फेड, मिड, अबडा, कंवड, दड, तिडक, कुडड, अडका, मुरडी, अनड, व्याकुड, खाडा, निरमड, सीतड, मिड्या, मोड, ढोड, तोड, मोड, कोड, डीडा, डुभावा, डोड्या, थड, डागा, अबोडणा, डडक, अजामेड, डाड, डाज, मगड, शकड, गड आदि शब्दों मे यह प्रवृत्ति पाई जाती है।

गेय परम्परा मे ऐसे सभी शब्दो के 'ड' का 'ल' में परिवर्तन हो गया है।

(२) काशी की प्रति मे 'ल' के स्थान पर 'ड' और 'ल' दोनो का प्रयोग पाया जाता है। यथा—

काशी की प्रति मे केडा, उजडो, बादडा, डरजा थड, डाड आदि शब्दों में 'ड' का प्रयोग हुआ है, तो सील, चल्या, लाड, लोग आदि शब्दो मे 'ल' के प्रयोग की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। इससे पता चलता है कि सवत् १६४२ से सवत् १८०५ तक राजस्थानी के 'ड' को 'ल' के रूप मे लिखने की परम्परा शुरू हो गई थी पर उच्चारण की दृष्टि से 'ल' का उच्चारण पार्श्विक अल्प प्राण मूर्धन्य व्यंजन के रूप में होता था।

(३) डाकोर और काशी की प्रतियो मे अल्पप्राण सघोष वर्त्स्य अनुनासिक 'न' और अल्पप्राण सघोष मूर्धन्य अनुनासिक व्यंजन 'ण' दोनो का प्रयोग पाया जाता है। यथा—ण, मगण, होणा, अबणासी, सण्यासी, करणा, जाणा, जमणा किणारे घेणु, तण, मण, धण, मोहण, ण, पाणी, तथा नागर, नट नीर, निरमड, वृन्दाबण, नर, ना, नेहरी, नाव, जीवन, प्रान, नेणा, न, निहारा आदि।

मूल पदो को भाषान्तरित करते समय प्रायः अधिकाश 'ण', 'न' मे बदल गये हैं, किन्तु कुछ सम्पादको ने 'ण' को राजस्थानी ध्वनि के रूप मे यथावत रहने भी दिया है। *ल, ड और न, ण के लिखित भेद प्रायः 'लहिया' के कारण है।*

(४) ह्रस्व इकार और उकार का मूल प्रति मे लोप पाया जाता है। ब्रज-भाषा और अवधी की कोमल कान्त पदावली मे स्वर माधुर्य के लिये इकारान्त और उकारान्त शब्द लिखे जाते थे, किन्तु प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी मे इकारान्त और उकारान्त शब्दो का अभाव पाया जाता है, यथा—दीर्घ के लिये दघ, वेलि के लिये वेड या बिछुडा के लिये बिछडा, जमुना के लिये जमणा, मुकुट के लिये मुगट आदि।

(५) ऐकार के लिये एकार का प्रयोग भी दर्शनीय है, इसीलिये बैठ-बैठ के लिये वेठ-बेठ, फैन के लिये फेड, और के लिये ओर, कौल के लिये कोड आदि शब्द लिखे गये हैं।

(६) वर्त्स्य संघर्षी अघोष ध्वनि 'स' के स्थान पर अघोष संघर्षी तालव्य ध्वनि 'श' का प्रयोग भी मूल पदावली की भाषा मे कई जगह पाया जाता है। यथा— सब के लिये शव, सुख के लिये शुख, सुखिया के लिये शुखिया आदि।

(७) साथ ही 'श' के स्थान पर 'स' का भी प्रयोग सबद (शब्द), स्याम (श्याम) दरसण (दर्शन) आदि शब्दों मे पाया जाता है।

(८) प्रायः सभी पदो मे क्रियारूप गुजराती भाषा से मिलते-जुलते हैं। मीरां-पदावली में अरबी फारसी के दरद, दर-दर, अरजो, अरजा, जागीरा-कोड आदि तद्भव शब्द भी कही कही आए हैं।

मीरां-पदावली मे डिंगल के शब्द

मीरा की प्रामाणिक पदावली के सम्बन्ध में इस तथ्य का निर्देश करना अत्यत आवश्यक है कि डाकोर और काशी की प्रतियो के पद सर्वथा प्रामाणिक, प्राचीन और विश्वसनीय हैं, तथा उनमें प्राप्त तद्‌युगीन भाषा के सम्बन्ध में विरोध के लिये कहीं कोई गुंजाइश नही है।

"मेवाड कोकिल मीराबाई" लेख मे डॉ० सुरेन्द्रनाथ सेन ने मीरा की जीवनी और काव्य धारा के वैज्ञानिक अनुसन्धान पर जोर देते हुये लिखा था कि "इसके बाद भी एक समस्या अपने हल की अपेक्षा करती है कि उस समय के चारणों की परम प्रिय डिंगल को छोडकर मीरा ने हिन्दी मे ही अपने भजन क्यो गाये ?"[१]

मीरा की प्रस्तुत प्रामाणिक पदावली डॉ० सुरेन्द्रनाथ सेन के प्रश्न का प्रामाणिक उत्तर है। मीरा की भाषा मूलतः प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी थी, जिस पर डिंगल का सीधा प्रभाव। मीरा की प्रामाणिक पदावली में डिंगल शब्दावली का स्वरूप निम्नानुसार है :—

हूँ (डिंगल) <सं०-अहम्,
नव नव <सं०-नवीन,
वचण (डिं०) <प्रा०-वयण <सं० वचन,
कुण (डिं०) <सं०-कः,
करि (डिं०) <सं०-कर (सप्तमी, विभक्त्यन्त),
सरैं (डिं०) सरना,
जिवडा, जिवडो (डिं०) <सं० जीव,
विसेस (डिं०) <सं०-विशेष,
वेस (डिं०) <सं०-वयस,
जोवण (डिं०) <प्रा०-जोव्वण <सं०-यौवन,

जोई (डिं०) <सं० यस्य, जो,
सावरा (डिं०) <सं० श्यामल,
धुरै, धुरास्यां (डिं०) <सं०-धुर,
दीठि (डिं०) <सं०-दृष्टि,
परणों, पराण, परण (डिं०) <सं० परिणय,
ऊधरो (डिं०) <सं०-उद्धरण,
किण (डिं०) किसने
ऊभी, ऊभा (डिं०) <सं० उत्+भू,
परसण (डिं०) <सं०-स्पर्शनम्,

---

(१) मीरां स्मृति ग्रन्थ, पृष्ठ ७३।

होइसें (डि०) < प्रा० होइस्सइ, होइस्सदि < सं० भविष्यत्,

बिछड़या, बीछड़ती (डि०) < स०-विच्छेद,

संघाती (डि०) < सं० संघ, संघात + ई,

काज (डि०) < सं०-कार्य,

गिणी (डि०) < सं०-गणन,

खीण (डि०) < स०-क्षीण,

घणी, घणो (डि०) < स०-घनत्व,

बिसवास, बिसासो (डि०) < सं०-विश्वास,

दरसण (डि०) < सं०-दर्शनम्,

धरिया (ड०) < सं०-धारिता,

सिणगार (डि०) < सं० शृंगार,

बीसरियाँ (डि०) < सं०-वि + स्मरण

बछल (डि०) < सं०-वत्सल,

दाधा (डि०) < प्रा०-दाधा < स०-दग्ध,

लूण (डि०)-नमक, नोन,

जासी (डि०) जायगी,

जोवँ (डि०)-जोहना-देखना,

इसी तरह मीरा की प्रामाणिक पदावली मे डिंगल के अनेक शब्द विद्यमान हैं। यदि मीरा पदावली का शब्दकोष तैयार किया जाय तो निश्चित रूप से यह प्रमाणित हो सकता है कि मीरा ने तद्‌युगीन राजस्थानी काव्य भाषा डिंगल मे ही पद रचना की थी, किन्तु यह डिंगल सोलहवीं शताब्दी की पश्चिमी राजस्थानी का ही लोक प्रचलित सहज, सुलभ, नैसर्गिक रूप है। यही मीरा की मूल भाषा है।

मीरां-पदावली का व्याकरणिक अध्ययन

मीरा की प्रामाणिक पदावली का व्याकरणिक स्वरूप निम्नानुसार है—

राजस्थानी भाषा की उच्चारण सम्बन्धी विशेषताएँ

(१) राजस्थानी मे वैदिक मराठी, गुजराती आदि भाषाओं की भाँति पार्श्विक अल्पप्राण मूर्धन्य लकार भी होता है, जो ल, या ड़ लिखा जाता है।

(२) अघोष संघर्षीमूर्धन्य ष, तथा महाप्राण अघोष स्पर्श व्यंजन 'ख' का उच्चारण सदा 'ख' 'अघोष संघर्षी तालव्य श' और वर्त्स्य संघर्षी अघोष 'स' का उच्चारण प्राय. 'स', और तालव्य सघोष अर्धस्वर 'य' व अल्पप्राण सघोष स्पर्श संघर्षी 'ज' का उच्चारण अधिकतर 'ज' के रूप में हुआ करता है!

(३) महाप्राण अघोष स्पर्श व्यंजन 'छ' का उच्चारण, वर्त्स्य संघर्षी अघोष 'स' से मिलता-जुलता होता है!

(४) डिंगल भाषा का बहुप्रचलित अल्पप्राण सघोष स्पर्श मूर्धन्य व्यंजन 'ड' स्वार्थिक प्रत्यय की भाँति राजस्थानी संज्ञाओं में लग जाता है। यथा—म्हारे हीयडे।

(५) अनुस्वार और अनुनासिक स्वर सदैव अनुस्वार ही लिखे जाते हैं, किन्तु कभी कभी 'न्' और 'ण्' क्रमश 'ं' और 'ँ' के रूप मे भी प्रयुक्त होते हैं।

(६) व्रज, अवधी और हिन्दी का अल्पप्राण सघोष वर्त्स्य अनुनासिक न, प्राय: राजस्थानी मे अल्पप्राण सघोष मूर्धन्य अनुनासिक व्यंजन 'ण' हो जाता है। जैसे—णदणण्दण।

लिंग और वचन

(१) हिन्दी के आकारान्त शब्द सामान्यतः राजस्थानी मे ओकारान्त हो जाते हैं और उनका बहुवचन हिन्दी की भांति एकारान्त न होकर आकारान्त होता है। यथा—

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
प्यारो	प्यारा	आसिरो	आसरा
दूसरो	दूसरा	रूठ्यो	रूठ्या
म्हांरो	म्हारा	गयो	गया
नेहरो	नेहरा	मुखडो	मुखडा

(२) आकारान्त स्त्रीलिंग शब्दो का बहुवचन बनाने के लिये 'आ' या 'आवां' प्रत्यय लगाये जाते हैं, जैसे—माला > माला > मालावा।

(३) इकारान्त और ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दो के बहुवचन 'या' अथवा 'इया' प्रत्यय के मेल से बनते हैं, जैसे—सहेली > सहेल्या > सहेलिया, लडी > लडया।

(४) स्त्रीलिंग शब्दो का बहुवचन बनाने के लिये वा या 'उवा' प्रत्यय लगाते हैं—डाइच > डडचावां,—लखा > लखावा।

(५) अकारात शब्दो के बहुवचन बनाते समय 'आ' प्रत्यय जोडा जाता है, जैसे—नैण > नैणा, साध > साधा,

कारक तथा विभक्तियाँ

(१) राजस्थानी में कर्म व सम्प्रदान कारक में सामान्यतं नूं, नु, ने, कूं, को, रू' को व हि विभक्तियों का प्रयोग होता है, जैसे—सांवरयाने, त्याकूं, सामरिया रो, पुरब जणम को, बिसरू",

(२) करण व अपादान कारक में अधिकतर विकारी रूपा के आगे सूं, से, सँ, तें व तैं विभक्ति चिन्ह लगाये जाते हैं, जैसे—म्हांसु, मोसु, कया सूं, कया सू, सावड्या सू, राग सू,

(३) अधिकरण कारक में विकारी रूपों के आगे मैं, में, मां इ, ए, अथवा पै, पर-परि, विच, मांह, मांहिने, मंझार आदि विभक्तियाँ प्रयोग मे लाई जाती हैं। जैसे—गगण मो, मारोमा, गिरधर पर, झरमट मां, गैड मां, चाकरी मा, चरणामां, जगमां, मन्दिरमा।

(४) सम्बन्ध कारक में विकारी रूपों के आगे पुल्लिंग में रो, रे, को, रा, नो,

ा, व स्त्रीलिंग मे री, की, नी, दी विभक्ति चिह्न प्रयुक्त होते हैं। यथा—विपरो
ाडो पहरण वाजी मीरा रे प्रभु मोहण री प्रभु रे, म्हारो, जमणा का, हरि रे चरण,
हारो हिवडो, म्हारे घर, पुन्न रा पाज, प्रजवणता रो कन्त, मीरा री लगण, गांव री
ीत, प्रीति री, वातां, दरद री मार्‌या, धुड रा ग्याती, जग री वातां।

(५) कविताओ मे विभक्तियो का लोप भी हो जाता है। जैसे—

कर्म कारक की विभक्ति का लोप—म्हांडिया गोविन्दा मोड। (डाकोर की
ति पद १३)

म्हारे णेणा वाण पडी। (डाकोर की प्रति, पद-१५)

करण कारक—सबदा सुणता छतियां कापा। -(डाकोर की प्रति, पद-२०)

अपादान कारक—नैण झर्‌या दो नीर। -(डाकोर की प्रति, पद ६)

सम्बन्ध कारक—विरह अनड लागा उर अतर। -(डाकोर की प्रति, पद ६)

अधिकरण कारक—थांका चितवण नैणा समाणी। (डाकोर की प्रति, पद-३)

म्हारे सीश विराजा हो। -(काशी की प्रति, पद क्रमाक ७६)।

सर्वनाम और उनके रूप

१ उत्तम पुरुष—उत्तम पुरुष 'हूं' है, जो कर्त्ताकारक में म्हें, म्हा, करण व
अपादान कारक मे मोसूं, म्हांसू, कर्म व सम्प्रदान कारक मे मने, म्हाने, मोकूं; अधि-
करण कारक मे मोपरि, सम्बन्ध कारक मे मो, म्हारो, म्हारा, म्हारी आदि रूपो मे
प्रयुक्त होता है।

२ मध्यम पुरुष—मध्यम पुरुष 'थे' या 'थें' है, जो कर्त्ताकारक में थे, तुम,
करण व अपादान कारक मे तोसू, तोसें, कर्म व सम्प्रदान कारक मे थाने, तोइ, तथा
सम्बन्ध कारक में थारो, थारो, थाको रावरो, रावरी आदि रूपो मे विद्यमान है।

३ अन्य पुरुष—मे वो, यो, कुण, जो निम्नलिखित रूपो मे पाये जाते हैं—

वो—वह, वो, सो, ऊ, ओहि, उण।

यो—यह, यो, ये, ए, इन, इण।

कुण—कौन, कुण, कूण, किस, किण।

जो, जौन—जो, जे, जा, जिस, जिण।

क्रियाएँ और तत्सम्बन्धी सामान्य नियम

(१) क्रिया के साधारण रूप के अन्त मे 'णो' होता है। जैसे—करणो,
बोलणो, सोवणो, बाँचणो, मरणो आदि।

(२) यदि क्रिया के अन्त में मूर्धन्य अक्षर हो तो धातु के अन्त में णो की
जगह 'नो' हो जाता है, जैसे—पडनो, मिळनो, जाणनो आदि।

(३) सकर्मक क्रियाओं के रूपो मे लिंग व वचन के भेद कर्म के अनुसार होते
हैं और कर्म प्राय विकारी रूप मे आता है। यथा—जग मा जीवणा थोडा, कुण
लयो भव भार। स्याम म्हा बहांडिया जी गह्या।

(४) वर्तमान, विधि एवम् भविष्यत् कालो में लिंग भेद का विचार नहीं किया जाता, वचन व पुरुष के ही भेद हुआ करते हैं।

(५) भविष्यत् काल के रूप बनाते समय प्राकृत के व्याकरण का अनुसरण किया जाता है, अथवा क्रिया के अंत में 'गा' य 'ला' लगाकर बनाये जाते हैं। यथा—जास्या, आवागा, करोला।

(६) सामान्य भूत, पूर्ण भूत, आसन्न भूत और हेतुहेतुमद् भूत काल मे भी लिंग और वचन का भेद तो होता है, पर पुरुष भेद नहीं होता।

क्रियाओं का रूप

(१) वर्तमान व विधि

वचन	उत्तम पुरुष	मध्यम पुरुष	अन्य पुरुष
एकवचन	जोऊँ, जाऊँ जाणा, जातो	जाज्यो, राखज्यो,	सतावै, आय, बजावा
बहुवचन	चाला, करा धरा, भेज्यां	पावां, आवो,	जाणा, जाएत

(२) भविष्यत्

वचन	उत्तम पुरुष	मध्यम पुरुष	अन्य पुरुष
एकवचन	देस्यू, रहस्यू, पास, पासू	डारा,	पावेली, करसी, जासी
बहुवचन	धमकास्यां, फिर्यां	करोला	दे हैं, दीस्या

(३) हेतु हेतु मद्भूत

एक वचन—जाणतो,

(४) सामान्य भूत

एकवचन—डरी (स्त्री लिंग, उत्तम पुरुष) बिकाणी (स्त्री० उ० पु०) बिलमाणी, मोह्यां, प्याणा,

बहुवचन—मिल्या (पु० लि० अन्य पु०)

(५) सामान्य भूत (सकर्मक क्रिया)

एकवचन—धमाड्यो, फोड्यो, गुमावां, कूया, छांड्या, छूया, बुया दयां, छोड्या।

बहुवचन—गमाया, धरिया।

व्याकरण की दृष्टि से मीरां-पदावली का यह विश्लेषण अत्यन्त सामान्य स्तर का है। इस दिशा में स्वतन्त्र, सर्वांगीण अध्ययन अपेक्षित है।

२. शैली

शैली वैज्ञानिक दृष्टि से मीरा का काव्य गीति शैली के अन्तर्गत आता है उसकी गीति शैली का स्वरूप, सृजन-प्रक्रिया और उल्लेखनीय विशेषताएँ निम्न नुसार हैं :—

मीरां का गीति काव्य

मीरा का गीति काव्य उनके अन्तर्जगत की तादात्म्यकारिणी आत्मीयत रागात्मक संवेदना, स्वयस्फूर्त कल्पना और नैसर्गिक बिम्बविधायिनी प्रतिभा क सहज ज्ञापन है। उसमे मीरा की वैयक्तिकता का भावावेग संगीत मे घुलमिलक अभिव्यक्त हुआ है, अत. मीरा के पदो मे शब्द, अर्थ, भाव और रस-सभी का आन्त रिक सौन्दर्य साकार दिखाई देता है। मनोवेगो के आप्लावन और स्वानुभूति प्रकाशन के कारण मीरा का गीतिकाव्य पर्याप्त लोकप्रिय है। आचार्य मम्मट "रमणीयार्थ प्रतिपादक. शब्द' काव्यम्" और साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ "वाक्य रसात्मकं काव्यम्" की दृष्टि से मीरा के पद निश्चित रूप से श्रेष्ठ काव के प्रतीक हैं, क्योंकि उनमे मीरां की भक्त आत्मा का निरावृत्त, लयपूर्ण, कलात्म प्रकाशन हुआ है।

पाश्चात्य दृष्टि से मीरा का काव्य 'लिरिक'[1] के अन्तर्गत आता है। 'लिरिक शब्द हिन्दी के 'गीतिकाव्य' का पर्यायवाची है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार 'लिरिक' कदाचित उस संक्षिप्त गेय काव्य को कहा जाता था, जो 'लायर (Lyre) नामक वाद्य यंत्र के साथ गाया जाता था। 'लायर' ग्रीक भाषा मे लूरा (Lura) कहलाता था।[2] ग्रीक 'लूरा' पर गाये जाने वाले गीतो को 'लुरिकोस (Luri kos) कहते थे। इस प्रकार से ग्रीक के लुरिकोस, अंग्रेजी के लिरिक (Lyric) और हिन्दी के 'गीति' शब्द सामान्यत समानार्थी हैं।

गीतिकाव्य सम्बन्धी पाश्चात्य अभिमत

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अध्ययन से पता चलता है कि जाफ्राय (Jouffroy) ही वह सर्वप्रथम सौन्दर्य तत्वज्ञ था, जिसने सबसे पहले गीति काव्य और काव्य शब्द की एकरूपता का दर्शन कर दोनो शब्दो को एक ही काव्य रूप के दो नाम बतलाये थे। उसके मत से काव्य अथवा गीति काव्य मे उन सम्पूर्ण तत्वो का सामंजस्य पाया जाता है, जो वैयक्तिक और आह्लादकारी होते हैं, तथा जिनमें कविता के प्राणो का स्पन्दन विद्यमान रहता है, अत बाह्य आकार के कठोर नियमों के

(१) An Introduction to the study of Literature–W. H. Hudson. Page-126 (२) Encyclopedia Brittanica, Vol XVII. Page-177.

आधार पर उनकी समीक्षा करना व्यर्थ है।[1]

हेगल के मत से काव्य का एक मात्र कार्य शुद्ध कलात्मक ढंग से आन्तरिक जीवन के रहस्यों, उसकी आशाओं, उसके उद्वेलित आह्लाद, उसकी वेदना एवं उसके विषाद पूर्ण क्रन्दन अथवा उन्माद को व्यक्त करना है।[2]

अर्नेस्ट रिस के विचारानुसार गीति काव्य प्रभावोत्पादक भावों से अनुशासित शक्तिशाली लय से परिपूर्ण सर्वथा स्वतन्त्र शब्दों में संगीतात्मक अभिव्यक्ति है।[3]

जॉन ड्रिंकवाटर ने भी गीतिकाव्य और काव्य को पर्यायवाची शब्द मानते हुए लिखा है कि गीति काव्य शुद्ध काव्य शक्ति से उद्भूत एक ऐसी अभिव्यंजना है, जिसमें इतर कोई भी शक्ति सहयोगी नहीं होती।[4]

एस० टी० कॉलरिज ने काव्य को श्रेष्ठतम शब्दों का श्रेष्ठतम क्रम कहा है।[5]

प्रोफेसर गमर ने गीति काव्य को वैयक्तिक अनुभूति प्रसूत अन्तवृत्ति निरूपिणी कविता माना है, जो घटनाओं से असम्बद्ध और भावनाओं से सम्बन्धित रहती हैं। वह मनुष्य की इच्छा, आकांक्षा, भय, आदि मनोभावों का प्रकाशन करती है।[6]

डब्ल्यू० एच० हडसन ने गीति काव्य को वैयक्तिताप्रधान मानते हुये भी उसे व्यक्ति वैचित्र्य की अपेक्षा व्यापक मानव भावनाओं एवं अनुभूतियों का एसा

---

(1) 'Juffroy was perhaps the first aesthetician to see quite clearly that Lyrical poetry is nothing more than another name of poetry itself, that it includes all personal and enthusia stic part of what lives and breathes in the verse so that the divisions pedantic criticism are of no real avail to us in its conside ration"—Encyclopedia Brittanica Vol XVII Page 181
(2) The Lyric has the function of revealing in terms of pure art the Secret of inner life its hopes, its fantastic joys its sorrows, its delirium" Hegal Encyclopedia Brittanica Vol XVII Page 181.
(3) Lyric, it may be said, implies a form of musical utterence in words governed by overmastering emotion and set free by a power fully Concordant rhythm"—Lyric Poetry Ernest Rhys Foreword Page 6 (4) 'The Characteristic of Lyric is that it is the product of pure poetic energy unassociated with other energies, and that Lyric and poetry are synonymous terms'—The Lyric John Drink water Page 64 (5) 'Poetry the best words in the best order" Table Talk. July 12 1927 (6) Hand Book of Poetics F B Gummere Chapter II Page 40

अभिव्यजन माना है, जिसमे प्रत्येक पाठक रसानुभूति पा सकता है।"[१] अत रस-सिद्धान्त का साधारणीकरण, भारतीय दृष्टि से, उसका सामान्य गुण है।

'गोल्डन ट्रेजेरी' के सकलनकर्ता श्री एफ० टी० पाल्ग्रेव ने गीति काव्य मे किसी एक ही विचार, भाव या स्थिति के प्रकाशन पर जोर दिया है।[२] उनके मत से गीति मे एक ही भाव, विचार अथवा अवस्था की मनोवेगपूर्ण अखड सक्षिप्त अभिव्यक्ति होनी चाहिये।

पाश्चात्य विद्वानो के सभी मतो के सार रूप मे यह कहा जा सकता है कि गीति काव्य कवि के तीव्रतम मनोवेगो और वैयक्तिक अनुभूतिया का उदात्त, सक्षिप्त, प्रभावोत्पादक सगीतात्मक अभिव्यजन है और वह इतर काव्य रूपो से सर्वथा भिन्न है किन्तु काव्य सृष्टि के जितने भी उपादान स्वरूप मत सौन्दर्य भेद तथा प्रभावोत्पादक लक्षण हो सकते हैं वे सबके सब गीतिकाव्य मे बिन्दु मे सिन्धु की तरह समाविष्ट रहते हैं, अत गीतिकाव्य के अल्पाकार मे भी हमे भाव, भाषा अनुभूति रस और सगीत का पुजीभूत आनन्द मिलता है।

मीरा-पदावली मे गीतिकाव्य के तत्व

तात्विक दृष्टि से मीरा के पदो म वैयक्तिकता, कल्पनाशीलता, मार्मिकता, भावात्मकता, सक्षिप्तता, सरलता, सहजता, सरसता, सगीतात्मकता और प्रभविष्णुता पाई जाती है।[३] टी० एडवडस[४] का निम्नलिखित मत मीरा के काव्य पर अक्षरश लागू होता है—

'Poetry is music in words and music is poetry in sound'

उपरोक्त सभी तत्त्वो के समरस समन्वय के कारण मीरा के पद गीति काव्य का श्रृगार है।

गीतिकाव्य परम्परा मे मीरा का स्थान

भारतीय काव्य साधना के इतिहास में गीतिकाव्य के मूल स्रोत वैदिक मत्रों से जुडे हैं। वैदिक मत्रो के सस्वर पठन पाठन ने उन्हे सुदीर्घ काल तक मौखिक रूप से सुरक्षित रखा। वैदिक मत्रो मे उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरो के साथ साथ सगीतात्मकता और मत्र द्रष्टा ऋषियो की वैयक्तिकता का तत्त्व प्रधान था, इसीलिए

---

(१) An Introduct on to the study of Literature W H Hudson page 127 (२) Lyrical has been here held essentially to imply that each poem shall turn to Some Single thought, feeling or Situation ' Golden Treasury F T Palgrave Page-9 (३) विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए-मीरां की भक्ति और उनकी काव्य साधना का अनुशीलन डॉ० भगवानदास तिवारी, पृष्ठ ३१० ३१२। (४) The New Dictionary of thoughts-compiled by T Edwards, Page 470।

वैदिक ऋचाओं में अनुभूति, कल्पना, काव्य और संगीत का समन्वय पाया जाता है। निशा की भगिनी और दिवाकर की प्रिया सद्यः स्नाता उषा का मानवीकरण करते हुए आत्मविभोर ऋषि कहते हैं कि—

"एषा शुभ्रान तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात्।
अप द्वेषो बाधमाना तमो स्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात्॥
एषा प्रतीची दुहिता दिवो न्हन् योषेवभद्रा निरिणते अप्स॰।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः॥"[1]

अर्थात् प्राची में आकर यह उषा इस प्रकार खड़ी हो गई है, जैसे वह सद्यः स्नाता है। वह अपने अंगों के सौन्दर्य से अभिज्ञ है और वह अपने को स्वयं हमें दिखाना चाहती है। यह स्वर्ग की पुत्री उषा प्रकाश के साथ संसार के द्वेष और अंधकार को दूर करती हुई आई है। स्वर्ग की यह पुत्री कल्याणी रमणी की भाँति नतमस्तक हो मनुष्यों के समक्ष खड़ी है। वह धर्मशीलों को ऐश्वर्य-दान करती है। संसार भर में इसने पुन. दिन का प्रकाश फैला दिया है।

सामवेद तो गानवेद ही है। रामायण के प्रणेता महर्षि बाल्मीकि नूतन छंद के प्रथम आविष्कारक कहे गये हैं। लवकुश ने राम को रामायण गाकर सुनाई थी। वैदिक छन्दों का आत्मज्ञापक संगीत भरतमुनि के नाट्य शास्त्र के प्रादुर्भाव तक आते-आते सौंदर्य बोध और मनोरंजन का भी साधन हो गया था। नाट्य शास्त्र के प्रणयन के समय तक संगीत में सात सुरों का वर्गीकरण हो चुका था और गेय काव्य में राग-रागिनियों की परम्परा समृद्ध हो गई थी।

बौद्ध और जैन साहित्य में भक्तिपरक, नैराश्यमूलक, धार्मिक भावापन्न पदों की रचना हुई है। पाली, अर्धमागधी और अन्यान्य प्राकृतों में भी यत्र तत्र गीतों की रचना होती रही है। कालिदास के मेघदूत में विरहविदग्ध मानस की व्याकुलता, कल्पना की प्रदीर्घ उड़ान, संगीत की मधुरिमा और शब्दों का नाद-सौंदर्य अपने विराट वैभव के साथ मुखर हुआ है। तदुपरान्त नाथों और सिद्धों के चर्या पद, जयदेव का गीत गोविन्द, बीसलदेवरासो, आल्हखण्ड, खुसरों के पद, विद्यापति की पदावली, कबीरादि निर्गुण सम्प्रदाय के सन्तों के 'शब्द', सूर तथा अष्टछाप के अन्याय कवियों की रचनाएँ मीरां पूर्व गीति काव्य-परम्परा के महत्वपूर्ण आयाम हैं।

भावजगत की दृष्टि से विद्यापति की नायिका प्रिय वियोग में 'जोगिनी' का वेश धारण करने की कामना करते हुए कहती है कि—

"मोर पिया सखि गेल दुर देस
जौवन दए गेल साल सनेम
मास असाढ उनत नव मेघ
पिया विसलस रह्यो निरथेध

---

(१) ऋग्वेद ५।८०।५ ६।

कौन पुरुष सखि कौन सो देस
करब माय तहाँ जोगिनी वेस"[१]

मीरा भी अपने प्रिय की खोज मे भगवा वेश धारण कर जोगिन बनना चाहती है—

सावड़िया म्हारो छाय रह्या परदेस।
म्हारा बिछड्या फेर न मिड्या भेज्या णा एक शन्नेस।
रतण आभरण भूखण छाड्या खोर किया शर केस।
भगवा भेख धरया थें कारण, ढूंढ्या चार्‌या देस।
मीरा रे प्रभु स्याम मिड़ण बिणा जीवण जणम अडेस ॥[२]

विद्यापति के पद में परोक्ष, परानुभूति का काल्पनिक स्वानुभूत का अभिव्यंजन है, तो मीरा के पद मे आत्मानुभूति की अनलकृत नैसर्गिक सुषमा विद्यापति नायिका की व्यथा कवि के शब्दो में प्रकट करते हैं, तो मीरा ने अपने पद मे आप बीती सुनाई है, इसीलिए मीरा का पद अधिक मार्मिक और दर्दीला है।

गीति काव्य की पूर्ववर्ती परम्परा में मीरा का काव्य एक सच्ची भक्त आत्मा की वेदना, व्याकुलता, तल्लीनता, मिलन के उल्लास और विरह के उन्माद को पूर्णतः संयतावस्था में ज्ञापित करता है। उनके विरह-प्रधान पदो मे उनकी अन्तर्वेदना फूट पडी है और वियोग की विकासोन्मुख दशा में इस अन्तर्वेदना का सौन्दर्य मीरा के काव्य का प्राण बनकर ढल गया है। उसमें बाह्य तापो की तालाबेली कम और अन्तर की कचोट ज्यादा है! भावानुरूप स्वरो के उतार चढाव से मीरा के पदो में संगीत-तत्व का सहज समन्वय हो गया है। पूर्णतः वैयक्तिक अनुभूतियो के प्रकाशन, मनोवेगो के स्वाभाविक ज्ञापन और आत्मा की निगूढ अनुभूतियो के यथातथ्य अभिव्यंजन से मीरा का काव्य गीति काव्य परम्परा मे एक स्वतंत्र और सर्वोच्च स्थान पाने का अधिकारी है।

काव्य-सृजन-प्रक्रिया और मीरां की मनोभूमिका

मीरा के काव्य मे भावपक्ष प्रधान है, अतः उसमें पाडित्यपूर्ण शब्द विन्यास, विद्वत्तापूर्ण आलकारिक छन्द विधान और दार्शनिकता से बोझिल विचारो का एकातिक अभाव पाया जाता है। मीरा का समस्त काव्य हार्दिक भावो का सहज प्रकाशन है। अतः उनके प्रत्येक पद मे काव्य-सृष्टि की तीन भाव दशायें पाई जाती हैं। सुप्रसिद्ध आंगल विद्वान नार्मन होपिल[३] ने गीति काव्य के सृजन को तीन भागो में विभक्त कर लिखा था कि—

---

(१) विद्यापति-पदावली-सपादक : रामवृक्ष बेनीपुरी, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ २७१। (२) मीरां की प्रामाणिक पदावली-काशी की प्रति, पद-७४। (३) Lyrical Forms in English-Norman Hepple, Page 11-13।

(१) काव्य-सृजन की प्रक्रिया में सबसे पहले कवि काव्य प्रेरणा के मूल और तज्जन्य मनोवेगों का ज्ञापन करता है, जिससे यह पता चलता है कि काव्य-सृजन के लिये कवि के अन्तर्मन मे मूल भाव की उत्पत्ति कैसे हुई, अर्थात् किसी भी कवि के मन में भावो का प्रवर्तन कैसे हुआ ? यह प्रवर्तन (मोटिव) गीति काव्य का प्रारंभिक अंश है।

(२) दूसरी अवस्था में प्रवर्तित भाव, मनोवेग के सहयोग से उच्च मानसिक पीठिका पर अधिष्ठित होता है, फलतः गीति काव्य में भावपक्ष और बुद्धितत्व सतुलित हो जाते हैं। यही मनोभावो की तीव्रतम अनुभूति युक्त चरमावस्था है। इस द्वितीयाश में भावो की चरमावस्था के साथ साथ उनके ह्रास के भी चिन्ह दिखाई देते हैं।

(३) इसके बाद कवि की अन्तिम मन: स्थिति में भावो की अभिव्यंजना होती है, और भाव विचारो के संतुलन से गीत की सृष्टि होती है।

इस तरह से भावों की उत्पत्ति, उनकी चरमावस्था और भाव संतुलन की प्रक्रिया से गीति काव्य का सृजन होता है।

मीरा के काव्य में गीति-सृष्टि की प्रक्रिया का स्वरूप और तत्सम्बन्धी तथ्य

मीरा के गीति काव्य के स्वरूप और उसमे व्याप्त भावनाओ के क्रमिक नियोजन के सूक्ष्म अध्ययन से मीरा को गीति-सृष्टि मे एक विशेष प्रकार की मानसिक प्रक्रिया[१] परिलक्षित है, जा हेपिल की काव्य सृष्टि सम्बन्धी मान्यताओ से कही अधिक सूक्ष्म, तर्क सम्मत और शास्त्रीय है। मीरा की गीति-सृष्टि में इन प्रक्रियाओ का स्वरूप इस प्रकार है-(१) आत्मानुभूति, (२) भावजागृति, (३) मनोवेगो का उद्वेलन (४) भावदशा की चरम परिणति (५) भाव योग का शब्दयोग से समन्वय (६) भावानुरूप शब्दो की व्यजना (७) भावदशा का उतार-चढाव (८) अनुभूति की संकलित पूर्णाभिव्यक्ति पर गीत का अत।

(१) आत्मानुभूति—कवि के जीवन मे किसी विशिष्ट क्षण मे, किसी विशिष्ट वातावरण और परिस्थिति से उसकी अनुभूति की चेतना जागृत होती है। यह अनुभूति कवि के सहज संवेदनशील हृदय का विशिष्ट गुण है। आत्मानुभूति का वह क्षण, वह परिस्थिति, शात जल में फेंके हुये पत्थर से उत्पन्न होने वाली लहरो की तरह कवि मानस की भावनाओ को तरंगित करती है। यह आत्मानुभूति ही काव्य का सूक्ष्म प्राण है, जो कवि की वैयक्तिकता को आत्मसात् किये रहती है। यही अनुभूति कालांतर में भाव जागृति का मूल कारण है।

(२) भावजागृति—आत्मानुभूति से कवि के प्राणों में जो स्पन्दन होता है, उसी से भावोर्मियाँ तरंगित हो सचेतन बन उद्वेलित हो उठती हैं, इससे कवि की भावुकता को बल मिलता है। अनुभूति की तीव्रता से कवि भाव लोक मे विचरण

---

(१) हिन्दी काव्य के विविध परिदृश्य—डॉ० भगवानदास तिवारी, पृष्ठ १७-२१।

ारने लगता है। कल्पना शक्ति उस भावुकता को और भी बल देती है और मनोद्वेगो ा वह सचालित होने लगता है।

(३) मनोवेगों का उद्वेलन—भाव-जागृति के साथ ही कवि के मन मे संवेगो का ‍ वार उठता है। मनोवेगो का यह ज्वार कवि की अनुभूति को तीव्रता और भावो ‍ो शक्ति प्रदान करता है, फलतः कवि अनुभूति से भावदशा मे पहुँच जाता है। उसकी ‍न्तंवृत्तियाँ भावनिष्ठ होकर मूल भावानुभूति पर केन्द्रित हो जाती हैं, और कवि उस केन्द्रित भावानुभूति के रस मे निमग्न हो जाता है। धीरे-धीरे कवि अपने मनोद्वेगो को व्यक्त करने के लिये विकल होने लगता है।

(४) भावदशा की चरम परिणति—मनोवेगो के उद्वेलन से जागरित भाव कवि की आत्मानुभूति को तीव्रता प्रदान कर उसे भावदशा मे रसमग्न कर देते हैं। इस अवस्था मे भावविह्वल कवि आत्मलीन हो जाता है और उसक प्राण गीतगान के लिए वकल हो उठते हैं।

(५) भावयोग का शब्दयोग से समन्वय—आत्मविह्वल कवि के उद्वेलित मनोवेग उसके हृदय की हलचल को प्रकाश में लाने के लिए लालायित रहते हैं, पर हृदय मूक है। अतः भावदशा की चरमावस्था मे प्रायः हर संवेदनशील व्यक्ति मूक हो जाता है। भावदशा की चरम परिणति अनुभूति की मौन साधना है, जहाँ वाणी का प्रवेश नहीं होता, अतः भावविह्वल कवि कुछ क्षणो के लिए आत्मलीन हो, आत्मविस्मृत सा हो जाता है, परन्तु शब्दशिल्पी साधक मौन के सामने हथियार नहीं डालते, वे मौन नहीं रहते। उनके अन्तर्जगत मे प्रत्येक भाव अपने अनुरूप सार्थक, बिम्बविधायक शब्दो का चयन करता है और कवि की भावदशा का क्रमिक रूप क्रमिक शब्द विन्यास द्वारा पक्तिबद्ध होने लगता है। यही काव्यसृष्टि की मूलमानसिक प्रक्रिया है।

(६) भावानुरूप शब्दों की योजना—भावजगत की पूर्ववर्ती प्रक्रियायें सूक्ष्म अन्तर्मन के विभिन्न स्तरो और क्रिया-कलापो का प्रकाशन करती हैं, किन्तु भावयोग मे शब्दयोग का समन्वय होते ही काव्य की अमूर्त भावना, शब्दो के मूर्त रूपो मे आबद्ध होकर अप्रत्यक्ष से प्रत्यक्ष और सूक्ष्म से स्थूल मे व्यक्त होने लगती है। काव्य का स्वयं प्रसूत लेखन और गायन यहीं से प्रारम्भ होता है। इस दशा मे शब्द भावों का अनुसरण करते हैं और गीत मन- स्थिति और भावोद्वेगो को शब्दों मे बाँध यथा-विधि मुखर करने लगते हैं तथा गीति काव्य मे संगीतात्मक स्वर, ताल, लय आदि गुण अपने आप आ जाते हैं। सक्षेप मे हम इस प्रक्रिया के बारे मे यह कह सकते हैं कि कवि की अनुभूति, भावना और कल्पना मनोवेगों के साहचर्य से कवि के जीवन मे जिस भाव जगत की सृष्टि करती है, वही भावो का उद्वेलन अपने स्वरूपो के अनुसार शब्दों का चयन कर गीति विधान का कारण बन जाता है और अनुभूति, भाव एवं मनोवेग अपने द्योतक सार्थक शब्दो मे व्यक्त होते जाते हैं। यह अनुभूति और उसका अभिव्यक्तिकरण एक साथ ही होता है।

(७) भाव दशा का उतार चढाव—काव्य मे भाव प्रवाह सदैव समतल नहीं होता। वह एक सूक्ष्म केन्द्र से उठकर कवि की सम्पूर्ण चेतना पर छा जाता है। निस्तब्ध जल मे पत्थर गिरने से उठने वाली लहरों की तरह कवि मानस की भावोर्मियां मनोवेगो की उठाती, चढाती और आगे बढाती हैं। काव्य की प्रथम पंक्ति प्रायः मूल अनुभूति की प्रथम ऊर्मि होती हैं, किन्तु भाव, अनुभूति कल्पना और उनके सहगामी मनोवेगों के साथ कवि नूतन चरणो की सृष्टि करता जाता है और उसका भाव-प्रवाह भाव दशा के उतार-चढाव के समानान्तर तद्रूपता लिये हुये काव्य धारा प्रवाहित करता जाता है। अतः काव्य मे भाव दशा का यह उतार-चढाव, कवि की आन्तरिक भाव दशा का मूर्त प्रतीक माना जा सकता है।

(८) अनुभूति की संतुलित पूर्णाभिव्यक्ति पर गीत का अंत—अनुभूति की भाव-दशा शब्दयोग द्वारा काव्य सृष्टि करती है। कवि भाव-दशा मे जब तक रहता है, तभी तक वह भावों के उतार चढाव को शब्दों की कडियो और छन्दो की लडियों में बांधता रहता है। गीत गाता या लिखता चला जाता है। भाव जब शब्द, अर्थ, छन्द, स्वर, ताल, लय, गति और रसानुभूति को पूर्णतः क्रम से अभिव्यक्त कर देते हैं, तब गीत का अंत हो जाता है। अतः गीति-सृष्टि की प्रक्रिया मे भावोद्रेक के बाद भावो का निरंतर ह्रास नही, क्रमिक उतार चढाव चलता रहता है और अनुभूति तथा अभिव्यक्ति का आद्यान्त संतुलन होने के कारण से भाव दशा निरंतर विकसित होती रही है। भाव-दशा की पूर्णाभिव्यक्ति पर गीतात्मक पूर्णाभिव्यक्ति भी अपने आप हो जाती है।

मीरा के प्रत्येक पद मे गीति सृष्टि की ये आठो प्रक्रियायें सर्वत्र पाई जाती है। अतः मीरा का कोई सा भी पद इन कसौटियों पर कसा जा सकता है।

मीरां की गीति-शैली की विशेषताएँ

मीरा की गीति शैली मे वैयक्तिकता, कल्पनाशीलता, मार्मिकता, भावात्मकता, संक्षिप्तता, संगीतात्मकता, सरसता, प्रभावोत्पादकता, व्यापकता और अपने शाश्वत अस्तित्व की अस्मिता सुरक्षित रखने की क्षमता पाई जाती है। इन विशेषताओ के अतिरिक्त मीरा के प्रगीतों मे अधोलिखित वैशिष्टय पाये जाते हैं, जिनका मीरा की शैली स सीधा सम्बन्ध है :—

मीरा के प्रगीतों का वैशिष्ट्य

(१) अकाट्य सत्योद्गारों की अटूट शृंखला—मीरा ने पति के रूप मे जिस 'गिरधर नागर' का वरण किया था, उसके प्रति नारी होने के कारण उन्होने अपने स्वानुभूत अकाट्य सत्योद्गारों की अटूट शृंखला अपने गीतो मे व्यक्त की है। मीरा की अनुभूतियों मे प्रेम तत्व की जो प्रामाणिकता है, वह केवल उनकी अपनी है। माधुर्य भाव के इतर साधक, या राधा और कृष्ण की लीला तथा क्रीडाओ के अन्यान्य गायकों मे मीरा का सा नारीत्व सर्वथा अनुपलब्ध है। आरोपित नारीत्व और मूलभूत नारीत्व मे जो अन्तर है, वही अन्य प्रेमी कवियों और मीरा के काव्य मे पाया जाता

है। मीरा के काव्य का एक एक शब्द उनके उद्गारों की सत्यता का प्रमाण देता है जो उनकी मौलिकता है, निजी विशेषता है।

(२) जीवन सत्य और काव्य साधना का अभेदत्व—मीरा के पूर्ववर्ती और समकालीन सभी कवियों का गीतिकाव्य उनके भावों का प्रकाशक है, किन्तु मीरा का काव्य उनके भावों का प्रकाशक ही नहीं किन्तु उनके जीवन का भी प्रकाशक है। मीरा के काव्य में मीरा के जीवन और काव्य की तद्रूपता स्थापित हो गई है और मीरा का सम्पूर्ण व्यक्तित्व काव्यमय बन गया है और उनके सम्पूर्ण काव्य में उनका समस्त व्यक्तित्व घुल मिलकर एकाकार हो गया है। दूसरे शब्दों में मीरा का जीवन ही मीरा का काव्य बनकर अक्षर मूर्त हो गया है। कवि और काव्य का ऐसा एकीकरण अन्यत्र दुर्लभ है। कबीर के आध्यात्मिक दाम्प य सम्बन्ध द्योतक पद या सूरादि के राधा-कृष्ण सम्बन्धी प्रेमपरक काव्य में भी मीरा की सी तल्लीनता और जीवन तथा *काव्य का अभेदत्व ढूंढने पर नहीं मिलता।* अस्तु, *मीरा के काव्य से मीरा के जीवन* का अभेदत्व कुछ इस प्रकार का है कि उनके काव्य को देखने के बाद उनके जीवन का अवशेष कुछ नहीं रहता है। मीरा के पदों में ही उनका जीवन झांकता है, बोलता है।

(३) बौद्धिकता का परिहार—कबीर के अधिकांश पद उपदेशात्मक गीतिकाव्य के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं और उनकी उलटबासियों में अति बौद्धिक क्लिष्टता का चमत्कार दिखाई देता है। सूर के पदों में लीला गायक की इतिवृत्तात्मकता मिलती है, तुलसी के पदों में राम के निर्गुण सगुण रूप का विवेचन और दार्शनिक चिंतन का गाभीर्य झलकता है। साम्प्रदायिकता और दार्शनिकता की खरोंच सभी कवियों के काव्य दर्पण में यत्र तत्र खोजी जा सकती है, किन्तु मीरा के पदों में बौद्धिकता का परिहार हो गया है। उनके सभी पद वैचारिक गीति की अपेक्षा भावप्रवण आत्मिक गीति परम्परा की रचनाएँ हैं, अतः उनमें काव्य कला का सचेष्ट प्रयास नहीं मिलता। तत्वतः दार्शनिकता का बोझ मीरा की साँसों पर नहीं था अतएव उनका सम्पूर्ण काव्य भाव परक, और अनुभूति प्रधान है। उसमें मीरा की प्रेम भावनायें सहज रूप में प्रकटित है।

(४) सरल सुलभ गेयता—मीरा के पद आकार में छोटे, भाव से परिपूर्ण और संगीतात्मक राग रागिनियों में गेय हैं। इसीलिये वे स्त्री और पुरुषों, बच्चों और बूढ़ों, गायकों और संगीतज्ञों से लेकर शिक्षित अशिक्षित सभी में लोकप्रिय हैं। उनमें एक ओर भक्तों के लिये 'भक्तिपूर्ण भजन' बनने की क्षमता है, तो दूसरी ओर सरस गायक और श्रोताओं के लिये संगीत की राग रागिनियों का रस स्रोत प्रवाहित करने की भी अपूर्व सामर्थ्य है।

(५) संगीत तत्व—मीरा के काव्य संगीत हृदय से प्रवाहित हुआ है। अतः उनका संगीत आत्म ध्वनि का द्योतक है। कबीर की तरह उनके पदों का संगीत तत्व

प्रचारक और उपदेशक की वाणी का सहचर नहीं है, न सूरादि अष्टछाप के कवियो की तरह उनका संगीत सम्प्रदाय विशेष की साधना पद्धति का अनिवार्य अंग बनकर हो प्रकट हुआ है और न तुलसी की तरह मीरा का संगीत तत्व शास्त्रीय एवं दार्शनिक मतो का संवाहक ही है। मीरा के काव्य का सगीत तत्व जितना शास्त्रीय है, उतना ही सुगम भी। वस्तुतः उसमे मीरा की आत्मा की ध्वनि ही संगीतमय हो गई है।

(६) प्रेम-साधना के भाव स्तरों का प्रामाणिक अभिव्यंजन—मीरा की भक्ति-भावना प्रेम परक थी, अतः उनका प्रेम एक नारी-हृदय का शालीनता पूर्ण प्रेम है। मीरा के गीतो मे उनकी शाश्वत प्रेम-साधना के भाव-स्तरो का प्रामाणिक अनुभूति-गम्य अभिव्यंजन हुआ है, अतएव मीरा का काव्य प्रामाणिक भाव-भूमि पर प्रेम-साधना के सोपानो और भाव स्तरो का ज्ञापन करता है। यह मीरा के काव्य का एक विशिष्ट गुण है, जो अन्य प्रेमी कवियो को सहज उपलब्धि नहीं है।

(७) मन. स्थित की एकनिष्ठता—मीरा के प्रत्येक गीत मे एक विशेष प्रकार की मनः स्थिति (मूड) की परिसमाप्ति पाई जाती है। उनके किसी भी पद मे सामान्यत. दो मनोदशाओ का सघर्षण अथवा दो या अधिक मनः स्थितियो का प्रकाशन नहीं हुआ है। यही कारण है कि मीरा के पदो का गायक, गीत को गाते या सुनते समय एक विशेष मनोदशा में रहता है। भाव जगत की यह तल्लीनता और रस के साधारणीकरण की यह उपलब्धि मीरा की आत्मीयतापूर्ण गीति शैली की विशिष्ट उपलब्धि है।

(८) लोकानुरूप काव्य—वस्तुत मीरा का सम्पूर्ण काव्य व्यक्तिनिष्ठ है, किन्तु उस काव्य के प्राण मे जो प्रेम तत्व है, वह जन-जीवन की सर्वसाधारण सम्पति भी है। इसीलिये मीरा का काव्य लोक गीत और जन-जीवन के बिल्कुल निकट ही नहीं, उनमें समा जाने की भी क्षमता रखता है। मीरा की अनुभूतियां मानवीय अनुभूतियां हैं। देश, काल और भाषा के घेरे उन्हें नही बांध सकते। यही कारण है कि मीरा का काव्य विविध रूपो मे, विविध सम्प्रदायो मे, विविध प्रदेशो की विविध भाषाओं मे निरन्तर गाया जाता रहा है। इसके परिणामस्वरूप मीरा के काव्य में भाव, भाषा और साम्प्रदायिकता के अनेक प्रक्षेप आ घुसे हैं। लोकानुरूप काव्य की विकसनशीलता का जितना व्यापक प्रभाव मीरा के काव्य पर पडा है, उतना अन्य किसी भी भक्त कवि के काव्य पर नहीं पड़ा।

(९) सक्रामकता—मीरा का काव्य सक्रामक काव्य है। राजस्थान, व्रज और गुजरात मे ही नहीं, सारे भारतवर्ष मे मीरा के पद गाये जाते हैं। जो भी व्यक्ति मीरां के पद सुनता है, वह उनकी सरसता मधुरता, अनुभूति की सत्यता और प्रभावोत्पादकता से बच नही सकता। इसीलिये मीरा की आत्मा से नि सृत प्रत्येक पद संक्रामक काव्य है। उसमें प्रातीयता का पुट और क्षेपको की भीड़ के बावजूद भी अपने प्रसार-प्रभाव की ऐसी क्षमता है कि वह अन्तर्देशीय, अन्तर भाषो और सर्वप्रिय काव्य बन

गया है। मीरा के पदो की सी सक्रामकता अन्य कवियो की रचनाओ को सौभाग्य स ही प्राप्त हुई है।

(१०) समर्पित काव्य—मीरा का काव्य किसी सम्प्रदाय या दार्शनिक विचार-धारा का सिक्का लगाकर नही लिखा गया। उसम उपदेशात्मकता या प्रचारक दृष्टि-कोण भी नही है। विशुद्ध तात्त्विक दृष्टि से वह समर्पित काव्य (Dedicated Poetry) है। समर्पित काव्य होना ही मीरा के काव्य की वह विभूति है, जिसने उसे कीर्ति के सर्वोच्च शिखर पर अधिष्ठित कर दिया है।

३ छन्द

मीरा की पदावली भाव विदग्ध मानस की सहज अभिव्यक्ति है, उसमे यत्न-साध्य छन्द विधान या डिंगल रीति ग्रन्थों द्वारा समर्थित छन्दो का रूप नही पाया जाता। डिंगल प्रबन्ध काव्यो मे यो तो मदाक्रान्ता, भुजगप्रयात आदि अनेक संस्कृत छन्दो का प्रयोग हुआ है, किन्तु डिंगल भाषा की प्रकृति छप्पय और दोहा छन्दो के लिये विशेष अनुकूल है। डिंगल काव्य मे वीरत्व की भावना को वाणी दने वाला सबसे अधिक सामर्थ्यवान छन्द छप्पय है, और दूहा दोहा) वीररस और शृगार रस की संक्षिप्त किन्तु मर्म स्पर्शी व्यजना के लिये डिंगल का सबसे अधिक लोकविख्यात, लोक व्यवहृत छंद है। हिन्दी में दोहा छन्द केवल दोहा और दोनो पक्तियो मे चरणो की मात्राओ के क्रम को उलट देने पर सोरठा के रूप मे प्रयुक्त होता है, किन्तु राज-स्थानो मे, विशेषकर डिंगल मे दूहो, सोरठियो दूहो, बडो दूहो और तूंबेरी दूहो-दोहा छन्द के चार रूप पाय जाते हैं। मीरा पदावली मे 'छप्पय' और 'दूहो' छन्द नही हैं। वे पद है, गीत हैं, डिंगल साहित्य के रीति ग्रंथो मे ८५ प्रकार के गीतो के लक्षण सोदाहरण दिये गए हैं, किन्तु उनमे भी त्रबकडों, पालवणी, भापडी, सावझडो, चीटी बन्ध, सुपखडो, त्रकुट गन्ध, और छोटो पाणोर प्रमुख गीत-प्रकार माने गये हैं।

मीरा ने डिंगल की काव्य शैली के ही अनुरूप गीत लिखे हैं, यह नही कहा जा सकता, क्योकि उनकी सम्पूर्ण काव्यधारा तद्युगीन भक्ति आन्दोलन के अनुरूप पदावली में, (जिसे भक्ति-साधना क्षेत्र मे 'भजन' कहा जाता है) व्यक्त हुई है।

मीरा की प्रामाणिक पदावली इस बात का तो प्रमाण अवश्य देती है कि वे सगीत विशेषज्ञा थी, किन्तु उन्होने छन्दशास्त्र, रीतिग्रन्थो या काव्य शास्त्र की आचार्या की हैसियत से पद रचना की है, यह कहना बडे साहस का काम है, क्योंकि मीरा के मूल पदो मे ध्वनि, वक्रोक्ति व्यजना, रीति उक्ति वैचित्र्य, उद्भट काव्य-कौशल, प्रचण्ड पाडित्य, छन्द वैविध्य, गुण और अलङ्कार शब्द विन्यास के बुद्धिवादी शास्त्रीय रूपो की बहुलता नही है। मीरा के पद भीतरिये हैं, अत' उनमे भाव पक्ष प्रबल है, अनुभूति प्रधान है, फलत उनका स्वरूपगत अभिव्यजन कलात्मक पच्चीकारी से सर्वथा अप्रभावित है इसलिए मीरा की पद-योजना मे शब्दो की अभिधा शक्ति अपनी चरम सिद्धि पर पहुँची हुई दिखाई देती है।

मीरा की मूल पदावली में लिखित पदों के साथ न तो उनका छन्द प्रकार ही दिया गया है, न कहीं उनकी राग-रागिनियों का उल्लेख ही किया गया है इसका एकमात्र कारण यह है कि मीरा के पद भाव-प्रवण हैं, और ये सम्पूर्ण पद सहज प्रणीत हैं। भावातिरेक से जीवन के आत्म विभोर क्षणों में मीरा ने अपने आराध्य के प्रति जो कुछ आत्म निवेदन किया और वह जिस किसी भी रूप में मुखरित हुआ, वह उसी रूप में मूर्त हो कर रह गया। मीरा का काव्य नैसर्गिक काव्य था, जो ब्रह्मानन्द से, आत्मानन्द का स्रोत बन फूट पड़ा था, अतः उस नैसर्गिक काव्य मन्दाकिनी को संगीत शास्त्र या रीतिग्रन्थों के बन्धनों में बांधा नहीं जा सकता, वह सर्वथा उन्मुक्त, एक ऐसी सहज प्रवहमान, अम्लान भाव धारा है, जिसमें रागों का स्वर-प्रवाह तो है, पर छन्दों के तट बन्धन बार-बार टूट गये हैं।

श्री परशुरामजी चतुर्वेदी ने 'मीरांबाई की पदावली' में मीरा के नाम से प्रचलित पदों में सार छन्द, सरसी छन्द, विष्णुपद, दोहा छन्द, उपमान छन्द, समान सवैया, शोभन छन्द, ताटक छन्द, कुण्डल छन्द और चान्द्रायण छन्द प्रमुख छन्दों के रूप में मानलिये हैं,[१] किन्तु ये सभी छन्द अपवादों सहित पाये जाते हैं। स्वयं चतुर्वेदी जी ने ही इसे स्वीकारा है कि "पदावली के अन्तर्गत आये हुये पदों को ध्यानपूर्वक देखने से पता चलता है, कि मानों उनकी रचना पिंगल के नियमादि को दृष्टि में रखकर नहीं की गई थी, अथवा उनके विशेष रूप से गाने योग्य होने के कारण पीछे से उनमें संगीत की सुविधाओं के अनुसार परिवर्तन कर दिये गये हैं। पिंगल की दृष्टि से नाप-जोख करने पर पदावली का कदाचित कोई भी पद नियमानुसार बना हुआ प्रतीत नहीं होता। किसी में मात्रायें बढ़ती हैं, तो किसी में घट जाती हैं, और कहीं-कहीं पर नियमादि की उपेक्षा के कारण यह कहना कठिन हो जाता है कि किसी पंक्ति वा किन्हीं पंक्तियों की किन लक्षणों को दृष्टि में रखकर परीक्षा की जाय।"[२]

ऐसी स्थिति में मीरा के मूल पदों को छान्दिक नियमों में बांधना न्याय-संगत नहीं है। मीरा पदावली को छन्दों में वर्गीकृत करना एक बौद्धिक पैंठ तो मानी जा सकती है, किन्तु उसपर आधारित सभी मान्यतायें अपवादात्मक अथवा विवादास्पद ही होंगी। यदि किसी ने चौकोर को वृत्त में या वृत्त को चौकोर में बैठाने का प्रयास किया भी तो उनमें अनुरूपता नहीं होगी। रिक्त स्थान रह ही जायगा। अतः मीरा पदावली की छन्द योजना आरोपित होगी, साथ-साथ दोषपूर्ण भी। इसी लिये हम मीरा की प्रस्तुत प्रामाणिक पदावली को छन्द योजनानुरूप वर्गीकृत करना समीचीन नहीं समझते।

संगीत

मीरा के पद छन्दशास्त्र की अपेक्षा संगीतशास्त्र के दायरे में आते हैं। 'संगीत' शब्द ईश्वर, धर्म, काव्य, भक्ति आदि शब्दों की भांति जितना व्यापक, सर्व-

---

(१) मीरांबाई की पदावली-परशुराम चतुर्वेदी--भूमिका पृष्ठ, ५२ ५५ (२) वही, पृष्ठ ५२।

प्रयुक्त और सुलभ है, उसका प्राणतत्व उतना ही सूक्ष्म, अव्यक्त और गहन है। इसी-लिए 'संगीत' या 'काव्य' जैसे शब्द को परिभाषा की बाँहों में बांधना यदि असंभव नहीं तो दुरूह अवश्य है। मीरा का काव्य उनकी अनुभूति सम्पृक्त आत्मा की संगीतात्मक अभिव्यक्ति है। रस उसकी आत्मा तथा शब्द विधान शरीर है। सुर, ताल, लय गति से आपूर्ण संगीत मीरा के काव्य की शिराओं में प्रवहमान रक्त है, जो उसकी जीवनी शक्ति और सामर्थ्य का निदर्शक है। मीरा पदावली का भावसौंदर्य, उसका लावण्य और अलंकार विधान उसका सौन्दर्य प्रसाधन है।

यद्यपि काव्य रूप सम्बन्धी हमारी उक्त मान्यता भी रूपकात्मक है, पर यह परिभाषा नहीं है। हां, इतना अवश्य है कि मीरा के काव्य की स्वर माधुरी का एक प्रधान उपकरण संगीत है। मीरा के श्वसुरकुल में स्वनामधन्य महाराणा कुंभा एक महान संगीतप्रेमी गायक, और वीणावादक थे। उन्होंने संगीत पर 'संगीतराज' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। निधुवन के स्वामी हरिदास, तानसेन, बैजूबावरा, अष्टछाप के कवि, निर्गुणियां संत तथा इतर अनेक कृष्णोपासक भक्त मीरा के युग में संगीत-साधना में निमग्न थे। मन्दिरों से लेकर राजदरबारों तक संगीत का बोलबाला था। उधर लोकगीतों की अनादि परम्परा में लोकसंगीत घर-घर में विद्यमान था, इस तरह से मीरा के समय में गिरिजन से लेकर 'हरि' जन तक तथा याचक से लेकर सम्राट तक संगीत की लोकप्रियता विद्यमान थी।

समसामयिक सांगीतिक परिवेश और मीरां

मीरा का युग गीतिकाव्य धारा से परिप्लावित था। उस युग में अष्टछाप की वीणा के आठों तार झंकृत हो चुके थे, सन्तों और नाथपंथियों में 'शब्द' और 'गीत' प्रचलित थे। निर्गुण भाव-धारा के ज्ञानमार्गी कबीर, रैदास आदि सन्तों की पदावली लोकाभिमुख हो गई थी। तथा पंजाब में सिख सम्प्रदाय से लेकर दक्षिण के मराठी सन्तों तक तथा पूर्व में महाप्रभु चैतन्य के अनुयायियों से लेकर पश्चिम में गुजराती के नरसी मेहता आदि के पद, संगीत समन्वित रूप में सारे देश में गाये जाते थे। लोकगीत और लोक-संगीत की परम्परा तो सर्वत्र विद्यमान थी ही, विशुद्ध शास्त्रीय स्तर पर भी संगीत का प्रचार हो रहा था और इन दोनों स्तरों के मध्य में भजन और गीतों के रूप में सन्तों के गायन, वादन, नृत्य और भाव प्रदर्शन के समुच्चय द्वारा भक्ति संगीत बड़े विशद पैमाने पर ज्ञान भक्ति और प्रेम का प्रचार कर रहा था। मीरा का संगीत इसी व्यापक परिवेश में एक मधुर, मोहक स्वरलहरी बनकर गूँजा।

मीरा का संगीत समुच्चय

मीरा पदावली के अन्तराल में प्रवाहित संगीत समुच्चय का स्वरूप भी युगानुरूप गायन, वादन, नृत्य और भाव प्रदर्शन समन्वित है। यथा :—

गायन—माईम्हांगोन्दि गुणगाणा। (डाकोर की प्रति पद क्रमांक ६१)

---

(१) मीराबाई—डॉ० श्रीकृष्ण लाल, पृष्ठ १६५-१६६।

वाद और नृत्य—ताड पखावजा मिरदग वाजा, साधा आगे णाचा।

(डाकोर की प्रति-पद-४८),

पग बाघ घुघर्‌या णाच्यारी। (डाकोर की प्रति पद ४७),

भाव प्रदर्शन—'भाव' शब्द अनेकार्थी है। उसके भी कुछ प्रमुख संकेत और रूप मीरा-पदावली मे पाये जाते हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(अ) दाम्पत्य भाव—मीरा की भक्ति-भावना मधुर रस से परिपूर्ण है, जिसका मूल उत्स दाम्पत्य भाव है। मीरा ने कृष्ण का स्मरण दाम्पत्य भाव से ही किया है। यथा—

भुवनपति थे घरि आज्या जी। (डाकोर की प्रति पद क्रमाक २३)

(आ) प्रेम भाव—मीरा की भक्ति प्रेममूला थी, अत उसमे प्रेम भाव प्रधान है। प्रेम भाव के अन्तर्गत ही विरह और मिलन भी चित्रित हैं—

"म्हारा री गिरधर गोपाड दूसरा णा कूया" जैसी उक्तियो मे मीरा कृष्ण प्रेम के प्रमाण देखे जा सकते हैं।'

(इ) विरह भाव—मीरा का अधिकाश काव्य इसी भाव से अनुप्राणित है। देखिये-डाकोर की प्रति के पद क्रमाक ६, ११, १६, १७, १८, १६, २०, २१, २४, २६, आदि।

(ई) मिलन भाव—मीरा के काव्य मे मिलन भाव के क्षण बहुत कम हैं, और जो है, वे अत्यन्त विदग्ध मानस के चित्र हैं। देखिये—डाकोर की प्रति-पद क्रमाक ४४, ४५, ४६, ४७, ५७, ५६, आदि।

(उ) मनोभाव—मीरा के काव्य मे उनके मनोभाव बडे मार्मिक ढग से व्यक्त हुये हैं। यथा—

चाडा मण वा जमणा-का तीर। (डाकोर की प्रति पद क्रमाक ७)

या आली म्हाणे लागा बृन्दावण णीका। (वही, पद क्रमाक ८)

(ऊ) अनुभाव और सचारी भाव—रस निरूपण करते समय अनुभाव और सचारी भावों का विशद विवेचन अपने आप होता है। शारीरिक चेष्टायें इनकी ही प्रतिक्रियाएँ हैं। यथा—पचरंग चोडा पहेरया सखि म्हा झुरमट खेलण जाती। (डाकोर की प्रति पद क्रमाक १०), खाण पाण म्हारे णेक णा भावा नेणा खुडा कपाट। (वही पद क्रमाक १८), थें बिछड्‌या म्हा कड्पा प्रभुजी, म्हारो गयो सब चेण। (वही पद क्रमाक २०) आदि मीरा के अनुभाव और सचारी भावो के सुन्दर प्रमाण हैं। इस तरह से गायन, वादन, नृत्य और भाव प्रदर्शन से सयुक्त मीरा की प्रामाणिक पदावली गीतिकाव्य का शृंगार है। मीरा की वैयक्तिकता तथा अनुभूति और अभिव्यक्ति की सहजता से उसमें सौन्दर्य की तरलता और अधिक आ गई है।

मीरा पदावली की राग-रागिनियाँ

मीरा ने अपने मूल पद किन-किन रागो में गाये थे, इसका उल्लेख डाकोर और काशी की प्रतियों मे नहीं है, फिर भी मीरा के पद झिझोटी, छायानट, गूजरी, ललित,

प्रयुक्त और सुलभ है, उसका प्राणतत्व उतना ही सूक्ष्म, अव्यक्त और गहन है। इसीलिए 'संगीत' या 'काव्य' जैसे शब्द को परिभाषा की बाँहों में बाँधना यदि असंभव नहीं तो दुरूह अवश्य है। मीरा का काव्य उनकी अनुभूति सम्पृक्त आत्मा की संगीतात्मक अभिव्यक्ति है। रस उसकी आत्मा तथा शब्द विधान शरीर है। सुर, ताल, लय गति से आपूर्ण संगीत मीरा के काव्य की शिराओं में प्रवहमान रक्त है, जो उसकी जीवनी शक्ति और सामर्थ्य का निदर्शक है। मीरा पदावली का भावसौंदर्य, उसका लावण्य और अलंकार विधान उसका सौन्दर्य प्रसाधन है।

यद्यपि काव्य रूप सम्बन्धी हमारी उक्त मान्यता भी रूपकात्मक है, पर यह परिभाषा नहीं है। हाँ, इतना अवश्य है कि मीरा के काव्य को स्वर माधुरी का एक प्रधान उपकरण संगीत है। मीरा के श्वसुरकुल में स्वनामधन्य महाराणा कुंभा एक महान संगीतप्रेमी गायक, और वीणावादक थे। उन्होंने संगीत पर 'संगीतराज' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। त्रिभुवन के स्वामी हरिदास, तानसेन, बैजूबावरा, अष्टछाप के कवि, निर्गुणियाँ संत तथा इतर अनेक कृष्णोपासक भक्त मीरा के युग में संगीत-साधना में निमग्न थे। मन्दिरों से लेकर राजदरबारों तक संगीत का बोलबाला था। उधर लोकगीतों की अनादि परम्परा में लोकसंगीत घर-घर में विद्यमान था, इस तरह से मीरा के समय में गिरिजन से लेकर 'हरि' जन तक तथा याचक से लेकर सम्राट तक संगीत की लोकप्रियता विद्यमान थी।

समसामयिक सांगीतिक परिवेश और मीरां

मीरा का युग गीतिकाव्य धारा से परिप्लावित था। उस युग में अष्टछाप की वीणा के आठों तार झंकृत हो चुके थे, सन्तों और नाथपंथियों में 'शब्द' और 'गीत' प्रचलित थे। निर्गुण भाव-धारा के ज्ञानमार्गी कबीर, रैदास आदि सन्तों की पदावली लोकाभिमुख हो गई थी। तथा पंजाब में सिख सम्प्रदाय से लेकर दक्षिण के मराठी सन्तों तक तथा पूर्व में महाप्रभु चैतन्य के अनुयायियों से लेकर पश्चिम में गुजराती के नरसी मेहता आदि के पद, संगीत समन्वित रूप में सारे देश में गाये जाते थे। लोकगीत और लोक-संगीत की परम्परा तो सर्वत्र विद्यमान थी ही, विशुद्ध शास्त्रीय स्तर पर भी संगीत का प्रचार हो रहा था और इन दोनों स्तरों के मध्य में भजन और गीतों के रूप में सन्तों के गायन, वादन, नृत्य और भाव प्रदर्शन के समुच्चय द्वारा भक्ति-संगीत बड़े विशद पैमाने पर ज्ञान भक्ति और प्रेम का प्रचार कर रहा था। मीरा का संगीत इसी व्यापक परिवेश में एक मधुर, मोहक स्वरलहरी बनकर गूँजा।

मीरा का संगीत समुच्चय

मीरा पदावली के अन्तराल में प्रवाहित संगीत समुच्चय का स्वरूप भी युगानुरूप गायन, वादन, नृत्य और भाव प्रदर्शन समन्वित है। यथा :—

गायन—माईम्हागोविन्द गुणगाणा। (डाकोर की प्रति पद क्रमांक ६१)[1]

---

(१) मीराबाई—डॉ० श्रीकृष्ण लाल, पृष्ठ १६५-१६६।

वाद और नृत्य—ताड पखावजा मिरदंग वाजा, साधा आगे णाचा ।

(डाकोर की प्रति-पद-४८),

पग बाघ घुघर्‌या णाच्यारी । (डाकोर की प्रति पद-४७),

भाव प्रदर्शन—'भाव' शब्द अनेकार्थी है। उसके भी कुछ प्रमुख संकेत और रूप मीरा-पदावली में पाये जाते हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(अ) दाम्पत्य भाव—मीरां की भक्ति-भावना मधुर रस से परिपूर्ण है, जिसका मूल उत्स दाम्पत्य भाव है। मीरा ने कृष्ण का स्मरण दाम्पत्य भाव से ही किया है। यथा—

भुवनपति थे घरि आज्या जी। (डाकोर की प्रति पद क्रमांक २३)

(आ) प्रेम भाव—मीरा की भक्ति प्रेममूला थी, अतः उसमें प्रेम भाव प्रधान है। प्रेम भाव के अन्तर्गत ही विरह और मिलन भी चित्रित हैं—

"म्हारा री गिरधर गोपाड दूसरा णा कूया" जैसी उक्तियों में मीरा कृष्ण प्रेम के प्रमाण देखे जा सकते हैं।'

(इ) विरह भाव—मीरा का अधिकांश काव्य इसी भाव से अनुप्राणित है। देखिये-डाकोर की प्रति के पद क्रमांक ६, ११, १६, १७, १८, १६, २०, २१, २४, २६, आदि।

(ई) मिलन भाव—मीरा के काव्य में मिलन भाव के स्थल बहुत कम हैं, और जो है, वे अत्यन्त विदग्ध मानस के चित्र हैं। देखिये—डाकोर की प्रति-पद क्रमांक ४४, ४५, ४६, ४७, ५७, ५६, आदि।

(उ) मनोभाव—मीरा के काव्य में उनके मनोभाव बड़े मार्मिक ढंग से व्यक्त हुये हैं। यथा—

चाडा मण वा जमणा-का तीर। (डाकोर की प्रति-पद क्रमांक [illegible])

या आली म्हाणे लागा वृन्दावण णीका। (वही, पद-क्रमांक [illegible])

(ऊ) अनुभाव और संचारी भाव—रस निरूपण करते समय [illegible] संचारी भावों का विशद विवेचन अपने आप होता है। शारीरिक [illegible] प्रतिक्रियाएँ हैं। यथा—पचरंग चोला पहेरया सखि म्हा [illegible] (डाकोर की प्रति पद क्रमाक १०), साण पाण म्हारे [illegible] कपाट। (वही पद क्रमाक १८), थें बिछड़्या म्हा कम्पां [illegible] चेण। (वही पद क्रमाक २०) आदि मीरा के अनुभाव और [illegible] प्रमाण हैं। इस तरह से गायन, वादन, नृत्य और भाव [illegible] प्रामाणिक पदावली गीतिकाव्य का शृंगार है। मीरा की [illegible] और अभिव्यक्ति की सहजता से उसमें सौन्दर्य की [illegible] —२

मीरां पदावली की राग-रागिनियां

मीरां ने अपने मूल पद किन-किन रागों में [illegible] काशी की प्रतियों में नहीं है, फिर भी मीरा के पद [illegible]

त्रिवेनी, धानो, सूहा, सारंग, दरबारी, सोरठ, हमीर, माड, तिलंग, कामोद, टोडी, बिलावल, पीलू, पहाडी, जोगिया, देस, विहाग, सोहनी, सिंध भैरवी, भैरवी, सावन आनन्द भैरो, सुख सोरठ प्रभाती, कलिगडा, देवगन्धार, पटमजरी, मलार, मारू, काफी, विहागरा, कजरी, कल्याण, धनाश्री, मालकोस जौनपुरी, पीलू बरवा, रामकली श्याम कल्याण, होली, शुद्ध सारग, कान्हरा, अलैया, परज, लावनी, भोग; सोरठ तिताला, प्रभात, झिझोटी (एक ताल), निलावरी, आसावरी, वागेश्वरी, भीम-पलासी, पूरिया कल्याण आदि राग-रागिनियो में गाये जाते है।

संक्षेप में मीरा का प्रत्येक पद सगीत साधना के लिए शाश्वत वरदान है, भजन कीर्तन परम्परा की अमूल्य निधि है, भगवद्भक्ति के लिए अक्षय धरोहर है! यही मीरा पदावली का अलौकिक संगीतात्मक वैशिष्ट्य है।

४ रस

सरसता मीरा के काव्य का प्रधान गुण है, अत. रस मीरा के प्रत्येक पद में नहीं अक्षर-अक्षर मे, स्वर और व्यजन में, रोम रोम में समाया हुआ है। इस रस—तत्व का स्वरूप निम्नानुसार है :—

मीरा—पदावली में रस और रसानुभूति

मीरा का काव्य, प्रेम, सौन्दर्य, संयोग और वियोग की भावनाओ से आद्यन्त आप्लावित है। उसमे आराध्य का नख-शिख वर्णन तथा वर्णनात्मक बाह्य जगत का विवरण कम, और अनुभूति चित्रण प्रधान रूप मे पाया जाता है। मीरा के कीर्तन प्रधान, राग रागिनी समृद्ध पदो मे 'नारीत्व' के अकृत्रिम विरह, मिलन और प्रेमोद्गारो की प्रचुरता पाई जाती है। उनमे बौद्धिक कलाबाजी और काल्पनिक उडान की छाया तक नहीं दीखतीं, न आलंकारियो की सी अलकारप्रियता ही कहीं दृग्गोचर होती है। उनके सभी पद स्वभावोक्ति की चरम सीमा को छूने से जान पडते हैं, अतः अलकार प्रिय पंडितो उक्ति, "कवि करोति काव्यानि, स्वाद जानन्ति पडिताः" मीरा के काव्य की कसौटी नहीं हो सकती। उसमे तो हृदय का हृदय से व्यापार प्रधान है। 'काव्यं ग्राह्यं अलकारात्। सौन्दर्यमलंकार।' काव्य के शारीरिक सौंदर्य का समर्थक है और उससे वामन का प्रयोजन काव्य के मूर्तरूप—शब्द विन्यास-से है किन्तु इस बाह्य के भीतर जो आन्तरिक प्राण प्रतिष्ठा का सौन्दर्य है, अभिव्यंजन कौशल का जादू है, उसकी घोषणा कुन्तक ने 'वक्रोक्ति' काव्य जीवितम्' के रूप मे की थी। रसानुभूति के क्षेत्र में शाब्दिक-व्यजना से ध्वनि व्यंजना की ओर किया जाने वाला यह महत्वपूर्ण सकेत है। यहीं से काव्यानन्द विद्वद्वर पंडितों से सहृदयों की ओर मुडने लगा था फलत. "वाक्यं रसात्मकंकाव्यम्" कहकर साहित्यदर्पणकार कविराजराज विश्वनाथ ने रस को ही काव्य की आत्मा के रूप मे प्रतिष्ठित किया था। यही 'रस' मीरा के काव्य की आत्मा मे लबालब भरा हुआ है। मीरा के काव्य की कसौटी यही "रस-तत्व" है, उसका मूल उत्स, स्वरूप और प्रभाव दो दिशाओं मे, दो रूपों में पाया जाता है।

मीरां—पदावली के रस-तत्व का विभाजन

मीरा पदावली रस तत्व दो भागों मे विभक्त किया जा सकता है। एक रूप होते हुये भी रसास्वादन की दृष्टि से उसे 'द्वैत' रूप देना समीक्षा के लिये आवश्यक है। इसका प्रमुख कारण यह है कि मीरा की पदावली, साहित्य-कृति है और उसमें साहित्य की दृष्टि से शृङ्गार और शान्त रस विद्यमान हैं, फिर भक्ति की दृष्टि से यदि उसका विवेचन हो तो उसमे 'मधुररस' का स्वरूप उपलब्ध होता है। मीरा पदावली के रसतत्व का यह विभाजन 'सहृदयों' 'भक्तों' के अनुरूप किया गया गया है। इससे हमारा प्रयोजन 'रसिकों' के दृष्टिकोण से है, सर्जक की मनः स्थिति या सर्जना के ध्येय से नहीं।

शृङ्गार रस—मीरा पदावली मे शृंगार रस, सयोग और विप्रलंभ दोनों ही रूपो मे उपलब्ध है। इसका स्थायी भाव रति है। यह रति लौकिक नायक-नायिका की रति नही, परम ब्रह्म कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति राधा के अवतार मीरा की भवद्विषयक आध्यात्म रति है। मीरा के प्रियतम् रूप, लावण्य, और माधुर्य सम्पन्न, हास विलास परिपूर्ण सार्वभौम प्रेमालम्बन श्रीकृष्ण हैं जिनका मीरा से जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध था। जिसे देखने से ऐसा मालूम पड़ता है कि मीरा के पदो की रसानुभूति में कृष्ण का ऐतिहासिक और पौराणिक अस्तित्व लुप्त प्राय हो गया है और वे प्रेम की परिपूर्णता तथा प्रेममूलाभक्ति की एक निष्ठता के प्रतीक बन गये हैं। वही कृष्ण मीरा के अन्तरतम मे प्रविष्ट हो अन्यतम बन गये हैं। मीरा की प्रेम-साधना की यही दिव्य चैतन्य स्थिति है। फलस्वरूप मीरा की मूल पदावली मे संयोग शृंगार और विप्रलंभ शृङ्गार के प्रबल स्रोत प्रवहमान हैं। रसानुभूति और साधारणीकरण की दशा से मीरा के प्रत्येक पद मे रस निष्पत्ति का सहज क्रमिक विकास पाया जाता है।

संयोग शृङ्गार

संयोग शृंगार का स्थायी भाव 'रति' है। मीरा का कृष्ण विषयक दाम्पत्य सम्बन्ध इसी अलौकिक भगवद-रति पर आधारित है। इसके आलंबन हैं—भगवान कृष्ण। उनके सम्बन्ध मे मीरा ने जिस संयोग शृंगार का वर्णन किया है, उसका एक दृष्टान्त लीजिये—

> म्हां मोहण रो रूप लुभाणी।
> सुंदर बदण कमड़ दड़ लोचण, बाँका चितवण, नैण समाणी।
> जमणा किणारे कान्हा धेणु चरावां, बंसी बजावां मीठा बाणी।
> तण मण धण गिरधर पर वारां, चरण कंवड़ मीरां बिलमाणी।

डाकोर की प्रति, पद—३

उक्त पद मे आलम्बन हैं 'मोहण' और उनका "रूप" जिससे मीरा के मन में कृष्ण विषयक रति का स्थायी भाव उद्दीप्त होता है। कृष्ण के "सुंदर बदण, कमड़

२५, २८, ३१, ३४, ४३, ५८, ६४, ६७ (क+ख), और काशी की प्रति के पद क्रमांक ७१, ८४, ६८, और १०१ में शान्त रस के प्रमाण पाये जाते हैं।

मधुर रस

मधुर रस की अभिव्यंजना में ही मीरा पदावली के प्राण हैं। उनका यह मधुर रस, शृंगार रस से मात्र, विभाव, अनुभावादि में समान होते हुये भी इन्द्रियातीत आध्यात्मिक अनुभूति है, जो पार्थिव जगत से परे अपार्थिव आध्यात्मिक लोक का प्रसाद है। इस विषय में डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत दृष्टव्य है। उन्होंने लिखा है कि; "शृंगार रस का विषय सांसारिक होने से, जड़ मूर्ति रूप है, किन्तु मधुर रस का विषय अलौकिक एवं स्वयं भगवान स्वरूप है, अतएव शृंगार रस के स्थायी भाव रति का सम्बन्ध यदि स्थूल या लिंग शरीर से है, तो मधुर रस एक प्रकार से स्वयं आत्मा का ही धर्म है।"[1] मीरा के सम्पूर्ण काव्य में यही मधुर रस ओत-प्रोत है।

५. अलंकार

मीरा के सभी पद उनके विमल हृदय के उच्छ्वास, हर्षोल्लास और करुण क्रन्दन की स्वाभाविक अभिव्यक्तियाँ हैं, अतः मनोवेगों के उद्वेलन, भावों की प्रचुरता और आत्मनिष्ठता के कारण वे सर्वथा आडम्बरहीन हैं। सहज शब्द-विन्यास और सांगीतिक मधुरिमा के कारण वे इतने सरस और हृदयहारी बन गए हैं कि अलंकृत काव्य के सारे उपादान उनकी चरणरज छूकर धन्य हो सकते हैं। काव्य शास्त्रीय सम्प्रदायों का तथाकथित वैभव वहाँ फीका पड़ जाता है। मीरा, मीरा का व्यक्तित्व और वक्तव्य इसका प्रधान कारण है। मीरा के काव्य में लौकिक नायक नायिका का शृंगार चित्रण या विरह मिलन वर्णन नहीं है, जिसे 'अन्य पुरुष' के लौकिक प्रेम-भाव के रूप में चित्रित करने के लिये कला की करामाती कूचों से असत्कृत काव्य रूपों का 'मेकअप' किया जाता। या फिर चुन-चुन कर उपमा, उत्प्रेक्षा, वक्रोक्ति, अर्थान्तरन्यास, श्लेष आदि अलंकारों द्वारा दूर की कौड़ी लाई जाती और फिर उससे काव्य को रूप सज्जा की जाती। मीरा का प्रेम, विरह, मिलन, सुख, दुख, हर्ष-शोक, अश्रु-क्रन्दन सभी अलौकिक है, आध्यात्मिक है, वनितातुल्य आत्मा का अपने 'प्रियतम' के प्रति आन्तरिक लगाव और उसकी सहज अभिव्यंजना है, वेदना की उफनाती सरिता का प्रेम महार्णव की ओर तीव्रगामी समर्पण है, आध्यात्मिक अनुभूति का दिव्य उत्स है, सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की मूर्त उपलब्धि है, अन्तर का 'आन्तरिक' से अन्तर मिटाने का निरन्तर प्रयास है, जो अपने आप में सुन्दर है। वह रूप-गुण प्रेम का ज्वलन्त प्रतीक है, स्वयं प्रमाण है, स्वयं सिद्ध है। इसीलिये मीरा का भाव-भीना काव्य स्वयं सुन्दर है। जो असुन्दर हो, उसे सौन्दर्य प्रसाधनों की आवश्यकता है, किन्तु जो स्वयं सुन्दर हो उसे अलंकारों की आवश्यकता नहीं है। हृदय और हृदय के बीच जो अलंकार मिलन में बाधक हो,

---

(१) मधुर रस की साधना—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, कल्याण साधनांक, पृष्ठ १७५।

उस अलकार का न होना ही श्रेयस्कर है। इसीलिये मीरा के काव्य और उनके 'प्रियतम' के बीच स्वभावोक्ति की सहजता के कारण भाषागत अलकारो के आधिक्य का अभाव है। मीरा के मूल पदो में बहुत ही कम किन्तु स्वाभाविक और भावपूर्ण अलकार आये हैं, जिनका स्वरूप इस प्रकार है—

(क) उपमा[१]—"पाणा ज्यूं पीडी पडी री, लोग कह्या पिंड बाय।"

—काशी की प्रति, पद क्रमांक ७६।

(ख) रूपक[२]—"असवा जड सीच-सीच प्रेम बेड बूया।"

—डाकोर की प्रति, पद १।

"भो सागर मझधारा बूड्या, थारी सरण लह्या।"

—डाकोर की प्रति, पद २२।

(ग) उत्प्रेक्षा[३]—"कुडल झडका कपोल अडका लहराई।
मीणा तज सरवर ज्यो मकर मिलण धाई।"

—काशी की प्रति, पद ८५।

(घ) अत्युक्ति[४]—भया छमाशी रेण।

—डाकोर की प्रति, पद २०

गणता गणता घिश गया रेखा आगरिया री शारी।

—काशी की प्रति, पद १०२।

(ङ) अर्थान्तरन्यास[५]—

हेरी म्हां तो दरद दिवाणी म्हारा दरद णा जाण्या कोय।
घायड री गत घायड जाण्या हिवडो अगण सजोय।
जौहर कीमत जौहरा जाण्या, क्या जाण्या जिण खोय।

—डाकोर की प्रति, पद १६

(च) विभावना[६]—

जड विणा क्वड चद विणा रजणी, थें बिणा जोवण जाय।

—काशी की प्रति, पद ९१।

---

(१) साधर्म्यमुपमा भेदे। काव्य प्रकाश मम्मट। (२) प्रस्तुतेऽप्रस्तुता रोपो रूपक निरपह्नवे। उपमैव तिरोभूत भेदा रूपक मुच्यते। (३) भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना। साहित्य-दर्पण-कविराज विश्वनाथ। (४) उपमेय निर्गीय उपमानेन तस्य भेद कथनम् अतिशयोक्ति। (५) सामान्येन विशेषस्य विशेषेण सामान्यस्य वा यत् समर्थन तदर्थान्तरन्यास। रस गगाधर-पडितराज जगन्नाथ। (६) विभावना विना हेतु कार्योत्पत्तिरुच्यते।—साहित्य दर्पण-कविराज विश्वनाथ।

(छ) वीप्सा[1]—अंग खीण व्याकुड भया मुख, पिव पिव बाणी हो।
—डाकोर की प्रति, पद-३६।

(ज) उदाहरण[2]—ज्यूं चातक घण कूं रटा मछरी ज्यूं पाणी हो।
—डाकोर की प्रति, पद ३६।

(झ) वृत्यनुप्रास[3]—चचड चित्त चढया णा चाडा, बाँध्या प्रेम जजीर।
—डाकोर की प्रति, पद ६।

(ञ) श्लेष[4]—पचरग चोडा पहेरया सखि म्हा झरमट खेलण जाती।
वा झरमटमा मिड्या सांवरो देख्या तण मण राती।
—डाकोर की प्रति, पद १०

(ट) दृष्टान्त[5]—पिया थारे णाम डुभाणी जो।
णाम डेता तिरता सुण्या जग पाहण पाणी जी।
गणका कीर पढावता, वैकुण्ठ बसाणी जी।
—डाकोर की प्रति, पद २५।

(ठ) स्वभावोक्ति[6]—रोवता रोवतां डोडता, सब रैंण बिहावां जी।
भूख गया निंदरा गया, पापी जीव णा जावा जी।
—डाकोर की प्रति, पद २३।

मीरा पदावली में प्राप्त अलकारो का शास्त्रीय वर्गीकरण

मीरा पदावली मे प्राप्त उक्त अलकारो को शास्त्रीय दृष्टि से दो वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है—

शब्दालकार—अनुप्रास, वीप्सा, श्लेष।

अर्थालकार—उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, स्वभावोक्ति, विभावना, अर्थान्तरन्यास, उदाहरण, अत्युक्ति।

---

(१) भाव विशेष को अधिक प्रभावोत्पादक बनाने के लिये किसी शब्द को दुहराना वीप्सा' है। रुय्यक और मखक के अलकार सर्वस्व, केशव मिश्र के अलकार शेखर, मम्मट के काव्य प्रकाश दण्डी के काव्यादर्श, भामह के काव्यालकार वामन के काव्यालकार सूत्रवृत्ति अप्पय दीक्षित के कुवलयानद, जयदेव के चन्द्रालोक, आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक भरतमुनि के नाट्यशास्त्र, पडितराज जगन्नाथ के रस गगाधर और विश्वनाथ कविराज के साहित्य दपण में वीप्सा अलकार का उल्लेख नहीं है। डॉ० 'रसाल' के अलकार पीयूष और लाला भगवानद न की अलकार मजूषा में 'वीप्सा' का विवेचन है। (२) पहले सामान्य बात कहकर विशेष रूप में उदाहरण देने में उदाहरण अलकार होता है। काव्य कल्पद्रुम-कन्हैया लाल पोद्दार। (३) सख्या नियमे पूर्वं छेकानुप्रास। अन्यथा तु वृत्यनुप्रास। अलकार सर्वस्व रुय्यक। (४) श्लिष्टै पदैरनेकार्थाभिधाने श्लष इष्यते। साहित्य दर्पण विश्वनाथ। (५) दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम।—साहित्य दपण विश्वनाथ। (६) सूक्ष्म वस्तु स्वभावस्य यथावद् वर्णन स्वभावोक्ति।—अलंकार सर्वस्व रुय्यक।

६. मुहावरें और कहावतें

मीरा-पदावली मे मुहावरा, कहावतो और लोकोक्तियों के निम्नलिखित दृष्टान्त पाये जाते हैं।

मुहावरे—नैण बिछयाशु, नैण समाणी, हियडे बसता, णेणा मुरझावा, दर दर डोल्या, कठ सार्या, बोल शुणावा, फटा हिया, विणता दीश्यो काण, फाटया री म्हा च्हातो, सीश चढ़ाय।

कहावतें—दधे मथ घृत काढ लया डार दया छूया। काठ ज्यूं धुण खाये, हिवडो अगण संजोय, जीवणांदिन च्यार, बिरछ रा जो पात टूटया लग्या णा फिर डार दाघ्या [ऊसर] लूण डगावा, आदि।

मीरा की काव्य-कला

मीरा की काव्य कला पर विचार करते समय हमे यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखना चाहिये कि कवि कर्म की उपासना मीरा का ध्येय नही था, इसीलिय वे ध्वनि सम्प्रदाय, रस सम्प्रदाय आदि काव्यांग समर्थक विविध सम्प्रदायों की परिधि से सवथा बाहर और पूर्ण स्वतन्त्र रहकर सहज भाव से भजन कीर्तन करती थी। उनकी काव्यकला के चार तथ्य विचार सापेक्ष हैं —

मीरा के गीतिकाव्य के आधार

मीरा की काव्य कला मनुष्येतर बाह्य सृष्टि या सचराचर के स्वरूप, गुण-गायन पर आधारित नहीं है बल्कि वह मीरा की व्यक्तिनिष्ठ आन्तरिक अनुभूतियो पर आधारित व प्रेम योग की उच्चतम भाव-भूमि पर अधिष्ठित है। उनके काव्य की पृष्ठभूमि मे नारी भक्त-आत्मा की शुद्ध अनुभूतियो का सचार पाया जाता है, जिसके फलस्वरूप उनकी काव्य कला मे जीवन और काव्य का विशुद्ध अनन्य रागात्मक सम्बन्ध मुखर हुआ है। वैष्णव भक्तो की भांति आराध्य का रूप गुण, विनय, लीला, भगवद्भक्तो की कथा, भक्तो का दैन्य आदि सभी वर्ण्य विषय मीरा की काव्य कला के आधार हैं, किन्तु उसमे अन्य अन्य कृष्ण भक्तो की तरह 'आरोपित नारीत्व' का 'काल्पनिक' आधार नहीं है, अपितु आत्मा के सनातन नारीत्व के स्वय सिद्ध पातिव्रत्य धर्म क प्रेरक सुकुमार हृदय की तीव्र अनुभूति, प्रबल सवेग अनियन्त्रित मनोवेग सर्वो परि प्रेम तथा अन्तर्मन्थनजनित सूत विरह भाव की व्यजना पाई जाती है। यही कारण है कि वैयक्तिकता मीरा की काव्य कला का विशिष्ट गुण है, जो उन्हे राधा भाव या गोपी भाव स कृष्णाराधना करने वाले अन्य कवियों से बिल्कुल स्वतन्त्र, उच्चतर और अद्वितीय सम्मान प्रदान करता है। मार्मिक अन्तर्वृत्ति पर आधारित होने स मीरा की काव्य कला सौन्दर्य सर्जना में अपूर्व है। सरस, पुष्ट, प्रामाणिक, आध्यात्मिक पवित्र प्रेम भाव, अलौकिक विरह और निष्कलक भक्ति तत्व पर आधारित मीरा की ग्राहक कल्पना और उनकी सहज, स्वसवेद्य आत्मोदगारो की शृ खला में प्रकट विषा यक कल्पना मे कोई अन्तर नहीं है, मीरा काव्य का आधार न तो रहस्यमय है न

चमत्कारपूर्ण ! वह कृष्ण प्रेम है मधुर भक्ति है, *अनन्य शरणागति है, चिरन्तन प्रेम* की लौकिक जीवन व्यापी विरह दशा है, आध्यात्मिक प्रणय प्रकार है, मीरा का व्यक्तित्व है, मीरा का सर्वस्व है, मीरा भाव है, जो मीरां की ही तरह मूर्त और स्पष्ट है।

उपकरण—साहित्य के क्षेत्र मे भाषा, छन्द और अलंकार काव्य के सामान्य उपकरण हैं। अन्तर्जगत की अमूर्त कल्पना को मूर्त रूप देने के लिये काव्य कला चित्र कला की अनुगामिनी है, फलत. शब्द चित्रो के द्वारा काव्य मे भाव चित्रण किया जाता है और उसमें अनुभूति और कल्पना का रंग भरा जाता है। अनुभूति की अभिव्यंजना के लिये शब्द अनिवार्य उपकरण हैं। मीरा पदावली का समस्त शब्द *विन्यास भावानुकूल है। आडम्बरहीन शब्द योजना के कारण उसमे न तो वक्रोक्ति का* चमत्कार है, न अलंकृत छन्द विधान की रूप सज्जा ही। वहाँ सर्वत्र सहज, सरल, स्वाभाविक शब्दयोजना का भावभीना भाषा-लालित्य पाया जाता है। यह मीरा की काव्य कला का नैसर्गिक अयत्नसाधित उपकरण है।

इस विषय मे श्रीकन्हैयालाल माणिक्लाल मुंशी का मत दृष्टव्य है। उन्होंने लिखा है कि—

Her language is simple, and appealing But passion, grace, delicacy, melody-Miran has all these gifts. Her longing is exquisite, it seizes all hearts, penetrates all souls Her poetic skill possesses the supreme art of being art less [1]

शाब्दिक अलंकारो की दृष्टि से मीरा का काव्य अनलकृत काव्य है, किन्तु भाव वैदग्धपूर्ण कोमल कान्त पदावली के नाद सौष्ठव से उसका सगीत हृदय के साथ साथ आत्मा को भी छू जाता है। इस तरह से सरल भाषा, भावानुगामी शब्द-योजना और आत्मिक रसानुभूति पैदा करने वाला मादक सगीत मीरा की काव्य क । के अन्य उल्लेखनीय उपकरण हैं।

रूप—नारी सुलभ प्रगाढ अनुभूति की मार्मिक व्यजना और आत्मा के वनिता तुल्य ललित कोमल रस से परिपूर्ण मीरा के संतुलित पद भाव और भाषा दोनो रूपों मे स्पष्ट, सरल, मधुर और हृदयहारी है। वे छन्द शास्त्र के रूप विधान से पर, गीति काव्य के कीर्तन प्रधान भजन रूप मे पाये और गाये जाते हैं। उनमें नीरीत्व *की पावन मर्यादा के भीतर आध्यात्म-लोक की प्रेम परक तल्लीनता, विरह जन्य* कातरता और कृष्ण मिलन की उत्कण्ठा मूर्त हुई है, जिसमे नवधा भक्ति के समस्त उपकरणो को ग्रहण कर मीरा ने आत्म निवेदन पूर्ण प्रेम लक्षणा भक्ति का मूल रूप अभिव्यक्त किया है। मीरा के सम्पूर्ण काव्य मे लौकिकता की गन्ध से सर्वथा अस्पृश्य आत्मवृत्ति का आन्तरिक प्रतिबिम्ब पाया जाता है। इसलिये मीरा की काव्य कला के

---

(1) Gujarat and its literature K M Munshi Page 188

पीछे एक मूर्तिमान व्यक्तित्व झलक रहा है, जिसमे गोपी भाव की उच्चतम भाव भूमि और राधा भाव की उच्चतर भाव दशा 'मीरा-भाव' दीप्तिमान होकर दमकता हुआ दिखाई देता है। साहित्य की दृष्टि से मीरां का काव्य भाव पूर्ण, संगीत की दृष्टि से ललित और कला की दृष्टि से नैसर्गिक सौन्दर्य सम्पन्न है। संगीत की दृष्टि से तो उसका रूप तन्मयता का सर्जक है।

प्रभाव—मीरा का काव्य अर्थ प्रेषक ही नहीं, बिम्ब विधायक भी है। उसमे सक्रिय सचेष्ट कलात्मक संप्रेषणीयता की अपेक्षा स्वाभाविक प्रभावोत्पादकता पाई जाती है। मीरा के भाव सौन्दर्य पर भक्ति और सगीत की गहरी छाया है, अतः उनके प्रत्येक पद को अन्तरात्मा मे उनके ही निजी व्यक्ति की प्रतिच्छवि अंकित है। मीरा की स्वानुभूति सार्वभौमिक भक्ति भाव की और उनका प्रगाढ प्रेम मानव हृदय की बडी मूल्यवान संपदा है। उनका आत्मबोध जगत् प्रबोध का कारण है। मीरा की काव्य कला और उसकी लोकप्रियता का एक उल्लेखनीय कारण यह है कि उनके पदों मे भक्ति संगीत और काव्य एकाकार हो गए हैं और उनके व्यक्तित्व और वक्तव्य मे एक ऐसा अद्भुत, अपूर्व अद्वैत भाव आ गया है कि हम निस्सकोच रूप से मीरां को भक्तिकाल की सर्वश्रेष्ठ व्यक्तिनिष्ठ प्रेम गीतो की गायिका कह सकते हैं। आध्यात्मिक भाव भूमि पर नारी हृदय का विमुक्त, वैयक्तिक प्रेम और उसका अनलङ्कृत सहजाभिव्यक्ति मीरा की काव्यकला का विशिष्ट गुण है। इसीलिए वह 'रस काव्य' है और उसमें काव्य, संगीत और भक्ति की सम्मिश्रित रसानुभूति का साधारणीकरण[1] सहजासहजी हो जाता है। अपने स्वरो के आरोहण-अवरोहण से रस-दशा का यह तादात्म्यकारी प्रभाव पैदा करना ही मीरा की काव्य-कला की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है।

———

उपसहार

विश्वव्यापक मधुरोपासना के सन्दर्भ मे मीरा

मीरा का जीवन और काव्य

मीरा का जन्म राजस्थान के रणबांकुरे मेडतिया कुल मे सवत् १५६० के लगभग मेडता राज्यान्तर्गत कुडकी ग्राम मे हुआ। उनके पिता का नाम राव रत्नसिंह, माता का नाम कुसुमकुँअर पितृव्य का नाम राव दूदाजी था। शैशव मे मातृविहीन होने के कारण उनका पालन पोषण राव दूदाजी ने किया। अन्त प्रेरणा पूर्वजन्म के सस्कार और पारिवारिक वातावरण से उनके मन मे भगवान कृष्ण के प्रति दाम्पत्य-भाव-सम्बन्ध आविभूत हुआ। उन्हें नृत्य, सगीत, धर्म ग्रन्थो का अच्छा ज्ञान था। कृष्ण के प्रति आत्यतिक अनुरक्ति और आत्मीयता के कारण स्वप्न मे उनका कृष्ण से परिणय हुआ और वे अमरवधू बन गईं। संवत् १५७३ मे मेवाड के राणा सागा के युवराज कुँवर भोजराज से उनका विवाह हुआ, किन्तु कुछ ही दिनो मे कुँवर भोज राज का स्वर्गवास हो गया। मीरा मुक्त भाव से साधु-समाज मे बैठ भगवद् भजन, कीर्तन करने लगी। लोक लाज और कुलमर्यादा के विरुद्ध उनके इस आचरण के लिए उन्हें लोकापवाद का शिकार होना पडा, परिवार के लोगो ने उन्हे भला बुरा कहा। राणा विक्रमादित्य ने उनपर विष और सर्पदश के प्रयोग किये, किन्तु भगवद् कृपा से वे बाल बाल बच गईं।

समय और परिस्थितियो के सन्दर्भ मे मीरा संवत् १५९० के लगभग मेवाड से मेडता लौटी और वे संवत् १५९५ में वृन्दावन पहुँचीं। व्रज मे अपने आराध्य की मूर्तियो और लीला क्षेत्रो के दर्शन कर वे संवत् १६०० के लगभग डाकोर होती हुई द्वारका गईं। इस यात्रा में ललिता नामक सखी अनवरत उनके साथ रही। उसने डाकोर और काशी की प्रतियों के मीरा के मूल पदो का संकलन किया। संवत् १६०३ में मेवाड और मेडता से बुलावा आने पर तथा ब्राह्मणो द्वारा धरना देने पर ललिता समुद्र की लहरों मे समा गई और मीरा राय रणछोड जी की प्रतिमा से एक रूप हो गई।

मीरा राजघराने की प्रतिष्ठा को त्याग भक्तिपथ गामिनी बनीं थीं, अतः राजवंशो ने उनकी कृतियों का सरक्षण नही किया। वे किसी सम्प्रदाय मे भी दीक्षित नही हुईं, अत उनकी रचनाओ को साम्प्रदायिक संरक्षण भी नही मिला, किन्तु मीरा के पदो मे आत्मा की आवाज थी, जिससे प्रभावित हो अनेकानेक सन्तों, भक्तों, गायको

ने अनेकानेक भाषाओ मे उनके नाम पर सैकडो रचनाएँ लिखी तथा लोक श्रद्धा ने मीरा के बारे मे अनेक किंवदन्तियाँ प्रसारित की, जिनके परिणामस्वरूप मीरा का जीवन, व्यक्तित्व और वक्तव्य परस्पर विरोधी मान्यताओ का अखाडा बन गया। मीरा की मूलवाणी का निर्व्याज रूप इस रचना में प्रस्तुत है। उनकी यह पदावली एक सघर्षरत, सरल हृदया, भक्तात्मा के प्रेम, विश्वास, समर्पण, संयोग वियोग और आत्मोल्लास के पुनीत क्षणो की सगीतात्मक अभिव्यक्ति है, जिसमे अक्षरमूर्त परम-वियोगिनी मीरा की पुकारसाकार वेदना प्राणो को छू लेती है। वस्तुत भक्ति, काव्य और सगीत की त्रिवेणी का अधिष्ठान लिए हुए मीरा के ये पद शाश्वत काव्य की अक्षय निधि हैं। इनमे व्याप्त माधुरी भक्ति मे आत्मा के सनातन नारीत्व का परमपुरुष कृष्ण के प्रति प्रगाढ प्रेम प्रस्फुटित हुआ है, अतः कृष्णभक्ति-परम्परा और मधुरोपासना के इतिहास मे मीरा और मीरा के पदो का असाधारण महत्व है।

मधुरोपासना और मीरां

रतिभाव प्राणी मात्र का अत्यन्त प्रबल मनो भाव है, किन्तु मानव जीवन में उसकी अत्यधिक आसक्ति सर्वनाश का मूल है। श्रीमद्भगवद्गीता मे भगवान कृष्ण ने कहा है कि लौकिक जीव इन्द्रियो के वशीभूत हो विषय चिन्तन करता है, विषय-चिन्तन से विषयासक्ति बढती है, आसक्ति से विषयो की कामना होती है, कामना पूर्ति में विघ्न पडने से क्रोध, क्रोध से अविवेक अर्थात् मूढ भाव, मूढ भाव से स्मृति भ्रम और स्मृतिभ्रम से बुद्धिनाश होना है और बुद्धिनाश होते ही व्यक्ति श्रेय साधन से च्युत हो जाता है।[१]

लौकिक विषय-वासनाओ को, प्रेम भावनाओ को ईश्वरोन्मुख करना मधुरोपासना है। बृहदारण्यक उपनिषद मे कहा गया है कि—

"तद् यथाप्रियया स्त्रिया सम्परिष्वक्तो वाह्य किंचनवेदनान्तर मेव मेवाय पुरुष प्राज्ञेनात्मना सम्परिष्वक्तो न वाह्य किंचनवेदनान्तर तद्वा अस्यैतदाप्त काम-माप्तकामम् शोकान्तरम्।"[२]

अर्थात् जिस प्रकार अपनी प्रिया (भार्या) द्वारा आलिंगित पुरुष को न कुछ बाहर का ज्ञान रहता है और न भीतर का, उसी प्रकार यह पुरुष भी प्रज्ञात्मा द्वारा आलिंगित हो जाने पर न कुछ भीतर का विषय जानता है और न बाहर का ही। इस मनोभूमिका के आधार पर भक्ति क्षेत्र मे संप्रेषित दाम्पत्यरति काम-वासना नहीं है, किन्तु दुर्भाग्य से मीरा के इस आध्यात्मिक धरातल से अनभिज्ञ लोगो ने उन्हें 'मदण बावरी'[३] समझकर अनेक प्राणातक कष्ट दिये। सांच को आंच नही आई और मीरा अपनी प्रेम साधना पर अटल रही।

(१) श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय २, श्लोक-६२, ६३। (२) वृहदारण्यक उपनिषद, २।४।१६-१। (३) डाकोर की प्रति, पद ४८।

पाश्चात्य मधुरोपासक

मिस्र की लिंगोपासना[१] तथा संत सालोमन[२] और संत बर्नार्ड[३] क काव्यात्मक अभिव्यक्तियों में दाम्पत्य भाव प्रेरित मधुरोपासना विद्यमान है। ईसा सन्तो ने आध्यात्मिक विवाह का उल्लेख किया है, जिसमे मंगनी (Betrothal) विवाह (Marriage), ग्रंथि बंधन (Wedlock), एवं संयोग (Copulation) द्वार जीवात्मा-परमात्मा का प्रेम और विवाह वर्णित है। सेंट जॉन ऑव रुइस ब्रोक ने दुल्हा (परमात्मा) और दुलहिन (जीवात्मा) के बीच की विरहावस्था को 'अंधेरी रात (Dark Night) कहा है। सत टेरेसा ने तो अपने आपको परमात्मा की दुलहिन ह माना था। एक नारी सतात्मा होने के कारण उनकी मधुरोपासना में दाम्पत्य प्रे की बहुत स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है। 'माई म्हाणे सुपणा मां परण्यां दीणानाथ' कहकर कृष्ण को अपना पति मानने वाली मीरा की दाम्पत्य-भावना उक्त पाश्चात्‍ मधुरोपासको की अनुभूतियों और भावनाओं से तुलनीय हैं। मीरा का स्वप्न मे हो वाला परिणय उनका आध्यात्मिक विवाह था, और उनकी जीवन व्यापी विरह-व्यथ और कुछ नही 'अंधेरी रात' थी। इस अंधेरी रात मे लोकापवाद, लोक निन्दा पारिवारिक प्रताड़ना, विषपान आदि प्रसंगो को मीरां ने ईश्वरीय प्रेम-पंथ की कठि नाइयां मानकर बड़े साहस और आत्म विश्वास के साथ सहा। अन्तर्जगत औ बहिर्जगत के भोगे हुए सत्य पर आधृत मीरा के काव्य का अक्षर-अक्षर जीवन सत्य का प्रतिरूप बनकर हमारे सामने आया है। यही कारण है कि मीरा और मीरां के पद परस्पराश्रित हैं और उनमें अद्वैत है। मीरा का व्यक्तित्व उनके पदो से अभिन्न है।

सूफियो की मधुरोपासना

सूफी दर्शन का प्रेम तत्व भी दाम्पत्य भावाश्रित है। उसमे जीवात्मा प्रेमी और परमात्मा-प्रेयसि है। भारतीय मधुरोपासना मे जीवात्मा-प्रेयसि तथा परमात्म प्रिय (पति) है। इस तरह से सूफी और भारतीय मधुरोपासना मे जीव की अनुभूतियों मे विपर्यय पाया जाता है।

सूफी साधको मे भारतीय पद्धति का जीव-ब्रह्म (आत्मा-परमात्मा) सम्बन्ध बसरा की प्रख्यात साधिका राबिया और भारत के सुविख्यात सूफी साधक मूसाशाह सुहाग व पीर बुल्लेशाह के भाव जगत मे दृष्टव्य है। राबिया, खुदा के प्रति पत्नी भाव से पूर्णतः अनुरक्त थी। उसने अपने-आपको सर्वात्मभावेन ईश्वर के प्रति सौंप दिया

---

(१) A short History of sex Worship–H Cutner, Page 7-8। (२) The Book of old Testament the songs of solomon Chapter 1-2, 2-10, 10 (३) Mysticism Evelyn underhill. Page 137-138. (४) डाकोर की प्रति, पद ३६।

था तथा स्वकीया की भांति वह हमेशा ईश्वर के ध्यान ही में मग्न रहती थी। एक बार सूफी संत हसन बसरी ने राबिया से पूछा कि वह अपना विवाह क्यों नहीं कर लेती ?

राबिया ने उत्तर दिया--विवाह तो शरीर का हुआ करता है, जो मेरा है ही नहीं। वह तो मेरे मन के साथ-साथ अपने प्रभु के चरणों में अर्पित हो चुका है। अब यह सर्वथा उसी के अधीन है और उसी के उपयोग का भी है। उसी के साथ मेरा विवाह भी हो गया है।[1]

राबिया का अनन्य भाव से आत्म समर्पण, परमेश्वर से प्रेम, विवाह और उसकी ही सुधि में तल्लीनता बहुत कुछ मीरा के जीवन और भक्ति-भाव से साम्य रखती है।

सूफी संत जलालुद्दीन के शिष्य मूसाशाही सुहाग, 'मूसा सुहागिया' उपसम्प्रदाय के जनक थे। वे एक पहुँचे हुए साधक थे और अपनी साधना के लिए वेश भूषा बदलकर हिजड़ों के बीच में अपना जीवन बिताते थे। संत पीरशाह इनायत के शिष्य बुल्लेशाह भी स्त्रियों की वेश भूषा में प्रियतम (परमात्मा) और पीर की याद में विरह भाव से ओत प्रोत काफी' के पद गाते फिरते थे। ये सूफी साधक भाव जगत में अवश्य माधुर्य भाव से प्रेरित थे, किन्तु उनके आचार शास्त्र और अभिव्यक्ति कौशल में वह नैसर्गिकता नहीं है जो राबिया और मीरा में अपने आप विद्यमान है।

भारतीय मधुरोपासक धर्म-साधनाएँ

ऋग्वेद (७।२१।५) में शिश्न देवा शब्द का प्रयोग हुआ है, जिससे सिद्ध होता है कि ऋग्वेद की ऋचाओं के संकलन के समय भारत में लिंगोपासना विद्यमान थी। श्री केदार नाथ शास्त्री का अनुमान है कि "सिन्धु सभ्यता वाले प्राचीन भारतीयों को लिंग पूजने का ज्ञान अवश्य था क्योंकि पत्थर के अण्डाकार लिंग जो वहाँ मिले हैं वे निस्संदेह ऐसी पूजा में व्यवहृत होते रहे होंगे।"[2]

लिंगोपासना बहुत पुरातन और व्यापक है। आज भी काशी विश्वनाथ के मंदिर में ही नहीं, भारत के अनेक स्थानों पर लिंग पूजा विद्यमान है। लिंगायत सम्प्रदाय के अनुयायी शिवलिंग के उपासक हैं और वे छोटे छोटे शिवलिंग शरीर पर धारण भी करते हैं, किन्तु उनकी शैवोपासना मधुरोपासना नहीं है। दक्षिण भारत में मदुरा के निकट 'तिरुवा-उदर' के निवासी शैवमतानुयायी संत माणिक्क वाचकर ने अपने 'तिरुक्कोवै' नामक ग्रंथ में नायक नायिका की प्रेम कहानी के रूप में अपनी प्रेमा भक्ति और प्रेम साधना द्वारा आराध्य के प्रति मधुरोपासना से मिलती-जुलती भावनाएं प्रकट की हैं। उन्होंने जीवात्मा को प्रेमी और परमात्मा को प्रेमिका के रूप में चित्रित किया है, जिससे उनकी भावभूमि सूफियों की प्रेम साधना जैसी प्रतीत होती

---

(१) Rabia the mystic-Margaret Smith, page 3। (२) हड़प्पा केदारनाथ शास्त्री, पृष्ठ १४।

है। श्री पूर्णसोम सुन्दरम् के मत से 'प्राचीन तमिल काव्य मे सूफी मत की यह छाया आश्चर्यजनक है।"[१]

माणिक्क वाचकर की ही भांति देवनाथ की भक्ति साधना भी इस्लाम की मधुरोपासना से साम्य रखती है।

बौद्धो की योगिनी साधना, युगनद्ध की उपासना या महामुद्रा की साधना भी दाम्पत्य सम्बन्धो की द्योतक है। उनमें भावनात्मक, आध्यात्मिक और रहस्यात्मक ढङ्ग से 'नारीत्व' और 'पुरुषत्व' के मिलन द्वारा महासुख की अनुभूति की साधना अभीप्सित थी। वामाचार प्रधान तन्त्र साधनाएँ भी काम तत्व' पर आश्रित थी, किन्तु जब ये उदात्त भाव साधनाएँ क्रियात्मक क्षेत्र मे विशुद्ध लौकिक भोगानन्द मे परिणत हुई तब इनके नैतिक पक्ष की कमजोरी और साधको की आचरण हीनता साधक और साधना दोनो के ले डूबी।

दक्षिण भारत के मधुरोपासक भक्त

दक्षिण भारत के मधुरोपासक भक्तो का स्मरण आते ही सबसे पहले हमारा ध्यान आलवार भक्तो की ओर जाता है। आलवार भक्तो म भी पुण्यश्लोक आण्डाल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह पेरिय या विष्णुचित आलवार की पोषिता पुत्री थी, जो एक दिन उन्हें वटपत्रशायी भगवान की पूजा के लिये पुष्प-चयन करते समय तुलसी के 'बिरवा' के निकट मिली थी। पेरिय आलवार ने उस सुन्दर बालिका का नाम 'कोदई' अर्थात् 'पुष्पमाला सी कमनीय' रखा। बडी होने पर कोदई-'गोदा' 'आण्डाल' 'कोदै' या चूडिकुडुत्थनाचियार' नामो से पुकारी गई। गोदा का अर्थ है, भगवान को अपनी वाणी अर्पित करने वाली, और आण्डाल का अर्थ है 'शासन करने वाली।' आण्डाल ने आजीवन अपनी वाणी भगवान को अर्पित की और वह आज भी दक्षिण के जन मानस पर भक्तात्मा की भांति शासन करती है। लोग उसकी पूजा भी करते हैं।

कहा जाता है कि आण्डाल भगवान रगनाथ के लिये पुष्पमालायें बनाने के बाद पहले स्वय उन्हें पहन लेती थी और बाद में वे मालायें श्री रगनाथ जी को अर्पित की जाती थी। पेरिय आलवार ने इस व्यवहार पर आण्डाल को डांटा और निकट भविष्य में मालायें स्वयं न पहनने का आदेश दिया। लेकिन स्वय भगवान से ही स्वप्न मे आदेश पाकर पेरिय आलवार ने आण्डाल को अपनी उतरी हुई मालायें भगवान रगनाथ को पहनाने की अनुमति दे दी। इस घटना से आण्डाल के मन मे श्रीरगनाथ जी के प्रति दाम्पत्य भाव उत्पन्न हुआ और उसने विवाह की चर्चा चलने पर पेरिय आलवार से कहा कि वह भगवान रगनाथ के अतिरिक्त अन्य किसी का भी वरण नही करेगी। पेरिय अलवार ने अन्तत एक दिन आडाल का विवाह विधिवत श्रीरग नाथ जी से

---

(१) तमिल और उसका साहित्य—श्रीपूर्णसोम सुन्दरम, पृष्ठ ५०-५२।

कर दिया और आण्डाल मंदिर मे भगवान की मूर्ति से मिलते ही अन्तर्ध्यान हो गई। लोग कहते हैं कि वह रंगनाथ जी की मूर्ति मे समा गई। इस दृष्टि से आण्डाल और मीरा के जीवन भक्ति भाव मे अभूतपूर्व साम्य है।

आण्डाल और मीरा का तुलनात्मक अध्ययन

आण्डाल और मीरा दोनों ही अपने इष्ट देव के प्रति कान्तासक्ति से प्रेरित थी। दोनों ने श्रीकृष्ण को पति-रूप मे स्वीकार किया था। आण्डाल अपने आपको 'गोपी' का अवतार मानती थी, तो 'मीरा' ने अपने आपको 'राधा' का अवतार कहा है। दोनों का परिणय स्वप्न मे हुआ था। आण्डाल का विवाह लौकिक पद्धति से भी हुआ था। उसने पण्डितो द्वारा वैदिक मन्त्रो के उच्चारण तथा पवित्र नदियो के जल आदि की भी चर्चा की है। उसके आराध्य इन्द्रादि देवताओ साथ हजारों हाथियो पर विराजमान हो बारात लेकर आये थे[1], जबकि मीरा के विवाह मे भगवान ने स्वप्न मे ही 'तोरणमारी' थी और स्वप्न में ही मीरां का 'हाथ पकड़ा' था। मीरां के विवाहोत्सव में छप्पन करोड बराती आये थे। आण्डाल सशरीर विधिवत् श्री रंगनाथ जी की प्रतिमा से विवाहित थी, जब कि मीरा ने अपने आराध्य की मूर्ति से लौकिक पद्धति के अनुसार विवाह नहीं किया। उसका परिणय भाव सम्बन्ध था।

आण्डाल और मीरा, दोनों ने अपने आध्यात्मिक पति का परिचय केवल नन्द-यशोदा द्वारा पोषित कृष्ण के रूप में ही नहीं दिया, अपितु उन्हे भगवान विष्णु के अवतार के रूप मे भी माना है। आण्डाल ने अपने प्रिय को कमलनयन, चन्द्रमुख और सूर्य के समान दीप्तिमान नन्द-यशोदा-पुत्र,[2] वसुदेव पुत्र[3] तो कहा ही है, किन्तु उन्हें नाग की शय्या पर सोनेवाला नारायण[4] विष्णु कहकर भी सम्बोधित किया है। आण्डाल ने उन्हें देवाधिदेव[5], तीन पगों में संसार नापनेवाला, लंकेशसहारक[6] (राम) भी कहा है। मीरा ने भी अपने 'गिरधरनागर' को विष्णु और रस के रूपो में स्मरण किया है। इस तरह से आण्डाल और मीरा दोनो परम वैष्णवी भक्तात्माएं थी।

आण्डाल गोपी भाव से भगवान से प्रेम करती थी। उसके मन में उनके साथ क्रीडायें करने की लालसा थी। वह प्रातःकाल कृष्ण को जगाती थी[7], नन्द, यशोदा और बलदेव को उठाती थी।[8] साथ ही वह कृष्ण की परमरूपवती, चन्द्रवदना, मधुर अधर, अतिकोमल उरोज क्षीणकटि पत्नी 'नप्पिनइ' के माध्यम से अपने दाम्पत्य रति भाव को वाणी देती थी। नप्पिनइ दीप से आलोकित प्रकोष्ठ में

(१) नित्यानुसंधानम् संपादकः कृष्णमाचार्य स्वामिगल, नाच्चियार तिरुमोळी दसवाँ अध्याय, 'वारणम आयिरम', पृष्ठ ३६-३७। (२) तिरुप्पावइ प्रकाशक, श्री पी० एल० अरुणाचल मुदालियर, पृष्ठ २६, पद १। (३) वही, पृष्ठ ३२, पद-५। (४) वही, पृष्ठ ३०, पद-२। (५) वही, पृष्ठ ४२, पद-२०। (६) वही, पृष्ठ ४४-४५, पद २४। (७) वही, पृष्ठ ३२-३६, पद ६ १५। (८) वही, पृष्ठ ४०, पद १७।

कोमल सेज पर आँखों मे काजल और वेणी में फूल लगाकर के कृष्ण के साथ शय करती है और कृष्ण उसके साथ मुक्त भाव से काम-क्रीडाएँ करते थे। आण्डाल ऐसे प्रणय चित्र निस्संकोच भाव से खीचे हैं, किन्तु मीरा की शालीनतापूर्ण भावधार में इस तरह के काम-कला के सकेत या प्रणय की शारीरिक चेष्टाओं क वर्णन ढूँढ पर भी नही मिलते। मीरा का दाम्पत्यभाव कुलीन जीवन-सगिनी का परिचाय है पर आण्डाल के कुछेक पद अति शृंगारिक हैं।

कृष्णोपासकों की माधुरी भक्ति

चण्डीदास, विद्यापति, महाप्रभु चैतन्य, सूरदास व अष्टछाप के अन्यकवि तथ राधा माधव प्रेम-सम्बन्धी के गायक अन्यान्य भक्त कवियों ने भी राधाकृष्ण के प्रेम संयोग और वियोग की दाम्पत्य भावमूलक पदावलियो का प्रभूत प्रणयन किया है राधाकृष्ण की प्रेममाधुरी के निरूपण मे इन सभी कवियो की भावुकता, कल्पनाशक्ति और अनुभूति मे बडी अच्छी मार्मिकता भी है, किन्तु इनकी भावधारा परोक्षानुभूति पर आश्रित है। राधा और गोपियो की मधुर-भावनाओ के ज्ञापन मे इन राधाकृष्णो पासको ने कल्पना का सहारा लिया है, जबकि मीरा की मधुराभक्ति स्वानुभव औ निजानुभूति पर आधारित है। भक्ति, काव्य, सगीत का समन्वय प्रायः सभी कृष्णो पासक भक्तों की रचनाओ मे है, मीरा-पदावली मे भी है, किन्तु मीरा के पदो क आत्मीयता उनकी अपनी विशेषता है। कृष्णोपासक भक्तो ने गोपियों अथवा राधा माध्यम से प्रेम भाव प्रसूत संयोग-वियोग का वर्णन किया है, जबकि मीरा ने अपन पीडा अपनी वाणी मे प्रकट की है, किन्तु मधुरोपासक कृष्ण भक्त कवियों की मनो भूमिका मे जो दाम्पत्यरति पोषण नारीभाव है, वह भी अपने मूल रूप में प्रामाणि अनुभूति माना जाना चाहिए। मधुराभक्ति के इस धरातल पर कोई लैंगिक भेद-भा नही रह जाता है।

निर्गुणोपासकों की दाम्पत्य रति और मीरा

सन्त नामदेव की सगुणोपासना और ससार को नश्वरताविषयक धारणा मीरा से मिलती जुलती हैं, पर कबीर या अन्य निर्गुणोपासक ज्ञानमार्गीय सन्तो क मधुरा भक्ति मीरा के समकक्ष नही है। यह सत्य है कि कबीर के कई पदो मे ब्रह्म जीव सम्बन्ध पति-पत्नी भाव में मुखर हुआ है। "राम मोर पिउ, मैं राम क बहुरिया।" या "नैनन की करि कोठरी, पुतरी पलंग बिछाय। पलकन की चिक डारिकै पिय को लिया रिझाय।" कहने वाले कबीर ने 'निरगुन सरगुन से परे' राम के प्रति अपना दाम्पत्य प्रेम प्रकट भी किया है, किन्तु कबीर की यह भावुकता अपने पुरुषत्व पर आरोपित नारीत्व की अभिव्यक्ति है। मीरां मे नारी का सहज आत्मानुभव प्रधान है, अतः कबीर की माधुर्योपासना रूपकात्मक अधिक है।

जायसी तथा अन्य प्रेमाख्यानक सूफी कवियों का माधुर्य भाव लौकिक कथाओं के माध्यम से अलौकिक, आत्मिक प्रेमपीडा के ज्ञापन का प्रयास है। उनके संयोग

वियोग, तड़पन, मिलन सबमे परोक्षानुभूति प्रधान है, जबकि मीरा की माधुर्योपासना आत्मानुभव का सहज शाब्दिक प्रकटन है। मीरा सगुणोपासिका थी परन्तु सूफी कवि निर्गुणोपासक एकेश्वरवादी थे। उनपर इस्लामी धर्म-दर्शन का प्रभाव था। मीरा के होली या वर्षा वर्णन में प्रकृति पर मानवीय मनोभावो की जो छाया पड़ी है, वह सूफियो के प्रकृति-सापेक्ष संयोग वियोग वर्णन के पर्याप्त निकट है।

घनानन्द और मीरा

रीतिकाल के कवियो में घनानन्द की विरहानुभूति और मीरा के 'दरद' मे व्यक्तिगत स्तर पर पर्याप्त साम्य है। प्रिय की सुधि में घनानन्द और मीरा दोनो समान रूप से तड़पते हैं, दोनो विकल, विवश हो प्रिय को मिलन के लिए पुकारते हैं और दोनों की पुकार मे दिल को दहला देने वाला दर्द सिसकता हुआ दिखाई देता है। दोनो के प्रेम और विरह मे उत्कट भाव-दशाओं के शब्द चित्र-उभरे हैं। घनानन्द मे उक्तिकौशल और भाषा को शब्द शक्ति का चमत्कार अधिक है, तो मीरा की वाणी में सहजाभिव्यक्ति ही स्वय चमत्कार बन गई है। घनानन्द मुक्तक-प्रणेता थे, मीरा-गीति गायिका। रीतिकाल के अन्य कवियो ने राधाकृष्ण के प्रेम-संयोग के माध्यम से भले ही नायक-नायिका भेद निरूपित किया हो, किन्तु उनकी भौतिक दृष्टि की मीरा के आध्यात्मिक प्रेम संयोग-वियोग-भाव से तुलना करना औचित्यपूर्ण नहीं है क्योंकि आत्मा की प्यास ओठो की प्यास से श्रेष्ठतर अतृप्ति है।

मीरां और महादेवी

महादेवी विरह और करुणा की कवयित्री हैं। उनकी अन्तर्मुखी वृत्ति मे एक रहस्यात्मक, बौद्धिकता और किसी 'अज्ञात' के प्रति प्रगाढ़ प्रेमानुभूति परिलक्षित होती है। उनको प्रेमसाधना पर क्लिष्ट कल्पना, चिन्तनशीलता तथा अस्पष्टता का कुछ ऐसा कुहरा छाया हुआ है कि उनको कविताएँ कल्पना बाहुल्य और बिम्बो के बोझ की भारवाहिनी सी बन गई हैं। महादेवी में व्यथा है, भावुकता है, रवानी है, छायावादियो के सभी सूक्ष्म गुण हैं, किन्तु उन्होंने 'तुमको पीड़ा में ढूंढा, तुममें ढूंढूंगी पीड़ा' कहकर दर्द को ही दवा बना लिया है। मीरा का दर्द उनकी विरहव्यथा थी, जिसकी दवा 'प्रेम की पीर' नहीं, 'सावरे' थे। महादेवी के प्रिय महादेवी में हो हैं। "तुम मुझमे प्रिय, फिर परिचय क्या ?" जैसी पंक्तियाँ उन्हें रहस्यवादी कवियो की चिन्तन धारा से जोड देती हैं। खोजने पर भी हमें महादेवी के प्रिय का नाम, गाँव, पता नही मिलता, पर मीरां के प्रिय मोरमुकुट धारी, वृन्दा विपिन बिहारी, नटनागर कृष्ण थे। महादेवी साधिका हैं, मीरां सगुणोपासिका भक्त, इस तरह से मीरां-मीरा हैं, महादेवी महादेवी। मीरां का काव्य आत्मकथा है, महादेवी की रचनाएँ आन्तरिक कसक की बौद्धिक, कटी छटी, सजा-सँवरी, कलात्मक अभिव्यक्तियाँ, अतः महादेवी को आधुनिक मीरां कहना आंशिक सत्य सा है।

मीरा की मधुरा भक्ति

मीरा की मधुरा भक्ति कान्तासक्तिमूला है। उनका और कृष्ण का प्रबल सम्बन्ध था। वे कृष्ण का जन्म जन्म की दासी थीं और कृष्ण उनके जन्म जन्म के भरतार थे। ईसाई संत टेरेसा, सूफी संत राबिया तथा भारत की आलवार संत आण्डाल का आत्मा परमात्मा सम्बन्ध भी दाम्पत्य मूलक था, अत उनकी और मीरा की भाव-साधना तथा जीवनानुभूति में पर्याप्त साम्य है। टेरेसा, राबिया और आण्डाल को अपनी प्रेमाभक्ति के लिए उतनी प्रताडनाओं और पीडा का सामना नहीं करना पडा, जितना मीरा को करना, सहना पडा। मीरा को मधुरोपासना के लिए प्राणान्तक क्लेश सहने पडे, किन्तु उनके आस्था विश्वास में रचमात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ। भौतिक जगत में रहकर भी व कीचड म कमल की तरह आध्यात्मिक लोक में विचरती रही, और अपनी निष्ठा के सैद्धान्तिक पक्ष को लेकर प्राणों की कीमत पर भी समझौता करने के लिए तैयार नहीं हुईं। एक चेतनशील, आत्मज्ञ, सगुणोपासिका के नाते झुकने की अपेक्षा उन्होंने टूट जाना श्रेयस्कर समझा, अत अपनी मान्यता के लिए प्राण देने वालो में मीरां मंसूर के समकक्ष है। मंसूर की फांसी और मीरा का विषपान अपनी अपनी निष्ठा की कठोरतम परीक्षाएं हैं। मंसूर सूली पर चढकर भी अपने सिद्धान्त से नहीं हटा और मीरां हलाहल पीकर भी कृष्ण भक्ति से विचलित नहीं हुई। उसकी आत्मा प्रिय को पुकारते-पुकारते अपने गीतो से एकरूप हो गई, इसीलिए मीरा अपने गीतो मे जीवित है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की एकरूपता में ही उनकी अमरता का रहस्य छिपा है।

तृतीय खण्ड

मीराँ की प्रामाणिक पदावली

इस डाकोर का प्रति मे ६९ पद हैं और उनकी भाषा प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी तथा लिपि देवनागरी मिश्रित गुजराती है। इसके पत्रों का आकार ७½ × ३½ है। पत्रो के कोने फटे हैं। कुछ पृष्ठो को छोड प्रायः प्रत्येक पृष्ठ पर लगभग दो-दो पद है। पत्र जीर्ण-शीर्ण है और कागज लगभग ४०० वर्ष पुराना है।

डाकोर की प्रति मे मीरा ने वृन्दावन में जो पद गाया था, यह निम्नानुसार है—

आली म्हाणे लागा बृन्दाबण णीका।
घर घर तुड़सी ठाकर पूजा दरसण गोविंदजी का।...[१]

व्रजभाषा मे इसका गेय रूपान्तरण हुआ—

आली म्हॉने लागे बृन्दावन नीको।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा दरसण गोविंदजी को।[२]

रेखांकित पंक्तियां—इस बात का प्रमाण है कि मीरा ने वृन्दावन मे रहने समय अपनी मातृ भाषा-प्राचीन राजस्थानी मे ही पद-रचना की थी। व्रज मे रहकर उन्होने व्रज-भाषा मे पदरचना नही की। इससे सिद्ध होता है कि सम्प्रति व्रज भाषा मे प्राप्त मीरा के पद या तो उनके मूल पदो के व्रज भाषान्तरित रूप है, या वे मीरा की अपेक्षा मीरा-भाव प्रेरित दूसरो की रचनाएं है।

भट्टजी के पास मीरा के पदो की एक दूसरी हस्तलिखित प्रति भी थी, जिसका लिपिकाल संवत् १८०५ था। इसकी लिपि पर देवनागरी की अपेक्षा गुजराती लिपि का प्रभाव अधिक था। इसमे १०३ पद थे, जो काशी के सेठ लाला गोपालदास की संवत् १७२७ की हस्तलिखित प्रति से मिलते थे। डाकोर और काशी जैसे दो दूरस्थ स्थानों पर प्राप्त मीरा की प्राचीन प्रतियो में भाव, प्राप्त भाषा, पदावली और पद क्रम की समानता से यह सिद्ध होता है कि मीरा के ये १०३ पद मीरा के मूल पद हैं। डाकोर तक आते-आते मीरा ने ६९ पद रचे थे और डाकोर से द्वारका जाकर वहाँ कृष्णमय होने के पूर्व इन पदो की सख्या ६९ से १०३ हो गई। चारो धाम की यात्रा करने वाले भक्तो, सन्तों के साथ इन १०३ पदो की प्रतिलिपि काशी पहुँची। काशी की प्रति का अंतिम पद मीरा के शरीर त्याग के पूर्व गाया गया पद है। इस तरह से मीरा ने अपनी इहलौकिक लीला समाप्त करने के पूर्व प्रस्तुत १०३ पद लिखे थे इतना निश्चित है। इनके अतिरिक्त यदि भविष्य मे मीरा के और भी 'मूल' पद मिले तो वह हिन्दी साहित्य के लिए गौरव की बात होगी।

काशी की प्रति

काशी की प्रति सेठ लाला गोपालदास के संग्रहालय मे है, जिसमे १०३ पद है। डाकोर और काशी की प्रतियो के मूल पद मात्र यहाँ प्रस्तुत है। इन पदो के विविध गेय रूपों और पाठ भेदो के सूक्ष्म अध्ययन के लिए मेरा शोध ग्रन्थ[३] देखा जा सकता है।

---

(१) डाकोर की प्रति, पद ८। (२) मीरा मन्दाकिनी-नरोत्तमदास स्वामी, पृ० ४-५, पद ८। (३) मीरा की प्रामाणिक पदावली-डॉ० भगवानदास तिवारी, प्रकाशक : साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सन् १९७४, पृष्ठ ११८-२७२।

पद-सूची

(अकारादि क्रमानुसार : अंक-संख्या पद-संख्या की द्योतक है ।)

प्रामाणिक पदावली का मूल पाठ

डाकोर की प्रति (लिपिकाल-सवत् १६४२) से

[१]

म्हारा री गिरधर गोपाड दूसरा णा कूया।
दूसरा णा कोया साधा सकड डोक जूया।
भाया छाड्या बधा छाड्या छाड्या सगा सूया।
साघा सग बेठ बेठ लोक-लाज खूया।
भगत देख्या राजी ह्यया जगत देख्या रूया।
असवा जड सीच-सीच प्रेम बेड बूया।
दध मय घृत काढ लया डार दया छूया।
राणा विपरो प्याडा भेज्या पीय मगण हूया।
अब त बात फेड पड्या जाण्या सब कूया।
मीरा री लगण लग्या होणा हो जो हूया॥

[२]

भज मण चरण कवड अवणासी।
जेताई दीसा धरण गगण मा तेताई उट्ठ जासी।
तीरथ बरता ग्याण कथन्ता कहा लया करवत कासी।
यो देही रो गरव णा करणा माटी मा मिड जासी।
यो ससार चहर रा बाजी साँझ पड्यां उठ जासी।
कहा भया था भगवा पहर्यां घर तज लया सण्यासी।
जोगी होया जुगत णा जाणा उलट जणम रा फासी।
अरज करा अबडा कर जोड्यां स्याम ( )[१] दासी।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर काट्या म्हारी गासी॥

---

१. मूल प्रति मे स्याम तथा दासी के बीचके अक्षर कीड़े खा गये हैं। कदाचित उस स्थान पर 'थ र ण री' अथवा 'थां री' शब्द रहे होंगे।

[३]

म्हाँ मोहण रो रूप लुभाणी।
सुदर वदण कमड दड लोचण वाँका चितवण नैणा समाणी।
जमणा किणारे कान्हा धेणु चरावा बसी वजावा मीट्ठा वाणी।
तण मण धण गिरधर पर वारा चरण कवड मीरा विलमाणी॥

[४]

म्हारो परनाम वाके विहारी जी।
मोर मुगट माथा तिडक विराज्या कुडड अडका कारी जी।
अधर मधुरधर बसी वजावा रीझ रिझावा व्रजनारी जी।
या छव देख्या मोह्या मीरा मोहण गिरवर धारी जी॥

[५]

निपट वकट छव अटके म्हारे नैणा णिपट वकट छव अटके।
देख्या रूप मदण मोहण री पियत पियूख ण मटके।
वारिज भवाँ अडक मतवारी नैण रूप रस अटके।
टेढ्या कट टेढे कर मुरडी टेढ्या पाग लर लटके।
मीरा प्रभु रे रूप लुभाणी गिरधर नागर नटके॥

[६]

सावरे मार्‌या तीर।
री म्हारा पार निकड गया तीर सावरे मार्‌या तीर।
विरह अनड लागा उर अतर व्याकुड म्हारा सरीर।
चचल चित्त चडया णा चाडा वाध्या प्रेम जजीर।
क्या जाणा म्हारा प्रीतम प्यारो क्या जाणा म्हापीर।
म्हारो काई णा वस सजणी नैण झर्‌या दो नीर।
मीरा रे प्रभु थे विछुड्या विण प्राण धरत णा धीर॥

[७]

चाडा मण वा जमणा का तीर।
वा जमणा का निरमड पाणी सीतड होया सरीर।
बसी वजावा गावा कान्हा सग लिया वडवीर।
मोर मुगट पीतावर सोहा कुडड झडक्या हीर।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर क्रीड़्या सग वलवीर॥

[८]

आली म्हाणे लागा बृन्दावण णीका ।
घर घर तुडसी ठाकर पूजा दरसण गोविंद जी का ।
निरमड नीर वह्या जमणा का भोजण दूध दह्या का ।
रतण सिंघासण आप विराज्या मुगट धर्‌या तुडसी का ।
कुजण कुजण फिर्‌या सावरा सवद सुण्या मुरडी का ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर भजण बिणा नर फीका ।।

[९]

जाणा रे मोहणा जाणा थारी प्रीत ।
प्रेम भगति रो पैंडा म्हारो और ण जाणा रीत ।
इमरत पाइ विषा क्यू दीज्या कूण गाव री रीत ।
मीरा रे प्रभु हरि अविणासी अपणो जण रो मीत ।।

[१०]

म्हा गिरधर रगराती ।
पचरग चोडा पहेर्‌या सखि म्हा झरमट खेलण जाती ।
वा झरमट मा मिड्या सावरो देख्या तण मण राती ।
जिण रो पिया परदेस वस्यारी डिखडिख भेज्या पाती ।
म्हारा पिया म्हारे हीयडे वसता ना आवा न जाती ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर मग जोवा दिण राती ।।

[११]

प्रभुजी थें कठ्या गया नेहडा लगाय ।
छोड्या म्हा विसवास सगाती प्रीत री वाती जडाय ।
विरह समद मा छोड गया छो नेह री नाव चडाय ।
मीरा रे प्रभु कव रे मिलोगा थें विण रह्या णा जाय ।।

[१२]

हरि म्हारा जीवण प्रान अधार ।
और आसिरो णा म्हारा थें विणा तीणू लोक मझार ।
थे विणा म्हाणे जग णा सुहावा, निरख्या जग ससार ।
मीरा रे प्रभु दासी रावली डीज्यो णेक णिहार ।।

[१३]

माई री म्हा डिया गोविन्दा मोड ।
थे कह्या छाणे म्हा का चोड्डे डिया वजता ढोड ।
थे कह्या मुहघो म्हा कह्या सुस्तो डिया री तराजा तोड ।
तण वारा म्हा जीवण वारा वारा अमोडक मोड ।
मीरा कू प्रभु दरसण दीज्या पुरव जणम को कोड ॥

[१४]

मण थें परसि हरि रे चरण ।
सुभग सीतड कवड कोमड जगत ज्वाडा हरण ।
इण चरण प्रह्लाद परस्या इन्द्र पदवी धरण ।
इण चरण ध्रुव अटड करस्या सरण असरण सरण ।
इण चरण ब्रह्माण्ड भेट्या णखशिखा सिरि भरण ।
इण चरण कालिया णाथ्या गोप डीडा करण ।
इण चरण धार्या गोवरधण गरब मघवा हरण ।
दासि मीरा लाल गिरधर अगम तारण तरण ॥

[१५]

आडी री म्हारे णेणा वाण पडी ।
चित्त चढी म्हारे माधुरी मूरत हिवड़ा अणी गडी ।
कब री ठाढी पथ निहारा अपणे भवण खडी ।
अटक्या प्राण सावरो प्यारो जीवण मूर जडी ।
मीरा गिरधर हाथ विकाणी लोग कह्या बिगडी ॥

[१६]

आवा मोहणा जी जोवा थारी वाट ।
खाण पाण म्हारे णेक णा भावा नेणा खुडा कपाट ।
थे आया विण शुख णा म्हारो हिवडो घणो उचाट ।
मीरा थे विण भई बावरी छाड्या णा णिरवाट ॥

[१७]

पीया विण रह्या न जावा ।
तण मण जीवण प्रीतम वार्या ।
निसदिण जोवा बाट कब रूप लुभावा ।
मीरा रे प्रभु आसा थारी दासी कठ आवा ॥

[१८]

स्याम विणा सखि रह्या णा जावा।
तण मण जीवण प्रीतम वारया थारे रूप ड भावा।
खाणपाण म्हाणे फोका डागा णेणा रह्या मुरझावा।
निसदिण जोवा वाट मुरारी कव रो दरसण पावा।
वार वार थारी अरजा करश्यू रेण गया दिण जावा।
मीरा रे हरि थें मिडया विण तरश तरश जीया जावा॥

[१९]

हेरी म्हा तो दरद दिवाणी म्हारा दरद णा जाण्या कोय।
घायड री गत घायड जाण्या हिवडो अगण सजोय।
जौहर कीमत जौहरा जाण्या क्या जाण्या जिण खोय।
दरद री मारया दर दर डोडया वेद मिडया णा कोय।
मीरा री प्रभु पीर मिटागा जद वेद सावरो होय॥

[२०]

दरस विण दूखा म्हारा णेण।
सवदा सुणता छतिया कांपा मीठो थारो बेण।
विरह विथा काशू री कह्या पेठा करवत ऐण।
कड णा पडता हरि मग जोवा भया छमाशी रेण।
थें विछडयां म्हा कडपा प्रभुजी म्हारो गयो शव चेण।
मीरा रे प्रभु कवरे मिलोगा दुख मेटण शुख देण॥

[२१]

घडी चेण णा आवडा थे दरसण विण ( )[१]।
घाम णा भावा नींद न आवा विरह सतावा ( )[२]।
घायड री घुमा फिरा म्हारो दरद णा जाण्या कोय।
प्राण गुमाया झूरतां रे णेण गुमाया रोय।
पथ निहारा डगर मझारा ऊभी मारग जोय।
मीरा रे प्रभु कवरे मिलोगा थें मिडया शुख होय॥

---

१ मूल प्रति में रिक्त स्थान पर कागज कीड़े खा गये हैं। कदाचित रिक्त स्थान क्रमांक १ पर 'मोय' और रिक्त स्थान क्रमांक २ पर 'मोय' अथवा 'रोय' शब्द रहे होंगे।

[२२]

स्याम म्हा वाहँडिया जी गह्या।
भोसागर मझधारा बूड्या थारी सरण लह्या।
म्हारे अवगुण वार अपारा थें विण कूण सह्या।
मीरा रे प्रभु हरि अविणासी डाज विरदरी वह्या॥

[२३]

भुवणपति थे घरि आज्या जी।
विथा लगा तण जारा जीवण तपता विरह बुझ्याज्या जी।
रोवता रोवता डोडता सव रैण विहावा जी।
भूख गया निदरा गया पापी जोव णा जावा जी।
दुखियाणा शुखिया करा म्हाणे दरसण दीज्या जी।
मीरा व्याकुड विरहणी अव विडम णा कीज्या जी॥

[२४]

माई म्हारी हरिहू णा बूझ्या बात।
पिंड मा सू प्राण पापी निकड क्यू णा जात।
पटा णा खोड्या मुखा णा वोड्या साझ भया परभात।
अवोडणा जुग बीतण डागा काया री कुशडात।
सावण आवण हरि आवण री सुण्या म्हाणे बात।
घोर रैणा वीजु चमका वार गिणता प्रभात।
मीरा दासी स्याम राती डडक जीवणा जात॥

[२५]

पिया थारे णाम डभाणी जी।
णाम डेता तिरता सुण्या जग पाहण पाणी जी।
कीरत काई णा किया घणा करम कुमाणी जी।
गणका कीर पढावता वैकुंठ वसाणी जी।
अरध णाम कुंजर लया दुख अवध घटाणी जी।
गरुड छाड पग धाइया पसु जूण मटाणी जी।
अजामेड अध ऊधरे जम त्रास णसाणी जी।
पूत णाम जश गाइया जग सारा जाणी जी।
सरणागत थे वर दिया परतीत पिछाणी जी।
मीरा दासी रावली अपणी कर जाणी जी॥

[२६]

जाण्या णा प्रभु मिडण विध क्या होय।
आया म्हारे आगणा फिर गया जाण्या खोय।
जोवता मग रैण बीता दिवस बीता जोय।
हरि पधारा आगणा गया मैं अभागण सोय।
विरह ब्याकुड अणड अन्तर कड णा पडता रोय।
दासी मीरा डाड गिरधर मिड णा विछड्या कोय॥

[२७]

स्याम शुदर पर वारा जीवडा डारा स्याम।
थारे कारण जग जण त्यागा डोव डाज कुड डारा।
थे देख्या विण कड णा पडता णेणा चडता धारा।
क्यासू कहवा कोण बुझावा कठण विरह री धारा।
मीरा रे प्रभु दरशण दीज्यो थे चरणा आधारा॥

[२८]

सावरो म्हारो प्रीत णिभाज्यो जी।
थे छो म्हारो गुण रो शागर औगुण म्हा विशराज्यो जी।
डोग णा शीझ्या मण णा पतीज्या मुखडा सवद शुणाज्यो जी।
दासी थारी जणम जणम री म्हारा आगण आज्यो जी।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर बेडा पार डगाज्यो जी॥

[२९]

म्हारे घर होता आज्यो महाराज।
नेण विछ्याशु हिवडो डाश्यू सर पर राख्यू विराज।
पावडा म्हारो भाग सवारण जगत उधारण काज।
सन्ट मेट्या भगत जणारां थाप्या पुन्नरा पाज।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर बाह गह्या री डाज॥

[३०]

थाणे काईं काईं बोड शुणावा म्हारा सावरा गिरधारी।
पुरब जणम री प्रीत पुराणी जावा णा गिरधारी।
शुदर बदण जोवता शाजण थारी छवि बडहारी।
म्हारे आगण स्याम पधारा मगड गावा नारी।
मोती चौक पुराया णेणा तण मण डारा वारी।
चरण शरण री दासी मीरा जणम जणम री क्वारी॥

[३१]

गिरधारी शरणा थारी आया राख्या किरपानिधाण।
अजामेड अपराधी तारया तारया नीच सदाण।
डूवता गजराज राख्या गणका चढया विमाण।
ओर अधम वहुतां थे तार्‌या भाख्या सणत सुजाण।
भीडण कुबजा तार्‌या गिरधर जाण्या शकड जहाण।
विरद वखाणा गणता णा जाणा थाका वेद पुराण।
मीरा प्रभु री सरण रावली विणता दीश्यो काण॥

[३२]

कमड दह डोचणा थें णाथ्या काड भुजग।
काडिन्दी दह णाग णाथ्या काड फण फण निरत करत।
कूदा जड अन्तर णा डर्‌या थे एक वाहु अणण्त।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर ब्रज वणता रो कत॥

[३३]

रावडो विडद म्हाणे रूडो डागा पीडत म्हारा प्राण।
सगा शणेहा म्हारे णा कोई वेर्‌या सकड जहाण।
ग्राह् गह्या गजराज उवार्‌या अछत कर्‌या वरदाण।
मीरा दासी अरजा करता म्हारो सहारो णा आण॥

[३४]

म्हा सुण्या हरि अधम उधारण।
अधम उधारण भव भय तारण।
गज बूडता अरज सुण धाया भगता कष्ट निवारण।
द्रुपद सुता रो चीर बढाया दुसासण मद मारण।
प्रह्ड्लाद परतग्या राख्या हरणाकुसरा उदर विदारण।
थे रिख पतणी किरपा पामा विप्र सुदामा विपत विडारण।
मीरा रे प्रभु अरजी म्हारी अब अबेर कुण कारण॥

[३५]

म्हाणे चाकर राखा जी गिरधारी लाला चाकर राखा जी।
चाकर रहस्यूं बाग लगास्यूं नित उठ दरसण पास्यूं।
बिन्द्रावनरी कुंज गली में गोविंद लीला गास्यूं।
चाकरी मां दरसण पास्यूं सुमरण पास्य खरची।

भाव भगत जागीग पाश्यू जणम जणम री तरशी।
मोर मुगट पीतावर शोहा गड बैजण्ता माडो।
विन्द्रावण मा धेण चरावा मोहण मुरडीवाडो।
हरे हरे णवा कुज लगाश्यू वीचा वीचा वारी।
सावरया रो दरशण पाश्यू पहण कुशुवी शारी।
आधा रात प्रभु दरशण दीश्यो जमणा जीरे तीरा।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर हिवडो घणो अधीरा॥

[३६]

माई म्हाणे शुपणा मा परण्या दीणानाथ।
छप्पण कोटा जणा पधार्‌या दूल्हो सिरी व्रजनाथ।
शुपणा मा तोरण बध्या री शुपणा मा गह्या हाथ।
शुपणा मा म्हाणें परण गया पाया अचड शुहाग।
मीरा रो गिरधर मिड्या री पुरब जणम रो भाग॥

[३७]

थे मत वरजा माई री साधा दरसण जावा।
स्याम रूप हिरदा वसा म्हारे ओर णा भावा।
सव सोवा शुख नीदडी म्हारे रैण जगावा।
ग्याण णशा जग वावरा ज्याकू स्याम णा भावा।
मा हिरदा वस्या सावरो म्हारे णीद णा आवा।
चौमाश्या री वावडी ज्याकू णीर णा पीवा।
हरि निर्झर अमरित झरया म्हारी प्याश बुझावा।
रूप सुरगा शामरो मुख निरखण जावा।
मीरा व्याकुड विरहणी आपणी वर ड्यावा॥

[३८]

पपैया म्हारो कब रो वैर चिताया।
म्हा सोवू छी अपणें भवण मा पियु पियु करता पुकार्‌या।
दाध्या ( )[1] लूण डगाया हिवडे करवत सार्‌या।
ऊभा बेठ्या बिरछरी डाडी बोडा कठ णा सार्‌या।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर हरि चरणा चित धार्‌या॥

---

१ मूल प्रति में रिक्त स्थान का कागज कीड़े खा गये हैं कदाचित् यहाँ 'ऊपर' शब्द रहा होगा।

[३९]

सखी म्हारी णीद णशाणी हो ।
पिय रो पथ निहारता शब रैण विहाणी हो।
सखिया शब मिड सीख दया मण एक णा माणी हो।
विण देख्या कड णा पडा मण रोस णा ठाणी हो।
अग खीण ब्याकुड भया मुख पिव पिव वाणी हो।
अण्तर वेदण विरह री म्हारी पीड णा जाणी हो।
ज्यू चातक घण कू रटा मछरी ज्यू पाणी हो।
मीरा ब्याकुड विरहणी सुध वुध विसराणी हो।।

[४०]

हरि विण क्यू जिवा री माय।
श्याम विणा बौरा भया मण काठ ज्यू घुण खाय।
मूड ओखद णा डग्या म्हाणे प्रेम पीडा खाय।
मीण जड विछुड्या णा जीवा तडफ मर मर ज्याय।
ढूढता वण स्याम डोडा मुरडिया धुण पाय।
मीरा रे प्रभु डाड गिरधर बेग मिडश्यो आय।।

[४१]

देखा माई हरि मण काठ किया।
आवण कह गया अजा णा आया कर म्हाणे कोड गया।
खाण पाण सुध वुध सब विसर्‌या काई म्हारो प्राण जिया।
थारो कोड विरुद जग थारो थें काई विशर गया।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर थें विण फटा हिया।।

[४२]

थें विण म्हारे कोण खबर ड़े गोवरधण गिरधारी।
मोर मुगट पीतावर शोभा कुडड री छव प्यारी।
भरी सभा मा द्रुपद सुता री राख्या डाज मुरारी।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर चरण कवड बडहारी।।

[४३]

म्हारो जणम जणम रो शाथी थाणें णा विशर्‌या दिण राती।
था देख्या विण कड णा पडता जाणे म्हारी छाती।

ऊचा चढ चढ पथ निहार्‌या कडप कडप अखया राती ।
भोसागर जग बधण झूठा झूठा कुडरा ण्याती ।
घड पड थारा रूप निहारा णिरख णिरख मदमाती ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर हरि चरणा चितराती ।

[४४]

जोशीडा णे लाख वधाया रे आश्या म्हारो स्याम ।
म्हारे आणद उमग भर्‌या री जीव लह्या शुखधाम ।
पाच शख्या मिड पीव रिझावा आणद ठामा ठाम ।
विशर जावा दुख निरखा पिया री सुफड मणोरथ काम ।
मीरा रे शुखसागर स्वामी भवण पधार्‌या स्याम ॥

[४५]

शुण्या री म्हारे हरि आवागा आज ।
म्हैडा चढ चढ जोवा सजणी कब आवा महाराज ।
दादुर मोर पपीआ बोडया कोइड मधुरा शाज ।
उमग्या इद चहू दिश वरशा दामण छोड्या डाज ।
धरती रूप नवा नवा धर्‌या इद मिडण रे काज ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर वेग मिडचो महाराज ॥

[४६]

वस्या म्हारे णेणण मा नण्दलाड ।
मोर मुगट मकराकृत कुडड अरुण तिडक शोहाँ भाड ।
मोहण मूरत सावरा शूरत नैणा वण्या विशाड ।
अधर सुधारश मुरडी राजा उर बैजण्ता माड ।
मीरा प्रभु सता शुखदाया भगत वछड गोपाड ॥

[४७]

पग बाध घुघरया णाच्या री ।
डोग कह्या मीरा बावरी शाशू कह्या कुडनाशा री ।
विखरो प्याडो राणा भेज्या पीवा मीरा हाशा री ।
तण मण वारचा हरि चरणा मा दरसण अमरित पाश्या री ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर थारी शरणा **आब्यां री** ॥

[४८]

सावरियों रग राचा राणा सावरियो रग राचा।
ताड पखावजा मिरदग बाजा साधा आगे णाचा।
बूझ्या माणे मदण बावरी श्याम प्रीत म्हा काचा।
विखरो प्याडो राणा भेज्या आरोग्या णा जाचा।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर जणम जणम रो साचा।।

[४९]

बादड देखा झरी स्याम बादड देख्या झरी।
काडा पीडा घटचा ऊमडचा बरश्या च्यार घरी।
जित जोवा तित पाणी-पाणी प्यासा भूम हरी।
म्हारा पिया परदेसा बसता भीज्या दार खरी।
मीरा रे प्रभु हरि अविणासी करश्यो प्रीत खरी।।

[५०]

बरसा री बदरिया शावण री शावण री मण भावण री।
शावण मा उमग्यो म्हारो मण री भणक शुण्या हरि आवण री।
उमड घुमड घण मेघा आया दामण घण झर डावण री।
बीजा बूदा मेहा आया बरशा शीतड पवण शुहावण री।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर बेडा मगड गावण री।।

[५१]

विध विधणा री ण्यारा।
दीरघ नैंण मिरघ कू देखा वण वण फिरता मारा।
उजडो बरण बागडा पावा कोयड बरणा कारा।
नदया नदया निरमड धारा समुद करया जड खारा।
मूरख जण सिंगासण राजा पडित फिरता द्वारा।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर राणा भगत सघारा।।

[५२]

बादडा रे थें जड भरा आज्यो।
झर झर बूदा बरशा आडी कोयड सबद शुणाज्यो।
गाज्या बाज्या पवण मधुरयो अबर बदरा छाज्यो।
शेज सवारचा पिय घर आश्या शखया मगड गाश्यो।
मीरा रे प्रभु हरि अविणासी भाग भडया जिण पाश्यो।।

[५३]

पिया विण सूणो छे म्हारा देस।
एसा णा काई पीव मिडावा तण मण वारा असेस।
थारे कारण वण वण डोडया ड्या जोगण[1] रो भेस।
बीता चुमसा मासा बीता पडर री म्हारा केस।
मीरा रे प्रभु क्वरे मिडोगा तज दया णगर णरेश।।

[५४]

करम गत टारा णा री टरा।
सतवादी हरचदा राजा डोम घर णीरा भरा।
पाच पाडु री राणी द्रपता हाड हिमाडा गरा।
जग्ग किया वड डेण इद्राशण जाया पताड परा।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर विख रू अमरित करा।।

[५५]

स्याम त्रिण दुख पावा सजणी कुण म्हा धीर बधावा।
यो सशार कुबुध रो भाडो साध शगत णा भावा।
साधा जण री निद्या ठाणा करम रा कुगत कुमावा।
साध शगत मा भूड णा जावा मूरिख जणम गुमावा।
मीरा रे प्रभु थारी सरणा जीव परम पद पावा।।

[५६]

म्हारो ओडगिया घर आज्यो जी।
तण री ताप मिट्या शुख पाश्या हिडमिड मगड गाज्यो जी।
घण री धुण शुण मोर मगण भया म्हारे आगण आज्यो जी।
चदा देख कमोदण फूडा हरख भया म्हारे छाज्यो जी।
रूम रूम म्हारो शीतड सजणी मोहण आगण आज्यो जी।
सव भगतारा कारज शाधा म्हारा परण निभाज्यो जी।
मीरा विरहण गिरधर नागर मिड दुख ददा छाज्यो जी।।

[५७]

सखि म्हारो सामरिया णे देखवा करा री।
सावरो उमरण सावरो शुमरण सावरो ध्याण धरा री।
ज्या ज्या चरण धरया धरणीधर ( )[1] निरत करा री।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर कुजा गैड़ फिरा री।।

---

1 मूल प्रति में रिक्त स्थान का कागज कीड़े खा गये हैं। समवत यहाँ 'त्या त्यां' शब्द रहे होंगे।

[५८]

म्हारो मण सावरा णाम रटचा री
सावरो णाम जपा जग प्राणी कोटचा पाप कटचा री।
जणम जणम रो खता पुराणी णामा स्याम मटचा री।
कणक कटोरा इम्रत भरचा पीवता कूण नटचा री।
मीरा रे प्रभ हरि अविणासी तण मण स्याम पटचा री॥

[५९]

म्हा गिरधर आगा नाच्या री।
णाच णाच म्हा रसिक रिझावा प्रीत पुरातण जाच्या री।
स्याम प्रीत रो बाध घूघरचा मोहण म्हारो साच्या री।
डोक डाज कुडरा मरज्यादा जग मा णेक णा राख्या री।
प्रीतम पड छण णा विसरावा मीरा हरि रग राच्या री॥

[६०]

बरजी री म्हा स्याम बिणा न रह्या।
साधा सगत हरि शुख पाश्यू जग शू दूर रह्या।
तण धण म्हारो जावा जाश्या म्हारो सीस डह्या।
मण म्हारो डाग्या गिरधारी जग रा वोड शह्या।
मीरा रे प्रभु हरि अवणासी थारो सरण गह्या॥

[६१]

माई म्हा गोविण्द गुण गाणा।
राजा रूठ्या णगरी त्यागा हरि रूठ्या कठ जाणा।
राणा भेज्या विखरो प्याडा चरणामृत पी जाणा।
काडा णाग पिटारया भेज्या शाडगराम पिछाणा।
मीरा गिरधर प्रेम बावरी सावडया वर पाणा॥

[६२]

म्हारो गोकुड रो व्रज वाशी।
व्रजडीडा डख जण शुख पावा व्रज वणता शुखराशी।
णाच्या गावा ताड वज्यावा पावा आणद हाशी।
णण्द जसोदा पुत्र री प्रगट्या प्रभू अविनाशी।
पीताम्बर कट उर वैजणता कर शोहा री वाशी।
मीरा रे प्रभ गिरधर नागर दरशण दीश्यो दाशी।

[६३]

थारो रूप देख्या अटकी ।
कुड कुटम्ब सजण सकड वार वार हटकी ।
विशर्‌या णा डगण डगा मोर मुगट णटकी ।
म्हारो मण मगण स्याम डोक कह्या भटकी ।
मीरा प्रभु सरण गह्या जाण्या घट घट की ॥

[६४]

वडे घर ताडो लागा री पुरवडा पुन जगावा री ।
झीडड्या री कामणा म्हारो डावरा कुण जावा री ।
गगा जमणा काम णा म्हारे म्हा जावा दरयावा री ।
कामदार शू काम णा म्हारे जावा म्हा दरवारा री ।
हेड्या मेड्या काम णा म्हारे म्हा मिडया शरदारा री ।
काच कथीर शू काम णा म्हारे चढश्या घण री सार्‌या री ।
सोणा रूपा शू काम णा म्हारे हीरा रो व्योपारा री ।
भाग हमारो जाग्या रे रतणा कर म्हारी शीर्‌या री ।
प्याडो अम्रत छाड्या रे कुण पीवा कडवा नीर्‌या री ।
भगत जणा प्रभु परचा पावा जावा जगता दूर्‌या री ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर मणरथ करश्या पूरया री ॥

[६५]

म्हारो मण हर डीण्या रणछोड ।
मोर मुगट शिर छत्र विराजा कुडड री छत्र ओर ।
चरण पखार्‌या रतणाकर री धारा गोतम जोर ।
धजा पताका तट तट राजा झाडर री झकझोर ।
भगत जण्या रो काज सवार्‌या म्हारा प्रभु रणछोर ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर कर गह्यो णण्द किसोर ॥

[६६]

पिया म्हारे णेणा आगा रहज्यो जी ।
णेणा आगा रहज्यो म्हाणे भूड णा जाज्यो जी ।
भो सागर म्हा वूडया चाहा, स्याम वेग सुध डीज्यो जी ।
राणा भेज्या विखरो प्याडो थे इमरत वर दीज्यो जी ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर मिड विछडण मत कीज्यो जी ॥

साजा शोड शिंगार शोणा री राखडा।
सावडया शू प्रीत ओर शू आखडा।।

[७२]

णन्द णाण्दण मण भाया बादडा णभ छाया।
इत घण उमड्या उत घण गरजा चमक्या बिज्ज डराया।
उमड घुमड घण छाया ( )[1] पवण चल्या पुरवाया।
दादर मोर पपीया बोलाँ कोयड शबद शुणाया।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर चरणा बादडा चित डाया।।

[७३]

रंग भरी रंग भरी रंग सूँ भरी री।
होली खेल्याँ स्याम संग रंग सूँ भरी री।
उडत गुडाड लाड बादडा रो रंग डाड।
पिचका उडावा रंग रंग री झरी री।
चोवा चदण अरगजा म्हा केसर णो गागर भरी री।
मीरा दासी गिरधर नागर चेरी चरण धरी री।।

[७४]

साँवडिया म्हारो छाय रह्या परदेस।
म्हारा बिछड्या फेर न मिड्या भेज्या णा एक शन्नेस।
रतण आभरण भूखण छाड्या खोर किया शर केस।
. . . . ढूंढ्यां चार्‌यां देस।
. . . . जोवण जणम अणेस।।

[७५]

. . . हरि चितवाँ म्हारी ओर।
हम चितवाँ थें चितवो णा हरि हिवडो बडो कठोर।
म्हारी आसा चितवण थाँरी ओर णा दूजा दोर।
ऊभ्या ठाढी अरज करूं छूं करताँ करताँ भोर।
मीरा रे प्रभु हरि अविणासी देस्यूं प्राण अकोर।।

---

१ मूल प्रति मे रिक्त स्थान है। कुछ शब्द छूट गये हैं। कदाचित यहाँ 'चचड' या 'सीतड' शब्द रहा होगा।

[८१]

नीदडो आवा णा शारा रात कुण विध होय प्रभात।
चमक उठा शुपणा डख सजणी शुध णा भूडया जात।
तडफा तडफा जीयरा जाया कव मिडिया दीणाणाथ।
भया वावरा सुध बुध भूडा पीव जाण्या म्हारी वात।
मीरा पीडा शोई जाणा मरण जीवण जिण हाथ॥

[८२]

थें जीम्या गिरधर लाड।
मीरा दासी अरज करया छे म्हारो लाड दयाड।
छप्पण भोग छतीशा विजण पावा जण प्रतिपाड।
राज भोग आरोग्या गिरधर सण्मुख राखा थाड।
मीरा दासी सरणा ज्याशो कीज्या वेग निहाड॥

[८३]

माई सावरे रग राची।
साज शिगार वाध पग घूघर डोक डाज तज णाची।
गया कुमत डया साधां शगत स्याम प्रीत जग शाची।
गाया गाया हरि गुण णिस दिण काड ब्याड री वाची।
स्याम विणा जग खारा लागा जगरी वाता काची।
मीरा सिरी गिरधर नट नागर भगत रसीडो जाची॥

[८४]

जग मा जीवणा थोडा कुणे लया भव भार।
मात पिता जग जणम दया री करम दया करतार।
खाया खरचा जीवण जावा काई करया उपकार।
साधा सगत हरि गुण गाश्या ओर णा म्हारी लार।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर थे वड उतरया पार॥

[८५]

सावरो णदणण्दण दीठ पडया माई।
डारया शव डोक डाज शुध बुध विशराई।
मोर चन्द्रका किरीट मुगट छव शोहाई।
केसर रो तिडक भाल लोचण [illegible]

कुंडल झडका कपोल अडका लहराई ।
मीणा तज सर वर ज्यो मकर मिलण धाई ।
नटवर प्रभु भेख धरया रूप जग डोभाई ।
गिरधर प्रभु अग अग मीरा वड जाई ॥

[८६]

अखया तरशा दरसण प्याशी ।
मग जोवा दिण बीता सजणी रैण पडया दुख राशी ।
डारा वेठ्या कोयड वोडया वोड शुण्या री गाशी ।
कडवा वोड डोक जग वोडया करश्या म्हारी हाशी ।
मीरा हरि रे हाथ विकाणी जणम जणम री दाशी ॥

[८७]

णेणा डोभा आटका शक्या णा फिर आय ।
रूम रूम णख सिख लख्या लडक लडक अकुडाय ।
म्हा ठाढी घर आपणे मोहण णिकड्या आय ।
वदण चन्द परगासता मण्द मण्द मुशकाय ।
शकड कुटम्बा वरजवा वोडया वोड वणाय ।
णेणा चचड अटक णा माण्या पर हथ गया विकाय ।
भलो कह्या काई कह्या बुरो री शव लया सीश चढाय ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर विणा पड रह्या णा जाय ॥

[८८]

माई री म्हारे णेणा वाण पडी ।
ज्या दिण णेणा स्याम निहारया विशरया णाहि घरी ।
चित्त वश्या म्हारे सावरो मोहण तण मण शुध विशरी ।
णा छावा रस रूप माधुरा छाण थक्या डगरी री ।
मीरा हरि रे हाथ विकाणी जग कुड काण सरी री ॥

[८९]

लगण म्हारी स्याम शू लागी
णेणा णिरख शुख पाय ।
साजां सिगार शुहागा सजणी प्रीतम मिडया धाय ।
वर णा वरया वापुरो जणम्या जणम णसाय ।
वरया साजण सावरो म्हारो चुडडो अमर हो जाय ।

जणम जणम रो वाण्हडो म्हारी प्रीत बुझाय।
मीरा रे प्रभु हरि अविणासी क्व रे मिडश्यो आय॥

[६०]

प्यारे दरसण दीश्यो आय थें विण रह्या णा जाय।
जड विणा कवड चद विणा रजणी थें विणा जीवण जाय।
आवुड व्याकुड रेण विहावा विरह कडेजो खाय।
दिवस णा भूख निदरा रेणा मुख शू कह्या णा जाय।
कोण सुणे काशू कंहिया री मिड पिय तपण बुझाय।
क्यू तरशावा अन्तरजामी आय मिडो दुख जाय।
मीरा दासी जणम जणम री थारो णेह लगाय॥

[६१]

छोड मत जाज्यो जी महाराज।
म्हा अवडा वड म्हारो गिरधर थें म्हारो सरताज।
म्हा गुनहीन गुणागर नागर म्हा हिवडो रो साज।
जग तारण भो भीत निवारण थें राख्या गजराज।
हारया जीवण सरण रावला कठे जावा ब्रजराज।
मीरा रे प्रभु ओर णा काई राखा अबरी डाज॥

[६२]

आजु शुण्या हरि आवा री,
आवा री मण भावा री।
हरि णा आवा गेड लखावा वाण पडया डडचावा री।
णेणा म्हारा कह्या णा माणा णीर झरया निश जावा री।
काई करया कछ णा वस म्हारो णा म्हारे पख उडावा री।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर वाट जोहा थे आवा री॥

[६३]

स्याम मिडण रे काज सखि उर आरत जागी।
तडफ तडफ कड णा पडा विरहाणड डागी।
निशदिण पथ णिहारा पिव रो पडक णा पड भर डागी।
पीव पीव म्हा रटा रेण दिण डोक लाज कुड त्यागी।
विरह भुवगम डश्या कडेज्या डहर हडाहड जागी।
मीरा व्याकुड अत अकुडाणी स्याम उमगा डागी।

[६४]

मुरडिया वाजा जमणा तीर ।
मुरडी म्हारो मण हर डीन्हो चित्त धरा णा धीर ।
श्याम कण्हैया स्याम कमरया स्याम जमण रो नीर ।
धुण मुरडी शुण शुध बुध विशरा जरजर म्हारो शरीर ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर वेग हरया म्हा पीर ॥

[६५]

म्हारो सावरो व्रजवाशी ।
जग शुहाग मिथ्या री सजणी होवा हो मट ज्याशी ।
वरन करया अविनाशी म्हारो काड ब्याड णा खाशी ।
म्हारो प्रीतम हिरदा वशता दरस लह्या शुखराशी ।
मीरा रे प्रभु हरि अविनाशी सरण गह्या थे दाशी ॥

[६६]

री म्हा बैठ्या जागा जगत शब शोवा ।
विरहण बैठ्या रग महड मा णेणा लडया पोवा ।
तारा गणता रेण विहावा शुष घडया री जोवा ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर मिड विछडया णा होवा ॥

[६७]

सजणी कब मिडश्या पिव म्हारा ।
चरण कवड गिरधर शुख देश्या राख्या णेणा णेरां ।
णिरख्या म्हारो चाव घणेरो मुखडा देख्या थारा ।
ब्याकुड प्राण धरया णा धीरज वेग हरया म्हा पीरा ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर थें विण तपण घणेरा ॥

[६८]

सावरे री म्हा था रग राती ।
स्याम सणेशो म्हा णा दीश्या जीवण जोत बुझाती ।
ऊचा चढ चढ पथ निहारया मग जोवा दिन राती ।
थें देख्या विण पड णा पडता फाट्या री म्हा छाती ।
मीरा रे प्रभु दरशण दीज्यो विरह विथा विरखाती ॥

[९९]

म्हा लागा लगण सिरि चरणा री ।
दरस विणा म्हाणे कछ णा भावा जग माया या सुपणारी ।
भो सागर भय जग कुढ वण्धण डार दया हरि चरणारी ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर आस गह्या थे सरणारी ॥

[१००]

गिरधर म्हारो प्यारो ।
जणम लया मथुरा णगरी मा विणरावण पग धारो ।
गत दीश्या पूतणा कटभा केता अधम उधारो ।
जमणा तीरा धेण चरावा ओढा कामर कारो ।
श्यामड वदण कमड दड लोचणा पीतावर पटवारो ।
मोर मुगट मकराकृत कुडड कर मा मुरडी धारो ।
जड बूडता राख्या व्रजवासी छागण गिरवर धारो ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर थे म्हा प्राण अधारो ॥

[१०१]

माई म्हा गोविन्द गुन गाश्या ।
चरणाम्रत रो णेम शकारे णित उठ दरसण जाश्याँ ।
हरि मदिर मा निरत करावा घूघरया घमकाश्या ।
श्याम नाम रा झाझ चडाश्या भोसागर तर जाश्या ।
यो ससार वीड रो काटो गेड प्रीत अटकाश्यां ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर गुन गावा शुख पाश्या ॥

[१०२]

होडी पिया विण लागा री खारी ।
शूणो गाव देस शव सूणो शूणी सेज अटारी ।
शूणी विरहण पिव विण डोडा तज गया पीव पियारी ।
बिरहा दुख मारी ॥
देस विदेशा सणेशा णा जावा म्हारो अणेशा भारी ।
गणता गणता घिश गया रेखा आगरिया री शारी ।
आया णा री मुरारी ॥

बाज्या झाझ मिरदग मुरडिया बाज्या कर इकतारी।
आया वसत पिया घर णारी म्हारी पीडा भारी।
स्याम मण क्या री विसारी ॥
ठाढ़ी अरज करा गिरधारी राख्या डाज हमारी।
मीरा रे प्रभु मिडश्यो माधो जणम जणम री क्वारी।
मणे लगी दरसण तारी ॥

[१०३]

णेणा वणज वसावा री म्हारा सावरा आवा।
णेणा म्हारा सावरा राज्या डरता पडक णा डावा।
म्हारा हिरदा वश्या मुरारी पड पड दरशण पावा।
स्याम मिलण सिंगार शजावा शुख री सेज विछावा।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर बार वार वड जावा ॥

•

परिशिष्ट : क

शब्दार्थ और टिप्पणियाँ

सूचनाएँ —१ अंक-क्रमांक पद-संख्या के द्योतक है।

२ सभी शब्दार्थ भावसापेक्ष है।

म्हांरा = मेरे; गोपाड = गोपाल, णा = न, कूया = कोई; कोया = कोई, साधां = साधु, सकड = सकल, सब, डोक = लोक, जूयां = देखे, भाया = भाई छाड्यां = छोडे, बधा = बन्धु,बान्धव, सगा सूया = सगे सम्बन्धी, खूयां = खोई राजी = सहमत, ह्यां = हुई; रूया = रोई, असवा जड = अश्रुजल, वेड = वेल बूयां = बोई, दध = दधि, दही, मथ = मथन कर, लया = लिया, डार दया = छोड दिया, छूया = छाछ, मही, विषरो = जहर का, प्याडा = प्याला, मगण हूया = मग्न हुई, अब त = अब तो, फेड पडया = फैल गई, जाण्या = जानते हैं, कूया = कोई, लगण लग्या = लगन लगी, हूयां = हो।

मण = मन, कवड = कमल, अवणासी = अविनाशी, अविनश्वर, ईश्वर, कृष्ण, जैताई = जितना भी, दीसा = दिखाई देता है, धरण = धरती, गगण = आकाश, मा = मे, तेताई = वह सब, उठ्ठ जासी = उठ जायगा, नाश हो जायेगा, बरता = व्रत, ग्याणकथन्ला = ज्ञान की चर्चा, लया = ली, करवत कासी = काशी जाकर करवत से अपने आपको काटकर प्राण त्याग करना, देही रो = शरीर का, माटी = मिट्टी, मिड जासी = मिल जायगी, चेहर रां बाजी = चिडियो का बाजार या मेला, सांझ पड्‌या = सध्या होते ही, भयां = हुआ, लया सण्यासो = सन्यास लिया, होयां = होकर, जुगत णा जाणा = (मुक्ति पाने की) युक्ति न जानो, फासी = फन्दा, अबडा = अबला, कर जोड्‌या = हाथ जोड कर, गासो = फदा।

म्हा = मैं, रो = को, के, बदण = चेहरा, कमड दड लोचण = कमल दल के समान लोचन, बांकां = बांकी, नैणासमाणी = नैत्रो, में बस गई, जमणा = यमुना, धेनु चरावां = गायें चराते हैं, मीट्ठाबाणी = मधुर वाणी या स्वर से, तण मण धण = तन, मन, धन, वारां = न्योछावर करना, कवड = कमल, बिलमाणी = ध्यान मे लग, गई रम गई।

१. परनाम = प्रणाम, मुगट = मुकुट, माथां = सिर (ललाट), तिडक = तिलक, कुंडड = कुण्डल, अडकां = अलकें, सिर के बालो की लटें, कारी = काली, अधर = ओष्ठ, ओठ, रिझावां = आकर्षित करते हैं, छब = छवि, मोल्यो

देख्यां = देख, मोह्यां = मोहित हो गई, मोहण = मोहन, गिरधरधारी = गोवर्द्धन पर्वत को धारण करने वाले ।

५ निपट = बिल्कुल, बंकट = बाँकी, णिपट = निपट, पियूख = अमृत, णा मटके = स्थिर दृष्टि से टकटकी लगाकर देखते रहे, अपलक दृष्टि, वारिज = कमल, भवां = भौंहें, अळक = अलकें, टेढ्यां = टेढ़ी, कट = कटि, कमर, कर = हाथ, लर = लड़ी, नट = अभिनय करने वाला (यहाँ नटनागर = कृष्ण) ।

६ निकड = निकल, बिरह अनड = विरहानल, विरह की अग्नि, लागां = लगी, उर = मन; अन्तर = भीतर, व्याकुड = व्याकुल, चचड चित्त = चंचल मन, (मन, जिसकी प्रवृत्तियाँ चंचल होती हैं।), चढ्यां = चलता, चाडां = चलाने पर भी, म्हारो = मेरा, पीर = पीड़ा, कोई = कोई भी नैण = नेत्र बिछुड्यां = बिछुड़ने पर, बिण = बिना, धीर = धैर्य, धीरज ।

७ चाडा = चलो, मण = मन, वा = उस, जमणा कां = यमुना के, तीर = तट पर, निरमड = निर्मल, स्वच्छ, पवित्र, पाणी = पानी, जल, सीतड = शीतल, बड बीर = बलके बीर (बलराम के भाई) कृष्ण, पीतांबर = पीला वस्त्र, झड़क्यां = झलकते या जगमगाते हैं, हीर = हीरे, क्रीड्यां = क्रीडा करते, खेलते हैं, बलबीर = भाई बलराम ।

८ आली = हे सखी !, म्हांणे = मुझे, चोखां = अच्छा, तुडसी = तुलसी, ठाकर पूजां = ठाकुरजी की पूजा, कां = का, निरमड = निर्मल, नीर = जल, बह्या = बहता है, भोजण = भोजन, दह्यां = दही, रतण सिंघासण = रत्नसिंहासन, कुंजण कुंजण = कुंज कुंज मे, फिर्यां = फिरें, घूमे, सबद = शब्द, ध्वनि, सुण्यां = सुनें, नर फीकां = मनुष्य नीरस है, मानव जीवन सारहीन है, व्यर्थ है। जाणा = जानती हूँ, थारी = तेरी, प्रेम भगति = प्रेमाभक्ति, री = का, पैंडा = रास्ता, मार्ग, ण = न, रीत = रीति, पद्धति, इमरत = अमृत, पाइ = प्याइ, पिलाकर, बिखां = विष, जहर, दयू = क्यो, दीज्यां = देते हो, कूण = किस, कौन, री = की, अपणो = अपने, जण = जन, मीत = मित्र ।

१० रगराती = (प्रेम के) रग मे अनुरक्त, पचरग चोडा = पाँच रगो का चोला, कपड़ा, पहेर्‌या = पहनकर, झरमट खेलण = घनी झाडियो से बने झुरमुट मे खेलने के लिए, वां = उस, मा = में, देख्यां = देखे, तण मण राती = शरीर और मन से अनुरक्त होकर, जिणरो = जिनका, बस्यां = बसा है, डिखडिख = लिख लिखकर, पाती = पत्र, हीयडे = हृदय मे, बसता = रहता है, निवास करता है, मगजोवां = रास्ता देखती हूँ, प्रतीक्षा करती हूँ, दिण राती = दिन रात ।

११ थे = तुम, कठ्यां = कहाँ, नेहडा = नेह, प्रीति, छोड्या = छोड दी, बिसवास = विश्वास, सगाती = सगी, साथी, बाती = बत्ती, लौ, जड़ाय = जलाकर, समद = समुद्र, मा = मे, छो = हो, नेहरी = स्नेह की, प्रेम की, चढाय = चढ़ाकर ।

१२ मोर = और, अन्य, दूसरा, आसिरो = आसरा, सहारा, थे बिणा = तेरे बिना, तुम्हारे सिवाय, तीणू लोक मझार = भू, आकाश और पाताल तीनो लोको मे, सुहावां = अच्छा लगता, रावली = तुम्हारी, डीज्यो = लीजो, लेना, णेक = जरा, णिहार = देख ।

१३ डियां = लिया, मोड = मोल, थे कह्या = तुम कहती हो, छाणे = सकरे मे, म्हा का = मुझको, चोड्डे = चौडे म, डिया = लिया, बजता ढोड = ढोल बजाकर, मुहघो = मँहगा, सुस्तो = सस्ता, तराजां तोड = तराजू पर तोलकर, वारां = न्योछावर करना, अमोड्क = अनमोल, मोड = मूल्य, मोल, दीज्या = दो, देना, पुरब जणम = पूर्व जन्म, कोड = कौल, करार या वायदा, वचन ।

१४ परसि = स्पर्शकर, छू, रे = के, सुभग = अच्छा सुन्दर, सीतड = शीतल, कवड-कोमड = कमल के समान कोमल, जगत ज्वाडा = ससार की ज्वाला, त्रिविध ताप, दैहिक, दैविक, भौतिक व्याधियाँ, कष्ट, हरण = हरने वाले, इण = इन, परस्यां = स्पर्श किया; धरण = धरने वाले, अटड = अटल, स्थिर, करस्या = करते हैं, असरण = बेसहारा, सरण = शरण, भेंटया = मिलता है, णख शिखा = नख शिख, सिरि = श्री, भरण = भरने वाले, कालियां णाथ्या = कालीनाग को नाथा था, डीडा = लीला, धारथा = धारण किया, गरब = गव, मघवा = इन्द्र, अगम = अगम्य (भवसागर), तारण = पार करने के लिये, तरण = तरणि, नाव, नौका ।

१५ म्हाडी री = हे सखी !, बाण पडी = आदत पड गई, मूरत = मूर्ति, हिवडा = हृदय म, अणी = बाण की नोक (की तरह), ठाढ़ी = खडी, भवण = भवन, मूर = मूल, आधार, जडी = जडी बूटी, औषधि या उपचार का साधन, बिकाणी = बिक गई ।

१६ जोवा = देखती हूँ, थारी = तेरी, बाट = राह, णेक = नेक, जरा भी, बिल्कुल, णा = नहीं, भावां = अच्छा लगता, नेणा = नेत्र, खुडा = खुले, कपाट = द्वार, सुख = सुख, घणो = अधिक, उचाट = उचटा उचटा सा, बावरी = बावली, णिरबाट = बेसहारा, मार्गहीन स्थल पर, जहाँ से यह भी पता न चल सके कि यदि जायें भी तो कहाँ जाएँ ?

१७ जावां = जाता, वारथा = न्योछावर करना, आसा = आशा ।

१८ वारथा = न्योछावर करना ड भावां = लुभाऊँगी, फीका = रसहीन, डागा = लागा, अरजां करस्यू = प्रार्थना करती हूँ, रेण = रात्रि, मिडयां बिण = मिल बिना, तरश = तरस, जीया = जिया ।

१९ म्हारां = मेरा, घायड = घायल, गत = गति, दशा, जाण्या = जानता है, हिवडो = हृदय, अगण = अग्नि संजोय = सजाकर रखी है [illegible]

बाहु अणन्त=अनन्त भुजाएँ, ब्रज वणता=ब्रज वनिताओ, ब्रजागनाओ, रो=का, कत=पति।

३३ रावडो=तुम्हारा, बिडद=विरद, म्हाणे=मुझे, णूडो=प्रिय, डाता=लगता है, पीडत=दुखी होता है, शगां=सगे, शणेहा=स्नेही जन, काई=कोई, वेरया=वैरी, शत्रु, सकड=सकल, सब, जहाण=ससार, ग्राह=मगर, गह्या=पकडा, गजराज=गजेन्द्र, उबार्‌यां=उबारा, अछत=अक्षय, कर्‌यां=कर दिया, बरदाण=वरदान, अरजा=प्रार्थना, आण=अन्य, दूसरा।

३४ म्हा=मैंने, सुण्या=सुना, उधारण=उद्धार करने वाले, तारण=तारने वाले, बूडता=डूबते हुए, अरज=अर्ज, प्रार्थना, सुण=सुन, धायां=दौडे, भगता=भक्तो का, निवारण=दूर करने वाले, द्रुपद सुता=द्रुपद की पुत्री, द्रौपदी, रो=का, दुसासण मद मारण=दु शासन का गर्व चूर्ण करने वाले, प्रहड्डाद=प्रह्लाद, परतग्या=प्रतिज्ञा, हरणाकुस=हिरण्यकश्य, बिदारण=विदीर्ण करन वाले, रिख पतणीं=(गौतम) ऋषि की पत्नी, अहिल्या, बिडारण=नष्ट करने वाले, अबेर=देरी विलम्ब, कुण कारण=किस कारण।

३५ म्हाणे=मुझे, चाकर=सेवक,दास, डाडा=लाला, रहश्यू=रहूँगी तो, डगाश्यू=लगाऊँगी, णित=नित्य दरशण=दर्शन, पाश्यू=पाऊँगी, री=की, गैड=गैल, गली,मा=मे डीडा=लीला, गाश्यू=गाऊँगी, चाकरी=वेतन, शुमरण=स्मरण, खरचो=दैनदिन खर्च के लिए निश्चित धनराशि, जागीरा=जागीर, तरशी=तरसती रही हूँ, शोहा=शोभित है, गड=गले मे, बॅजणतामडो=वैजयन्ती माला, घेण=धेनु, गाय, मुरडी वाडो=मुरलीवाला, नवा=नये, नूतन, लगाश्यू=लगाऊँगी, बीचां-बीचा=बीच-बीच म, बारी=क्यारी, पहण=पहन, कुशुबी=केसरिया रग की, लाल, शारी=साडी, तीरा=तट पर, हिवडो=हृदय,मन, घणो=खूब, बहुत, अधीरां=अधीर है, व्याकुल है।

३६ माई=हे माँ, हे सखी, शुपणा मा=स्वप्न म, परण्या=परिणीता, विवाहिता बनाया,कोटा=कोटि, करोड, जणा=बराती लोग, सिरी=श्री, बध्या=बँधा, अचड=अचल, स्थिर, चिरतन, पुरब जणम=पूर्व जन्म।

३७ थे=तू, बरजा=रोक, साधा=साधु, दरसण जावा=दर्शन के लिए जाती हूँ, हिरदां=हृदय म, णा=न, सोवां=सोते हैं, शुख नींदडी=सुख की नींद मे, रैण=रात्रि, ग्याण णशां=ज्ञान, विवेक नष्ट हो गया है जिसका, ऐसा वह, ज्याकू=जिसे, बस्यां=वास करता है, चौमाश्या=चातुर्मास, बरसात, री=की, णीर=नीर, जल, अमरित=अमृत, झरया=झरता है, म्हारो=मेरी, सुरगा=सुन्दर रग वाला, सामरो=साँवलिया, कृष्ण, निरखण=देखने के लिए, आपणी कर ड्यावा=अपना लो, अपनी बना लो।

पपैया=पपीहा, म्हारो=मेरा, कबरो=कब्र का, चिताया=चितारयो, याद किया, सोवू छी=सोई थी, अपणे=अपने, भवण मा=महल मे, दाध्या=जले (पर), लूण=लवण, नमक, हिवडे=हृदय पर, करवत=आरा, सारया=चलाया, चरणा=चरणा म, धारयां=लगाया ।

६ म्हारी=मेरी, णींद=नीद, निद्रा, णशाणी=नष्ट हो गई है, शब=सब, सारी, रैण=रात बिहाणी=व्यतीत हो गई, मिड=मिल, सीख=शिक्षा, सलाह, मण=मन, माणी=मानी, कड=कल, चैन, रोस=क्रोध, ठाणी=ठानना, निश्चय करना, खीण=क्षीण, कृश, कमजोर, अन्तर बेदण=हृदय की वेदना, पीड=पीडा, ज्यू=ज्यो, घण=घन, बादल; =कू को, रटा=रट लगाता है, मछरी=मछली, व्याकुड=व्याकुल बिसराणी=भूल गई ।

१० जिवा=जिऊँ माय=माँ, बिणा=बिना, बौरा=बावली, मण=मन, काठ=काष्ठ, लकडी, घुण=घुन, मूड=मूल, जडी, ओखद=औषधि, दवा, णा डग्या=नही लगती, प्रभाव नही करती, मीण=मीन, मछली, जड बिछड्या=जल से बिछुडने पर, णा=नही, जीवा=जीवित रहती, ज्याय=जाती है, बण=वन म डोलां=डोलती हूँ, भटकती हूँ, मुरडिया धुण पाय=मुरली ध्वनि सुनकर, डाड=लाल, बेग=शीघ्र, मिडस्यो=मिलो ।

४१ देखा माई=हे माँ ! देखा तुमने, मण=मन, काठ=कठोर, आवण=आने के लिए, अजा=आज तक, णा=नही, कर म्हाणे कोड़ गया=मुझसे कौल कर गये, मुझे वचन (आश्वासन) देकर गये, बिसरया=भूल गई, कांई=क्या, कोड=कौन, करार, वायदा, विरुद=बडप्पन, थे=तुम, काई=क्या, बिशरयां=भूल गये, फटां हिया=हृदय फटा जाता है ।

४२. थे बिण=तुम्हारे बिना, डे=ले, कुडड=कुण्डल, री=की, प्यारी=न्यारी, मा=मे, द्रुपद सुता=द्रौपदी, री=की, डाज=लाज, लज्जा, कवड=कमल, बडहारी=बलिहारी ।

४३ जणम-जणम रो शाथी=जन्म-जन्म का साथी, थाणे=तुझे, बिशरयां=भूलती, थां=तुझे, कड=चैन, णा=नही, कडप-कडप=कलप-कलप कर, अखयां=आँखें, रातो=लाल हो गई हैं, कुड रा=कुल के, ण्यांतो=नाते रिश्तेदार, पड पड=पल-पल, थारो=तेरा, णिरख णिरख=देख-देखकर, चितरांतो=चित्त रत है, लीन है ।

४४ जोशीडा णे=ज्योतिषी को, लाख बधायां=लाख बार (अनेकानेक बार) बधाई है, आश्यां=आएँगे, जीव सह्यां सुख धाम=जीव को सुख का आगार मिला, आश्रय मिला, पांच शख्यां=पाँचो सखियाँ, पचेन्द्रियाँ, ठामा ठाम=जगह जगह पर, सर्वत्र, बिशर=भूल, निरखां=देखें, सुफड मणोरथ काम=मेरा मनोरथ, मेरी कामना सुफल हुई, पूर्ण हुई, भवण=भवन मे, पधारयां=पधारे, आये ।

४५ शुण्यारी=सुना है री, आवांगा=आएँगे, म्हेंड़ा=महल के ऊपर, जोवा=देखना, पपीआ=पपीहा, बोडया=बोलते हैं, कोइड=कोकिला, मधुरा=मधुर, मीठे, साज=स्वर मे, आवाज मे, उमग्या इन्द्र=उमड-घुमडकर आये हुए बादल, चहूँ दिस=चारो ओर, बरशा=बरसते हैं, दामण=दामिनी, बिजली, छोड्यां लाज=लज्जा छोड अनावृत हो (बादलो का आवरण हटाकर) चमक रही है, अपनी छटा दिखा रही है, नवां नवां=नय नये, धर्यां=धारण कर रही है, मिडण=मिलन, रे काज=के लिए, बेग=जल्दी, मिड्यो=मिलो ।

४६. बस्या=बसो, णेणण मां=नयना म मण्दलाड=कृष्ण, मुगट=मुकुट, कुंडड=कुण्डल, अरुण=लाल, तिडक=तिलक, शोहां भाड=ललाट पर शोभायमान है, मोहण=मनमोहिनी, नेणां=नेत्र, बिशाड=विशाल, दीर्घ, सुधारस=अमृत (के समान) रस देन वाली, मुरडो=मुरली, राजा=राजती है, सुशोभित है, बंजण्ता माड=वैजयन्ती माला, सता=सन्तो को, शुखदायां=सुखदाई, भगत बछड़=भक्तवत्सल, गोपाड=गोपाल ।

४७ घुघर्यां=घुंघरू, डोग=लोग, कह्या=कहते हैं, शाशू=सास, कह्या=कहती है, कुडनाशां=कुल का नाश कर दिया, कुलनाशिनी, बिखरो=विष का, प्याडो=प्याला, पीवां=पीते हुए, हाशा=हँसी, वारय्यां=न्योछावर करती है, पाश्यां=प्राशन करती है, पीती है, थारी=तेरी माश्यां=आई हूँ ।

४८. रग राचा=रग मे रग गई, ताड=ताल, पखावजां=पखावज, मिरदग=मृदग, बाजा=बज रहे हैं, साधां=साधुओ, णाचा=नाचती हूँ, बूझ्यां=पूछना, समझना, मदण बावरो=कामो मत्त, काचा=कच्ची, अपरिपक्व, बिखरो=विष का, प्याड़ो=प्याला, आरोग्यां=पी गई, णा जाचा=बिना जाँचे-परखे, साचा=सच्चा ।

४९. बादड=बादल, झरी=झड, लगातार वर्षा, काडा पीडा=काली-पीली, घटयां=घटायें, ऊमड्यां=उमडी हैं, बरश्यां=बरसी, ध्यार=धार, घरी=घडी, जित=जिधर, जोवा=देखती हूँ, तित=उधर, प्यासा भूम=प्यासी धरती, दार=द्वार, खरी=खडी, करस्यो=कर देना, खरी=सच्ची ।

५० बरसा=बरसती है, शावण=श्रावण, सावन, उमग्यो=उमड आया है, मण=मन, भणक=भनक, शुण्या=सुनती हूँ, घण मेघा=घने मेघ, दामण=दामिनी, बिजली, झर=झडी, डावण=लाने वाली है, बीजा=बिजली, मेहा=मेह, बादल, बरशा=बरसते हैं, शुहावण=सुहावनी लगती है, वेडा मगड गावण री=मगलगान की वेला है ।

५१ बिध=विधि विधान, बिधणा=विधाता, री=की, ण्यारा=न्यारा, निराला, दीरघ=दीर्घ, बडे, मिरघ=मृग, बण-बण=वन वन, फिरता मारा=मारे-मारे फिरते हैं, उजडो=शुभ्र, श्वेत, बरण=वर्ण, रग, बागडां=बगले,

कोयड=कोकिला, कारा=कानी, नदया नदया=नदी नदी मे, निरमट=
निर्मल, स्वच्छ, समुन्द=समुद्र, करया=किया, जड=जल, खारा=खारा
नमकीन, सिंघासण राजा=सिंहासन पर सुशोभित है, फिरता द्वारा=दर-द
मारे-मारे फिरते है, सघारा=सहार किया, मारा ।

५२. बादडा रे=हे बादल, थे=तू, जड=जल, बरशा=बरसता है, आडी=आली
सखी, कोयड=कोयल, सबद शुणाज्यो=ध्वनि (कुहुक) सुनाना, गाज्य
बाज्या=गाजा-बाजा करना, शोर-ध्वनि करना, अबर=आकाश, बदरा=
बादल, छाज्यो=छा जाना, शेज=सेज, शय्या, सवारथा=सजाती हूँ, आश्या=
आयेंगे, शखया=सखियाँ, सहेलियाँ, मगड गाश्यो=मगलगान गाएँगी, भाग
भड्या=भले भाग्य से, सद्भाग्य से, जिण=जिन्होंने, पाश्यो=पाया ।

५३ सूणो=सूनो, शून्य, निर्जन, छे=है, काई=कोई, पीव मिडावा=प्रियतम
मिला दे, वारा=न्योछावर करना, असेस=अशप, सम्पूण, थारे कारण-
तेरे कारण, तेरे लिए, बण-बण डोड्या=जगल-जगल भटकती हूँ, ड्या=
भेस=वप, चुमर्सा=चातुर्मास, बरसात, मासा=महीनो, बीता=बीते, पडर
श्वेत, सफेद, केस=वश, बाल, मिडोगा=मिलोगे, तज द्या=त्याग दि
णगर=नगर, णरेश=नरेश, राजा ।

५४. करम गत=कम की गति, भाग्य का लख, टारा=टालने स, णा=नह
सतवादी=सत्यवादी, हरचदा=हरिश्चन्द्र, डोम घर णीरा भरा=डोम के
पानी भरते थे, चाकरी करत थे, पाडु=पाण्डव, द्रपता=द्रोपदी, हाड=अस्थि
हिमाडा गरा=हिमालय म गली, जग=यज्ञ, बड=राजा बलि, डेण=लन
लिए, इद्राशण=इन्द्र का आसन, इद्र पद, जाया पताड परा=पाताल मे जा
पडा, बिख रू=विप से, अमरित करां=अमृत कर देते हैं ।

५५ कुण=कौन, म्हा=मुझे, ससार=ससार, कुबुधरो भाडो=दुर्बुद्धि का भा
वतन, जिसम दुर्विचार भरे हैं, शगत=सगति, साधा=साधु, निद्या ठाणा
निंदा करते हैं, कुगत=दुर्गति, कुमावां=कमाते हैं, अर्जित करते हैं, भूड
जावां=भूलकर भी (कदापि) नही जाते, गुमावा=गमाते हैं, थारो=ते
परम पद पावां=परम पद, मोक्ष पाता है ।

५६. म्हारो=मेरा; ओडगिया=अलग रह कर, दूर रहकर प्रवास पर गये
प्रवासी प्रिय, तणरो=शरीर को, पाश्यां=पाऊँ, हिड मिड=हिल मिल
मगड=मगन, घणरी घुण=बादलो की ध्वनि, मेघ गर्जन, शुण=सुन, मगण
मगन, आनद-विभोर, कमोदण=कुमुदिनी, फूडा=फूली हैं, हरख=हर्ष,
रूम=रोम रोम, भगतां रा=भक्तों के, कारज शाधां=कार्य सिद्ध करते
परण=प्रण, प्रतिज्ञा, मिड=मित्र, दुख ददा=दुःख-द्वन्द्व, छाज्यो=छा जा
नष्ट कर देना, मिटा देना ।

५७ णे=को, शुमरण=स्मरण, धरा=धारण करती हूँ; ज्या ज्या=जहाँ-जहाँ, धरणीधर=धरती को धारण करने वाले, निरत=नृत्य, कुंजा गैड=कुंज-गलियो मे, फिरां=फिरती हूँ ।

५८ मण=मन, णाम=नाम, रटघां=रट लगाता है, जपा=जपो, कोटघां=करोडो, कटघां=कट जाते हैं, खतां=(पाप कर्मों के) लेख, णामां=नाम से, मटघां=मिट जाते हैं, कणक कटोरां=स्वर्ण के कटोरे मे, इम्रत=अमृत, कूण=कौन, नटघा=नटना, मना करना, इकार करना, तण मण स्याम पटघा=तन मन दोनो एकात्मभाव से कृष्ण से मिल गये हैं ।

५६ णाच=नाच, म्हा=मैं, पुरातण=प्राचीन, जाच्या=परीक्षा करती हूँ, रो=का, घुगरघा=घुंघरू, साच्या=सच्चा डोक डाज=लोक लाज, कुड री मरज्यादां=कुल की मर्यादा मा=मे, णेक=नेक,जरा सी भी, पड छण=पल-क्षण, हरि रग राच्या=भगवद् प्रेम, हरि भक्ति के रग मे रग जाऊँगी ।

६० बरजी=रोकने पर, मना करने पर, म्हा=मैं, साधा सगत=साधुओ की सगति म, पास्यूँ=पाऊँगी, शू=से, जावा जास्या=जाता है तो जाए, सीस बह्यां=शिरच्छेद हो तो हो, डाग्या=लगा है जग रा बोड=दुनिया के लोगो के बोल, लोक निंदा, शह्या=सहती हूँ, गह्या=ग्रहण की, ली ।

६१ म्हा=मैं, रूठघा=रूठे तो, णगरी=नगर, कठ=कहाँ, बिखरो=विप का, काडा णाग=काला नाग, पिटारघा=पिटारी मे, शाडगराम=सालिग्राम, पिछाणा=पहचाना, बर=वर, पति ।

६२. गोकुड रो=गोकुल का, ब्रजडीड़ा=ब्रज की लीलाएँ, डख=लख, देख, ब्रज बणता=ब्रज वनिता, गोपियाँ, ताड=ताल, आणद=आनन्द, हाशी=हसी, प्रसन्नता, पुन्न=पुण्य, कट=कटि, कमर, बेंजणतां=वैजयन्ती माला, कर शोहारी बाशी=हाथ म मुरली शोभायमान है, बीस्यो=देना ।

६३ थारो=तेरा, कुड=कुल, सजण=स्वजन, आत्मीय जन, सकड=सबने, हटकी=रोका, मना किया, रण=नही, डगण डगां=लगन लगी, णट=नट, मगए=मग्न, तल्लीन, डोक=लोग, जाण्यां=जानते हैं, घट घट की=प्रत्येक शरीर धारी के मन की (बात) ।

६४ बडे घर=मोक्ष, मुक्ति, ताडो लागा=ताला लगाएँ, स्वामित्व का अधिकार प्राप्त करें, ध्यान करें, पुरबडा=पूर्व जन्म के, पुन्न=पुण्य, जगावां=जगाएँ, जागृत करें,झीडड्यां री=भील की, कामणा=कामना, इच्छा, डाबरां=डबरा, गदे पानी से भरा हुआ गड्ढा, कुण=कौन; जावा=जायेगा, जमणा=यमुना, काम णा म्हारे=मेरा कोई काम (प्रयोजन) नही है, म्हा=मैं, दरयावा=समुद्र, कामदार=प्रबधक, अधिकारी, शू=से, जावा=जाती हूँ, दरबारां=दरबार मे (स्वय मालिक के पास), हेडघा मेडघां=हिलने मिलनेवाले,

मिड्यां=मिलती हूँ, शरदारा=सरदार, नेता से, काच=शीशा; कथीर=रांगा, हीरां रो=हीरो का, रतणाकर म्हारी शीरघा=रत्नाकर (समुद्र) से मेरा मेल हो गया है, प्याडो=प्याला, कुण=कौन, कडवा=कड़वा, नीरघा=जल, परचा पावा=साक्षात्कार, परिचय पाते हैं, जगतां=ससार से, मणरथ=मनोरथ, इच्छा, पूरघा=पूर्ण।

६५ मण=मन, हर डीण्या=हर लिया, चुरा लिया, बिराजां=विराजमान है; कुडड=कुडल, री=की, छब ओर=छबि कुछ ओर ही (न्यारी, निराली) है, पखारघा=पखारता, रतणाकर=सागर, धारा गोमत जोर=गोमती की धारा तीव्र गति से प्रवाहित हो रही है, धजा=ध्वजा, झण्डियाँ, राजा=सुशोभित हैं, झाडर=झालर, जण्या=जनो, रो=का, काज सवार्‌या=कार्य पूर्ण किये, कर गह्यो=हाथ पकडा, अपना ली।

६६ णेणा आगां=नेत्रो के समक्ष, भूड णा जाज्यो=भुला मत देना, विस्मृत मत कर देना, भोसागर=भवसागर, बूडया=डूबना, बेग=सत्वर, जल्दी, डीज्यो=लीजिए, बिखरो=विष का, प्याडो=प्याला, थें=तुम, इमरत=अमृत, मिड=मिलकर, बिछडण मत कीज्यो जी=बिछुड मत जाना जी।

६७ क काईं=क्या, म्हारो=मेरा, पुरबलां=पूर्व जन्म के, पिछले जन्म के, पुन्न=पुण्य, खूट्यां=समाप्त हो गये, माणशा=मनुष्य का, पड पडा=पल पल, जात=णा कछु बार=जाने मे कुछ दिन (समय) नहीं लगता, बिरछ=वृक्ष, पात=पत्ता, णा=नहीं, डार=डाली, ओखी=गहरी, डाड=लाल, तरण=तरणि, नाव, तारण=तारने वाले, पार उतारने वाले, करश्यो=करना।

६७ ख पूणो=पूर्णिमा, जणमिया=पैदा हुई, ग्याण चोसर=ज्ञान की चौपड, मडी=बिछी हुई है, चौहटे=चौरास्ते पर, खेडतां=खेलता है, री=की, रची बाजी=बाजी लगी है ग्याणवन्ता=ज्ञानी जन, चालतां उच्चार=चलते-चलते पुकार-पुकार कर कह रहे हैं, जीवणां दिण च्यार=जीवन चार दिनों का (थोडे समय के लिए) है।

६८ निभायां=निबाहो, निर्वाह करो डाज=लज्जा, मर्यादा, असरण-सरण=अशरण को शरण, आश्रय, प्रश्रय देने वाले, पाज=पैज,प्रण, प्रतिज्ञा, अधारां=आधार, थें बिण=तेरे बिना, घणो=अधिक, अकाज=दुष्कार्य, दुरवस्था, भीर=सकट, दीयां मोच्छ निवाज=मोक्ष प्रदान किया।

६९ थे=तुम, हर्‌यां=हरण करो, हरो, जण=भक्त, भीर=सकट, द्रोपता री=द्रौपदी की, डाज=लज्जा, चीर=वस्त्र, णरहरि=नृसिंह, बूडतां=डूबते हुए, गजराज=गजेंद्र, कटयां कुजर पीर=गजेंद्र का दुःख, उसकी व्यथा नष्ट हो गई मिट गई, हरो=हरो, म्हारी=मेरी।

७० होडी=होली, बिण=बिना, म्हाणे=मुझे, आंगणा=आँगन, सुहावां=सुहाता, हेडी=हेरी (सखि), शजावां=शोभा बढा रहे हैं; सूनी=सूनो,

सेजा=शैय्या, सेज; ब्याड बुझावां=सर्प जैसी लगती है, रेण=रैन, रात, मग जोवा=राह देखती हूँ, निश दिण=निसि दिन, क्याशूं=किससे, मण रो=मन की, बिथा बतावां=व्यथा बताएँ, हिवडो=हृदय, अकुड़ावां=है, दीख्या णा=नहीं दीखता; सणेहो=स्नेही प्रिय, सणेशा=सन्देश; बिरयां=वक्त, समय, हांशी=होगी; लगावां=लगाऊँगी।

७१ चाडा=चलें, अगम वा देस=उस अगम्य देश में, जहाँ आत्मा परमात्मा हो जाता है, परम पद, मोक्ष, काड=काल, मृत्यु, डरा=भयभीत होती है, रां=का; हश=हस, मुक्त आत्मा; केका करा=क्रीडाएँ करते हैं, साधां=साधु, शग=सग, सगति, ग्याण गुणता=ज्ञान चर्चा, ज्ञान-युक्ति, धरां=धरें, उजडों=उज्ज्वल, शुभ्र निर्मल, सील=शील, तोस=सतोष; निरतां करा=नृत्य करें, शोड शिंगार=सोलह शृगार १ उबटन लगाना, २. स्नान करना, ३. स्वच्छ वस्त्र धारण करना, ४ बाल सँवारना, ५ काजल लगाना, ६ माँग मे सिंदूर भरना, ७ महावर लगाना, ८ ललाट पर बिंदी लगाना, ९ चिबुक पर तिल बनाना, १० मेहँदी लगाना, ११.सुगधित वस्तुओ का प्रयोग करना, १२ आभूषण धारण करना, १३ पुष्पमालाएँ पहनना, १४ पान खाना, १५ मिस्सी लगाना, १६ ओठो पर लाली रचना, शोणा=सोना, श=से, ओर शूं=इतर जनो से, अखाडा=उदासीन, अलिप्त।

७२ बादड=बादल, णभ=नभ इत=इधर, डरजा=लरजते हैं, उत=उधर, बिज्ज=बिजली, पवण=पवन, पुरवाया=पुरवाई, कोयड=कोयल; शबद शुणावा=बोल रही है, चित डाया=ध्यान लगाया।

७३ सू=से, गुडाड=गुलाल, लाड=लाल, रो=का, डाड=लाल, पिचकां=पिचकारी से, झरी=झडी, बूंदो की लगातार वृष्टि, चेरी=दासी।

७४ म्हारो=मेरा, मिड्या=मिले, णा=नही, शन्नेस सन्देश, रतण आभरण=रत्नाभरण, भूषण=आभूषण, गहने, छाड्या=छोडे, त्याग दिये, खोर कियां शर केस=सिर के केश कटवा दिये, भेख=वेष, थें कारण=तेरे कारण, चार्‌या देश=चारो दिशाओ मे, चतुर्दिक, मिडण=मिलन, जीवण जणम अणेस=अनेकानेक जन्मो तक जीवित रहना चाहती हूँ।

७५ तणक=तनिक, थोडा; चितवा=देखो; हिवडो=हृदय, चितवण=चितवन, कृपा दृष्टि, थारी=तेरी, श्रोर=और, अन्य, दूजा दोर=दूसरी पहुँच, दौड, ऊभ्या ठाढो=सीधी खडी-खडी, छू=हूँ, भोर=सबेरा, देश्यू=दूंगी, प्राण अकोर=प्राण न्योछावर करना।

७६ णातो=नाता, रिश्ता, म्हासू=मुझमे, पाणा=पत्ते, पान, ज्यू=जैसी पीडी=पीली, पिड=पाण्डु रोग, पीलिया, बावडा=बावला; बेद=वैद्य, बुड़ाइया=बुलवाया, वदा=वैद्य, मरम=मर्म, भेद, रहस्य, हिवडो=हृदय, करका जाय=पीडा, कसक, वेदना से विदीर्ण हो रहा है, दीश्यो=देना।

७७ सुरत=मूरत, बशी=बसी, निशवासर=रात-दिन, कहा करां=क्या करूँ, कित जावां=किधर जाऊँ, ढशी=हसी, मिळोगा=मिलोगे, णितणव=नित्य नूतन; रशी=सरसा रही है।

७८ नागर=चतुर, णेह=स्नेह, प्रेम, धुण=ध्वनि, सुण=सुन, बीसरां=भूली, कुणवो=कुटुम्ब, कुनबा, गेह=गृह,घर, पीर=पीडा, जाणई=जानता, मीण=मछली, पतग=पतिंगा, जळया=जल गया, जळ खेह=जलकर राख हो गया, देह अदेह=शरीर मृतवत् है, निष्प्राण है।

७६ साजण=साजन,प्रियतम, जुगा जुगा री=युग युग की, जोवतां=राह देखती हुई, प्रतीक्षारत, रतण=रत्न; ळे=ले, आरत साजां=आरती सजाऊँगी, दयां=दिया,भेजा सणेसड़ा,=सन्देश, घणों=खूब, बहुत, णेवाजां=अनुग्रह करने वाला कृपालु, सीश=सिर।

८० क्यां=क्यों, थारे=तेरे, कुड=कुल, थें=तुम, बिसरावां=भुलाते हो बिथा=व्यथा, लागा=लगी है, उर अन्तर=हृदय मे, सास्यां=आने पर बळ जावां=बलिहारी जाती हूं, पेज=प्रण, प्रतिज्ञा, णिभावों=निभाओ।

८१ नींदड़ी=नींद, निद्रा, शारां रात=सारी रात, कुण विध=किस विधि से शुपणा=स्वप्न, ळख=लख, देखकर, भूळयां=भूली, जीयरा=जी, मिळिया=मिलेंगे, भूळा=भूल गई, जाण्या=जानी, सोई जाणा=वही जानता है जिण हाथ=जिसके हाथो मे है।

८२ थें=तुम, जीम्या=भोजन ग्रहण करो, अरज=अर्ज, प्रार्थना, छे=है, लाड लाल, दयाळ=दयालु है, छतीशा बिंजण=छत्तीस प्रकार के व्यजन, ज प्रतिपाळ=भक्त जनो के प्रतिपालक, धारोग्यां=खाने के लिए परोसा सण्मुख=समक्ष, सामने, थाळ=थाल, कीज्यां बेग निहाळ=शीघ्र निह करो।

८३. रांची=रग गई हूं, घूंघट—घुंघट, लोक लाज=लोक लाज, नाची=ना गयां कुमत—दुर्बुद्धि समाप्त हो गई, ल्या=लो, सांची=सच्ची, गायां गायां गा-गाकर, निस दिण=निशि दिन, काळ-व्याळ=काल (मृत्यु) रूपी बांची=बच गई, खारा=खारा (अप्रिय), जग री बातां=सांसारिक ब कांचो=कच्ची लिगी=थी, भगत=भक्ति, रसीली=रसीली, सरस, म जांचो—याचना की।

८४ मा=मे, जीवणा थोड़ा=जीवन थोड़े दिनों का है, कुणे=किसने, करम= भाग्य, प्रारब्ध, गास्यां=गाऊँगी, और=अन्य, दूसरा, सार=सम्बध थारे=तेरे घर सं।

८५ नंदनन्दण=नन्दनन्दन,कृष्ण दीठ पड़्या=दिखाई दिया, सब=सब, बिसरा बिसराई, मुगट—मुकुट, छब=छवि, रो=का, तिलक=तिलक,

सुखदाई=नेत्रों को सुख देनेवाला, झड़का=झिलमिलाते हैं, जगमगाते हैं, कपोल=गाल, अड़का=अलकें, घुंघराले बाल, मीणा=मछलियाँ, मकर=मगर, धाई=दौड़ी, भेस=वेश, डोभाई=लुभाता है, बड जाई=बलिहारी जाती है।

८६ अखयां=आँखें, तरशां=तरसती हैं, मग जोवां=बाट (राह) देखते, रैण=रैन, रात्रि, दुखराशी=अत्यधिक दुखपूर्ण, डारा=डाली, कोयद=कोयल, गांशी=चुभते है, बोड=बोल,बातें, करश्यां=करते हैं, हाशी=हँसी, बिकाणी=बिक गई।

८७ डोभां=लोभवश, आटका=अटक गये, रूम रूम=रोम रोम, लख्यां=देखा, लडक=ललक, अकुडाय=अकुलाती है, म्हा=मैं, ठाढ़ी=खड़ी, णिकड्यां आय=आ निकले, परगासतां=प्रकाशित करते हुए, मन्द=मद, शकड=सकल, सब, बरजतां=टोकते, मना करते, बोड्यां=बोलते हैं, बोड बणाय=बातें बना-बनाकर, चचड=चचल, पर हथ=पराये हाथों, मया सीश चढ़ाय=शिरोधार्य कर लिया, पड=पल भर।

८८ बाण=बान, आदत, टेव, णाहि=नही, घरी=घडी, बश्यां=बस गया है, णा छाका=नही छकी, तृप्त नही हुई, माधुरा=माधुरी, छाण=छान, थक्या=थक गई, डगरी=डगर, राह, कुड काण=कुल की मर्यादा, सरी=छूट गई।

८९ लगण=लगन, शुहागा=सुहाग के, मिड्या धाय=दौडकर मिलूँगी, बर=वर, पति, णा=नही, बरयां=वरण करें, बापुरो=बेचारा जणम्यां=जन्म लेकर, जणम णसाय=जन्म (जीवन) नष्ट हो जाता है, मर जाता है, चूड्डो=चूडा काण्हड़ो=कान्हा, कृष्ण, मिडश्यो=मिलागे।

९० जड=जल, कवड=कमल, बिणा=बिना, रजणी=रात्रि, रेण=रैन, रात, बिहावां=बिताती हूँ, कडेजो=कलेजा, निदरा=निद्रा, नीद, रेणा=रात को, शू=से, सुणे=सुनता है, काशू=किससे, मिड=मिल, तपण=जलन,अन्तर्दाह, हृदय की ज्वाला, मिडो=मिलो, णेह=नेह।

९१ अबडा=अबला, बड=बल, थें=तुम गुणागर=गुणो का भाडार, नागर—(कृष्ण), म्हा=मेरे, हिवडों रो=हृदय का, साज=शृगार, शोभा, जग तारण=ससार से पार करने वाला, भौ भीत निवारण=भवसागर (मे डूबने) के भय का निवारण करने वाला, राख्या गजराज=गजेंद्र की रक्षा की, हारयां जीवणा=जीवन (सघर्ष) में हारे हुओ को, रावला=तुम्हारी, कठे=कहा, ओर=और दूसरा, अबरी=अबकी बार, डाज=लाज।

९२ सुण्या=सुना है, णा=न, नही, गेड लखावा=रास्ता दिखवाते हैं, प्रतीक्षा करवाते हैं, बाण=बान, आदत, डडचावा=ललचाते हैं, णा माणा=नही

के बन्धन, डार दया = डाल दिये, अर्पण कर दिये, ध्रास = आशा, सरणा री = शरण की।

१०० जणम लया = पैदा हुआ, णगरी = नगरी, मा = म, बिणराबण = वृन्दावन पगधारो = पधारे, आये, गत दीश्या = सुगति प्रदान की, मोक्ष दिया, पूतणा = पूतना राक्षसी, केता = कई एक, अनेक, तीरा = तीर, तट पर, धेण = धेनु, गाय कामर = कम्बल, कमरी, दड = दल, पट = वस्त्र, मुगट = मुकुट, कर मा = हाथ मे, जड बूडता = जल म डूबते हुए, छागण = छत, छत्ते की तरह, धारो = धारण किया, थे = तू, म्हा = मेरा, अधारो = आधार है, सहारा है।

१०१ माई = ह माँ (सखी), म्हा = मैं, गाश्या = गाऊँगी, णेम = नेम, नियम शकारे = सुबह, णित = नित्य, दरसण जाश्यां = दर्शनार्थ जाऊँगी, मा = म निरत करावा = नृत्य करूँगी, घूघरयां धमकाश्या = घुघरुओ की ध्वनि उत्प करूँगी, रा = वा, झाझ = जहाज, चडाश्यां = चलाऊँगी, बाड री काटो = झरबरी का काँटा, गेड = गैल, गली, पाश्यां = पाऊँगी।

१०२ होडी = होली, खारी = नीरस, अप्रिय, शूणो = सूना, निर्जन, शब = सब, बिण = बिना, डोडा = भटकती है, तज गया = त्याग गये, छोड गये, सणेसा = सन्देश, अणेशा = अदेशा, सदह, आशका, भारी = बहुत ज्यादा, श्रागरियां = अंगुलियाँ, शारी = सब, बाज्या = बज रहे है, मिरदग = मृदग, कर = हाथ, इकतारी = इकतारा, णा = नही, मण = मुझे मन से, क्या = क्यो, बिसारी = बिसार दी भूल गये, ठाढ़ी = खडी, डाज = लज्जा, मिडश्यो = मिलना, माधो = माधव, कृष्ण, मणे = मुझे, तारी = ध्यान।

१०३ णेणा = नेत्र, वणज = वनज कमल, बसावां = बसाऊँगी, राज्या = विराजमान है, पडक = पलक, डावां = लगाना, हिरदां = हृदय मे, बश्या = बसे हुए हैं, पड पड़ = पल-पल, री = की, सेज = शय्या, बड जावा = वलिहारी जाती हूँ।

के पाप का साक्षात्कार किया और क्रोधावेश मे अहिल्या को पत्थर तथा इन्द्र को 'सहस्र भग' होने का शाप दिया ।

विश्वामित्र जी के कहने पर भगवान राम ने अपने चरण-स्पर्श से अहिल्या का उद्धार किया, जिससे वह शाप-मुक्त हो स्वर्ग चली गई ।

यह कथा भगवान की चरण-रज की दिव्यता और उसकी प्रभविष्णुता की द्योतक है ।

३ कालिय नाग

"इण चरण कालिया णाथ्या ।", पद-१४

"काडिन्दी दह णाग णाथ्या काढ़ फण फण निरत करत ।", पद-३२

यह कथा श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध मे सोलहवें और सत्रहवें अध्याय मे वर्णित है ।[1] कालिय पर कृपा-प्रसग के अन्तर्गत श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाविषधर कालिय ने यमुना जी का जल विषैला कर दिया था । उसके विष की तीव्रता से कालिय दह का जल खौलता रहता था । उसकी गर्मी से ऊपर से उडकर जाने वाले पक्षी यमुना में गिरकर मर जाते थे ।

कालिय नाग को वहाँ से निकालकर रमणक द्वीप वापिस भेजने के लिए कृष्ण कालिय दह मे कूद पडे । कालिय नाग के फन-फन पर नृत्य कर उन्होंने उसके दर्प को चूर कर दिया । नाग पत्नियो ने कृष्ण से प्रार्थना की, अत कृष्ण ने उसे अभयदान दे रमणक द्वीप भेज दिया ।

राजा परीक्षित ने शुकदेवजी से कालिय नाग के रमणक द्वीप छोड यमुना के कुड म आकर रहने का कारण पूछा । इस पर शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! रमणक द्वीप मे हरि का वाहन महाबली गरुड रहता था । गरुड की माता और सर्पों की माता कद्रू मे परस्पर बैर होने के कारण गरुड मिलने वाले हर सर्प को खा जाता था । इससे व्याकुल हो सर्प ब्रह्माजी की शरण मे गये और ब्रह्माजी ने यह नियम बना दिया कि प्रत्येक सर्प-परिवार बारी-बारी से गरुड को सर्प की बलि दिया करे ।

कद्रू के पुत्र कालिय को अपने बल और विष का बडा घमण्ड था । उसने गरुड को तिरस्कृत करने के लिये दूसरे सर्पों द्वारा गरुड को दी गई बलि खा ली । इससे गरुड और कालिय मे घोर युद्ध हुआ । गरुड के पखो की चोट खा कालिय अपने प्राण बचाने के लिये रमणक द्वीप से भाग यमुनाजी के कुड मे छिप गया । यमुना-जी का यह कुण्ड गरुड के लिये अगम्य था, क्योंकि पूर्व काल मे इस कुण्ड के निकट सौभरि ऋषि तपस्या किया करते थे । उनके मना करने पर भी एक बार क्षुधातुर

---

1 श्रीमद्भागवत महापुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, चतुर्थ सस्करण, स० २०१८, दशम अध्याय, पृष्ठ २४१

के पाप का साक्षात्कार किया और क्रोधावेश मे अहिल्या को पत्थर तथा इन्द्र को 'सहस्र भग' होने का शाप दिया।

विश्वामित्र जी के कहने पर भगवान राम ने अपने चरण-स्पर्श से अहिल्या का उद्धार किया, जिससे वह शाप-मुक्त हो स्वर्ग चली गई।

यह कथा भगवान की चरण-रज की दिव्यता और उसकी प्रभविष्णुता की द्योतक है।

३ कालिय नाग

"इण चरण कालिया णाथ्या ।", पद-१४

"काडिन्दी दह णाग णाथ्या काड फण फण निरत करत ।", पद-३२

यह कथा श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध मे सोलहवें और सत्रहवें अध्याय मे वर्णित है।[1] कालिय पर कृपा-प्रसग के अन्तर्गत श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाविषधर कालिय ने यमुना जी का जल विषैला कर दिया था। उसके विष की तीव्रता से कालिय दह का जल खौलता रहता था। उसकी गर्मी से ऊपर से उडकर जाने वाले पक्षी यमुना मे गिरकर मर जाते थे।

कालिय नाग को वहाँ से निकालकर रमणक द्वीप वापिस भेजने के लिए कृष्ण कालिय दह मे कूद पडे। कालिय नाग के फन-फन पर नृत्य कर उन्होंने उसके दर्प को चूर कर दिया। नाग-पत्नियो ने कृष्ण से प्रार्थना की, अत कृष्ण ने उसे अभयदान दे रमणक द्वीप भेज दिया।

राजा परीक्षित ने शुकदेवजी से कालिय नाग के रमणक द्वीप छोड यमुना के कुड मे आकर रहने का कारण पूछा। इस पर शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! रमणक द्वीप म हरि का वाहन महाबली गरुड रहता था। गरुड की माता और सर्पों की माता कद्रू मे परस्पर बैर होने के कारण गरुड मिलने वाले हर सर्प को खा जाता था। इससे व्याकुल हो सर्प ब्रह्माजी की शरण मे गये और ब्रह्माजी ने यह नियम बना दिया कि प्रत्येक सर्प-परिवार बारी-बारी से गरुड को सर्प की बलि दिया करे।

कद्रू के पुत्र कालिय को अपने बल और विष का बडा घमण्ड था। उसने गरुड को तिरस्कृत करने के लिये दूसरे सर्पों द्वारा गरुड़ को दी गई बलि खा ली। इससे गरुड और कालिय मे घोर युद्ध हुआ। गरुड के पखो की चोट खा कालिय अपने प्राण बचाने के लिये रमणक द्वीप से भाग यमुनाजी के कुड मे छिप गया। यमुना-जी का यह कुण्ड गरुड के लिये अगम्य था, क्योकि पूर्व काल मे इस कुण्ड के निकट सौभरि ऋषि तपस्या किया करते थे। उनके मना करने पर भी एक बार क्षुधातुर

---

१ श्रीमद्भागवत महापुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, चतुर्थ सस्करण, स० २०१८, दशम अध्याय, पृष्ठ २४१

गरुड़ ने इसी कुण्ड से एक मत्स्य मारकर खा लिया था, अतः कुण्ड के जीवों की रक्षा के लिए दयाभाव प्रेरित सौभरि ने गरुड़ को यह शाप दिया कि यदि वह फिर कभी उस कुण्ड में आकर शिकार करेगा तो वह जीवित नहीं बचेगा। इसीलिये कालिय नाग उस कुण्ड में निवास करता था।

उपरान्त भगवान कृष्ण ने कालिय नाग को नाथ उसके मस्तक पर अपने चरण चिह्न अंकित कर उसे अभयदान दिया और वह पुत्र-स्त्रियों के साथ रमणक द्वीप को चला गया।

इस कथा से भगवान के दुष्ट-दलन रूप का परिचय मिलता है। साथ ही उनकी शरणागत-रक्षा-वृत्ति भी परिलक्षित होती है।

४. कुब्जा

'कुबजा तारयां गिरधर, जाण्यां सकल जहाण।'', पद-३१

कुब्जा की कथा श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध के बयालीसवें[1] और और अड़तालीसवें[2] अध्याय में वर्णित है।

कुब्जा कंस की दासी थी। उसका नाम त्रिवक्रा था। उसके द्वारा तैयार किये हुए चन्दन और अंगराग कंस को बहुत भाते थे। अक्रूर के साथ मथुरा जाने पर एक दिन मार्ग में कुब्जा और कृष्ण की भेंट हो गई। कृष्ण के अनुरोध से कुब्जा ने उनको तथा बलराम को अंगराग अर्पित किया।

कुब्जा की प्रेमाभक्ति से प्रसन्न हो कृष्ण ने अपने चरणों से कुब्जा के पैर के दोनों पंजे दबा लिये और हाथ ऊँचा करके दो अँगुलियाँ उसकी ठोड़ी में लगाईं तथा उसके शरीर को जरा उचका दिया। इससे कुब्जा की कूबड़ मिट गई और उसे परम रूप और लावण्य प्राप्त हो गया।

कुब्जा ने कृष्ण को अपने घर पधारने के लिये आमंत्रित किया। कंसवध के उपरान्त कृष्ण ने उसकी मनोकामना पूर्ण की और उसे पत्नी के रूप में अंगीकार कर उसकी आत्मवेदना का शमन किया।

इस कथा से यह ज्ञात होता है कि भगवान प्रेम के वशीभूत हैं और वे अपनी सहज करुणा से असंभव को भी संभव कर सकते हैं।

५. कैदसागुर

'गत सीवयां ..कदमां कतां अपन पधारा।'', पद-१००

---

१ श्रीमद्भागवत महापुराण, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ १४४-१४५

२, वही, पृष्ठ ४२६-४२८

मधु और कैटभ[1] दो महाबली दैत्य थे, जो विष्णु के कानों के मैल से उत्पन्न हुए थे। इन्होंने निराहार और जितेन्द्रिय रहकर एक हजार वर्ष तक तपस्या की और परमशक्ति भगवती से इच्छा मरण का वरदान प्राप्त किया। युद्ध की कामना से प्रेरित हो इन्होंने ब्रह्मा को ललकारा।

प्राणरक्षा के लिये ब्रह्मा, विष्णु की शरण में गये और उन्होंने भगवती की स्तुति कर शेष शय्या पर सोये हुए विष्णु को जगाया। तब तक ब्रह्मा की खोज करते-करते मधुकैटभ वहाँ आये और उन्होंने ब्रह्मा के साथ-साथ विष्णु का भी अंत कर देने की इच्छा प्रकट की। विष्णु ने बारी-बारी से मधु और कैटभ से मल्लयुद्ध किया। यह युद्ध पाँच सहस्र वर्षों तक चला। तदनंतर भगवान विष्णु ने सुकामदा विद्या शक्ति के सहारे देवी भगवती को प्रसन्न कर मधु-कैटभ की बुद्धि भ्रष्ट करवाई और उन्हें उनकी वीरता के लिए वरदान माँगने के लिए प्रेरित किया।

अहंकारवश मधु और कैटभ ने विष्णु से कहा – तुम हम क्या वरदान दे सकते हो। हम तुम्हारी वीरता से प्रसन्न हैं, अतः तुम ही हमसे वरदान माँग लो।

विष्णु ने कहा—यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो तो यह वर दो कि तुम दोनों की मृत्यु मेरे हाथों हो।

विष्णु की कामना सुन दैत्य घबरा गये। उन्होंने विष्णु के पूर्व कथनानुसार विष्णु से वर माँगा कि उनकी मृत्यु निर्जल स्थान पर हो। विष्णु ने अपनी जंघा पर बिठाकर सुदर्शन चक्र से उनके सिर काट डाले। इस तरह से मधु और कैटभ का वध हुआ।

यह कथा भक्तवत्सल भगवान विष्णु के दुष्ट-दलन के लिये युक्ति-कौशल का उदाहरण है।

६- गजेन्द्र मोक्ष

"अरध णाम कुंजर लयाँ दुख अवध घटाणी जी।" पद—२५
"डूबता गजराज राख्या ", पद—३१
"ग्राह गह्या गजराज उबारचा . ", पद—३३
"गज बूडता अरज सुण धाया. ,", पद—३४
"बूडता गजराज राख्या कठ्या कुंजर पीर", पद—६६
"जग तारण भो भीत निवारण थे राख्या गजराज", पद—६१

---

१ देवी भागवत पुराण—संपादक पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब (वेदनगर) बरेली, उत्तर प्रदेश, द्वितीय संस्करण, सन् १६७० पृष्ठ ५१-६४

श्वेत द्वीप म एक सरोवर म स्नान करते समय 'हाहा' नामक गन्धर्व ने केवल नि का पैर पकड लिया, जिससे रुष्ट हो मुनि न उस 'ग्राह' हो जाने का शाप दिया। सी तरह भोजन करते समय मौनव्रत धारण करने वाल राजा इन्द्रद्युम्न ने आगत हर्षि अगस्त्य का स्वागत नही किया, जिससे रूठकर अगस्त्य ने उसे गज' हो जाने का शाप दिया।

एक दिन जब गजेन्द्र अपनी हथिनियो व साथ सरोवर म जल क्रीडा कर रहा था, तब ग्राह ने उसका पैर पकड लिया। गज-ग्राह दोनो म घोर सघर्ष हुआ। ग्राह की शक्ति के सामने अपने साहस को टूटता हुआ देख गजेंद्र ने सहायता के लिए भगवान को पुकारा। गज की पुकार सुन भगवान गरुड छोडकर भागते हुए आये और उन्होने सुदशन चक्र से ग्राह को मार गजेन्द्र की रक्षा की।[1] इस तरह से गजेंद्र सकट मुक्त हुआ और ग्राह को परमपद मिला।

गजेंद्र-मोक्ष की कथा सकट-ग्रस्त भक्त की रक्षा के लिए भगवान की दयालुता और तत्परता का प्रमाण देती है।

७. गणिका

"गणका कीर पढावता बैंकुठ बसाणी जी।", पद—२५

' गणका चढया बिमाण।", पद—३१

जीवन्ती नामक वैश्या[2] अपने तोते को अत्यधिक प्रेम करती थी। एक दिन एक साधु भूल से उसके द्वार पर भिक्षा माँगने आये। जब उन्ह जीवन्ती की वास्तविकता का पता चला तो उन्होने उसे यह उपदेश दिया कि वह अपने प्रिय तोते को राम नाम सिखाये।

गणिका राम नाम माहात्म्य से अनभिज्ञ थी, पर तोत का राम-नाम का उच्चारण सिखाते-सिखाते वह भवसागर से पार हो गई।

यह कथा भगवनाम-महिमा की पोषक है।

८. गोवर्धन-लीला

"इण चरण धारया गोवरधण गरब मघवा हरण।", पद—१४

"गोवरधण गिरधारी।", पद—४२

"जग बूडता राख्या ब्रजबासी छागण गिरवर धारो।", पद—१००

श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के चौबीसवें और पच्चीसवें अध्याय के अनुसार यह कथा श्री शुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित को सुनाई थी।

---

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण—गीता प्रेस गोरखपुर पृष्ठ ८७७—८८६

२ हिन्दी साहित्य कोश - भाग २, स० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ ११२

इन्द्रयज्ञ-निवारण—प्रसग मे यह बताया गया है कि ब्रजवासी मेघाधिपति इन्द्र के उपासक थे। वे प्रति वर्ष विधि-विधानपूर्वक इन्द्र की पूजा किया करते थे, किन्तु भगवान श्रीकृष्ण ने नन्द तथा गोप-ग्वालो को इन्द्र की अपेक्षा गोवर्धन की पूजा करने की सलाह दी। कृष्ण की प्रेरणा से ब्रजवासियो ने इन्द्र की पूजा त्याग गिरिराज गोबर्धन की पूजा की।[1] इससे इन्द्र परम कुपित हुए और उन्होने सावर्तन नामक गण के नेतृत्व मे प्रलय के मेघो को ब्रज पर बरसने के लिए भेजा। मूसलाधार पानी बरसा, जिससे सन्नस्त हो सभी ब्रजवासी रक्षा के लिए कृष्ण की शरण मे आये। कृष्ण ने अपने हाथ से गोवर्धन पर्वत को उठा लिया और उसकी छाया मे ब्रजवासियो की रक्षा की।

सात दिनो तक प्रलय-वृष्टि के बाद जब इन्द्र को श्रीकृष्ण की योगमाया का प्रभाव ज्ञात हुआ, तब उन्होने ब्रज पर बरसने वाले मेघो को रोक दिया। ब्रजवासी गोवर्धन की छाया से निकल अपने-अपने घर चले गये तथा कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को यथास्थान रख दिया।[2]

इस कथा से यह सकेत मिलता है कि अहकार भगवान का भोजन है और सकटग्रस्त भक्तो की रक्षा करना उनका सहज स्वभाव है।

६. द्रौपदी

"द्रुपद सुता रो चीर बढधाया दुसासण मद मारण।,', पद—३४
"भरी सभा मा द्रुपद सुता री राख्या डाज मुरारी।", पद—४२
"पाच पाडु री राणी द्रपता हाड हिमाडा गरा।", पद—५४
"द्रोपता री डाज राख्या थे बढ्याया चीर।" पद—६६

द्रौपदी[3], महाराज द्रुपद की पुत्री थी। स्वयवर मे मत्स्यवेध कर अर्जुन ने द्रौपदी को प्राप्त किया। घर आने पर उन्होने माता कुती से कहा कि हम एक वस्तु लाये है। माता ने कहा—सब भाई आपस मे बाँट लो। इस तरह द्रौपदी पाँच पाण्डवो की पत्नी हुई।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय द्रौपदी भ्रमित दुर्योधन को देखकर हँस दी। इसका बदला लेने के लिये दुर्योधन ने दु शासन को युधिष्ठिर द्वारा जुए मे हारी हुई द्रौपदी का चीर हरण करने की आज्ञा दी। भगवान कृष्ण की कृपा से द्रौपदी की लाज बची और दु शासन उसका वस्त्रहरण करते-करते थक गया।

---

१. श्रीमद्भागवत महापुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, दशम स्कन्ध, पृष्ठ २८१
२. वही, पृष्ठ २८५
३. हिन्दी साहित्य कोश भाग २; सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ २५१-२५२.

महाभारत के युद्ध के बाद द्रौपदी पाँचो पाण्डवो के साथ हिमालय पर गइ और हिमालय पर चढ़ते-चढ़ते सबसे पहले गिरकर मर गई। मृत्यु के उपरान्त उसकी हड्डियाँ हिमालय के बर्फ मे गली।

द्रौपदी की कथा भगवान श्रीकृष्ण की कृपालुता और भक्तवत्सलता का उदाहरण है और उसकी मृत्यु भाग्यवाद का प्रमाण है।

१०. ध्रुव

'इण चरण ध्रुव अटड करस्या' ।', पद–१४

भक्त ध्रुव[१] राजा उत्तानपाद और महारानी सुनीति के पुत्र थे। उत्तानपाद की दूसरी रानी सुरुचि के पुत्र का नाम उत्तम था। एक दिन सुरुचि ने ध्रुव को राजा की गोद से उतारकर उनके स्थान पर उत्तम को बिठा दिया। इससे ध्रुव के हृदय को बडी ठेस लगी। वे तपस्या करने के लिए वन म चले गये।

तपस्या के समय इन्द्रादि देवो ने ध्रुव को विचलित करने के लिए अनेकानेक प्रयत्न किए, पर वे उनम कृतसंकल्प नही हुए। अन्तत ध्रुव की तपस्या सफल हुई और भगवान विष्णु न उन्हे दर्शन दे अचल-अटल ध्रुवलोक प्रदान किया।

ध्रुव अटल भगवद्भक्त के प्रतीक हैं।

११. नल-नील

"णाम डेता तिरता सुण्या जग पाहण पाणी जी।" पद—२५

नल[२] और नील[३] दो वानर थे। नील विश्वकर्मा का अशावतार था। इसके साथी का नाम नल था, जो विश्वकर्मा और घृताची अप्सरा का पुत्र था। इन दोनों वानरो ने राम-रावण युद्ध क पूर्व सेतु तैयार किया।

राम-नाम के प्रताप से पानी मे डूबने वाले पत्थर जहाज की तरह तैरने लग।[४] यह राम-नाम की महिमा है।

१२. पूतना

गत दीश्या पूतणा " पद—१००

यह कथा श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध के छठे अध्याय मे पूतना-उद्धार[५] के नाम से वर्णित है। पूतना बडी क्रूर राक्षसी थी। वह स्वेच्छा से रूप-

---

१. हिन्दी साहित्य कोश–भाग २, स० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ २५७—२५८
२. हिंदी साहित्य कोश, भाग-२, स० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ २६६
३. वही—वही, पृष्ठ २८७
४. रामचरितमानस—तुलसीदास-गीता प्रेस गोरखपुर, बारहवां सस्करण, सवत् २०१८, पृष्ठ ७४१—७४२
५. श्रीमद्भागवत महापुराण, दशम स्कन्ध, अध्याय ६, पृष्ठ १४८

परिवर्तन कर लेती थी तथा आकाश-मार्ग से विचरण भी कर सकती थी। कंस ने उसे अहीरों की बस्तियों में बच्चों को मारने के लिये भेजा था। अपने माया-बल से एक सुन्दर रमणी का रूप रख वह नंद के घर गई। उसने अपने स्तनों पर महाभयकर विष का लेप किया और बड़े कौशल से रोहणी और यशोदा के देखते-देखते बालकृष्ण को स्तन-पान कराया। इधर स्तन-पान के बहाने कृष्ण पूतना के प्राण ही पी गये।

मृत्यु के पूर्व पूतना के स्तनों मे इतनी पीडा हुई कि वह अपने सही रूप को छिपा न सकी और राक्षसी रूप मे प्रकट हो गई। उसके शरीर स प्राण निकल गये। और उसका शव भूलुठित हो गया, जिससे छ कोस के भीतर के वृक्ष कुचल गये। कृष्ण ने स्तन-पान के उपलक्ष मे उसे मातृवत् मुक्ति प्रदान की। शत्रु भाव या दुष्ट हेतु से भी यदि कोई भगवान को चाहे, तो कृपालु भगवान उसे मुक्ति प्रदान करते है।"— यही इस कथा का मर्म है।

१३. प्रह्लाद

"दण मरण प्रह्लाद परस्या इन्द्र पदवी धरण।", पद—१४

"प्रहद्लाद परतग्या राख्या हरणाकुस रो उदर बिदारण।", पद—३४

"भगत कारण रूप णरहरि धरया आप सरीर।", पद—६६

यह कथा श्रीमद्‌भागवत महापुराण के सप्तम स्कन्ध म युधिष्ठिर-नारद-सवाद के अन्तर्गत प्रथम अध्याय से लेकर नवम् अध्याय[१] तक वर्णित है।

कथा का साराश इस प्रकार है कि एक दिन ब्रह्मा के मानसपुत्र सनकादिक ऋषि तीनों लोको मे स्वच्छन्द विचरण करते-करते वैकुण्ठ पहुँचे। वहाँ भगवान विष्णु के द्वारपाल जय और विजय ने उन्हे साधारण बालक समझ वैकुठ मे प्रवेश करने से रोक दिया। इस पर ऋषियो ने उन्हे तीन जन्मो तक असुर योनि मे रहने का शाप दिया। तदनुसार जय-विजय क्रमश हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष, कुंभकर्ण-रावण तथा शिशुपाल और दन्तवक्त्र हुए।

हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष भाई-भाई थे। भूमि का उद्धार करने के लिए जब भगवान विष्णु ने वराह अवतार ले हिरण्याक्ष को मार डाला तब हिरण्यकशिपु को बडा दुःख हुआ। उसने मदराचल की घाटी मे जाकर घोर तप किया, जिससे प्रसन्न हो ब्रह्मा न उसे यह वर दिया कि वह न तो दिन मे मरेगा, न रात मे; न घर मे, न बाहर; न अस्त्र से, न शस्त्र से; न मनुष्य से, न पशु से।

प्रह्लाद इसी दैत्यराज हिरण्यकशिपु के चार पुत्रो मे से एक थे। वे बड़े भगवद्भक्त थे और दैत्य बालकों को भगवद्‌भक्ति का उपदेश दिया करते थे। इससे

---

१ श्रीमद्‌भागवत महापुराण, सप्तम स्कन्ध, पृष्ठ ७७३–८३४

हिरण्यकशिपु को बडा क्रोध आया और उसने उन्हे अनेक यातनायें दी। एक दिन उसने प्रह्लाद से पूछा-बता तेरा हरि कहाँ है ?

प्रह्लाद ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—वह सर्वत्र है।

हिरण्यकशिपु ने निकटवर्ती खभे की ओर इगित कर पूछा—इस खभे मे भी है?

प्रह्लाद ने कहा—अवश्य।

हिरण्यकशिपु ने क्रोधावेश मे उस खम्भे मे घूंसा मारा। खम्भा फट गया और भक्त-वत्सल भगवान ने सन्ध्या के समय, महल के द्वार पर अपने नखो से हिरण्यकशिपु का उदर विदीर्ण कर डाला। इस तरह से ब्रह्मा के वर व प्रह्लाद की रक्षा एक साथ हो गई।

यह कथा भगवान के भक्त-प्रेम और बुद्धि-कौशल का अच्छा उदाहरण है।

१४. वामनावतार

"इण चरण ब्रह्माण्ड भेट्या ।" , पद—१४

"जग्ग किया वढ डेण इद्राशण जाया पताड परॉ।" , पद—५४

यह कथा श्रीमद्भागवत महापुराण के अष्टम स्कन्ध मे पन्द्रहवें अध्याय से तेईसवें अध्याय तक वर्णित है।[१] कथानक इस प्रकार है कि दैत्यो का राजा बलि, जो प्रह्लाद का पौत्र और विरोचन का पुत्र था, अपने तपोबल से स्वर्ग का स्वामी बन गया। इससे देवराज इन्द्र की माता अदिति को बडा परिताप हुआ। उन्होने प्रजापति कश्यप से सहायता के लिए निवेदन किया। कश्यप ने उन्हे भगवान विष्णु की आराधना के लिए पयोव्रत करने का सुझाव दिया। अदिति की आराधना से प्रसन्न हो भगवान विष्णु ने उसकी गोद मे वामन अवतार लिया।

वामनावतार के बाद दैत्यराज बलि ने नर्मदा नदी के उत्तर तट पर भृगुकच्छ नामक स्थान पर अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया, जहाँ वामन ने ब्राह्मण-वेश मे आकर बलि से तीन पग भूमि का दान माँगा। दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने वामन के छल से बलि को सचेत किया, परन्तु प्रणभग और अपकीर्ति के भय से बलि ने अपने गुरु की आज्ञा की अवहेलना की और वामन को तीन-पग भूमिदान का अभिवचन दिया।

भूमि नापते समय वामन ने अपने विराट स्वरूप का विस्तार किया और दो पग मे सारी धरती तथा तीसरे पग मे बलि के शरीर को नाप उसे रहने के लिए सुतल लोक मे भेज दिया। इस तरह से इन्द्र का स्वर्ग पर अधिकार सुरक्षित हुआऔर अदिति की मनोकामना पूरी हुई।

वामनावतार की कथा भगवान की भक्तवत्सलता का प्रमाण है।

---

१. श्रीमद्भागवत महापुराण, अष्टम् स्कन्ध, पृष्ठ ६३८–६७७

१५. सदना

' तारया नीच सदाण ।" , पद—३१

सधना[1] उर्फ सदना जाति के कसाई थे, किन्तु पूर्वजन्म के पुण्य-फल से इनके हृदय मे भगवद्भक्ति विद्यमान थी। हिंसाचारजन्य पाप से बचने के लिए ये दूसरो से मास खरीदकर बेचा करते थे। मास को तोलने के लिये ये जिन वजनो का उपयोग करते थे, उनमे एक शालिग्राम की बटिया (गोल चिकना पत्थर) भी थी।

एक दिन एक साधु ने उस बटिया को देखा और वे उसे सदना से मांगकर पूजनार्थ अपने साथ ले गये। भगवान ने साधु को स्वप्न म आदेश दिया कि वे उस शालिग्राम की बटिया को पुन सदना को लौटा दें क्योकि भगवान उसी रूप मे सदना के निकट रहना पसद करते है।

साधु ने भगवदाज्ञा का पालन किया। सदना को जब इस घटना का पता चला तो उसने विरक्त हो जगन्नाथपुरी का रास्ता पकडा और अन्तत अपने सदाचार और भक्ति से मुक्ति पाई।

सदना कसाई की कथा से पता चलता है कि ऊँच-नीच, ब्राह्मण-कसाई, साधु-असाधु सभी भगवद्भक्ति के पात्र हैं और भगवद् भक्ति का मार्ग सबके लिए खुला है, भगवान भक्त की जाति-पाँति नही, प्रेम-प्रीति की कदर करते हैं, अत जिसकी जैसी भक्ति होती है, उसकी वैसी मुक्ति होती है।

१६. सुदामा

'विप्र सुदामा विपत विडारण ।', पद—३४

सुदामा[2] कृष्ण के बालसखा और सहपाठी थे। ये सन्दीपन ऋषि के आश्रम मे कृष्ण के साथ पढ थे। इनकी आर्थिक स्थिति बहुत विपन्न थी, अत. ये भिक्षा माँगकर उदर-निर्वाह करते थे। अपने दु.खदैन्य को भगवदिच्छा मान ये सदैव भगवद्-भक्ति मे तल्लीन रहते थ, पर पत्नी के अत्यधिक आग्रह के कारण ये अपने बालमित्र कृष्ण से मिलने के लिए द्वारका गये। कृष्ण ने इनका खूब आदर सत्कार किया और इनकी झोपडी की जगह सोने के महल खडे कर दिये। भगवदकृपा से सुदामा की दरिद्रता सदा के लिए समाप्त हो गई।

इस कथा से *भगवान कृष्ण के भक्त-प्रेम,* औदार्य और दीनहितकारी रूप का परिचय मिलता है।

---

१ उत्तरी भारत की सत-परपरा—आचार्य प० परशुराम चतुर्वेदी; भारती भण्डार प्रयाग, प्रथम सस्करण, सवत् २००८, सत सधना पृष्ठ १००

२ हिन्दी साहित्य कोश—भाग-२, सपादक, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ ६००-६०१

१७ शबरी

'भीडण तारयां ''।' पद—३१.

शबरी एक भगवद्भक्त भीलनी थी। उसकी पवित्र श्रद्धा, निर्मल भक्ति और *आत्मीयता के वशीभूत हो भगवान राम वनवास के समय (सीताहरणोपरान्त) सीता* को खोजते-खोजते उसके यहाँ पधारे। प्रेममग्न शबरी ने राम-लक्ष्मण का समुचित आदर किया और उन्हे रसीले, स्वादिष्ट कन्द मूल फल भेंट किये।[1]

भक्तो मे प्रसिद्ध है कि शबरी राम के लिये चख-चखकर मीठे बेर लाई थी। परम प्रेम के अतिरेक म उसे यह भान भी न रहा कि वह जूठे बेर भगवान को खिला रही है, पर भगवान ने वेर बडे प्रेम से खाये और शबरी की सराहना कर उसे भव-सागर के पार कर दिया।

शबरी की कथा इस तथ्य का समर्थन करती है कि भगवान प्रेम के भूखे है। भगवत्प्रेम का जाति-पाँति, कुल, धर्म, बडाई, धन, वल, कुटुम्ब, गुण, रूप आदि से कोई सम्बन्ध नही है। भक्ति प्रगाढता से सहज मुक्ति मिलती है।

१८. हरिश्चन्द्र

'सतवादी हरचदा राजा डोम घर णीरा भरा।', पद—५४

सत्यनिष्ठा के लिये राजा हरिश्चन्द्र की कथा लोक विख्यात है। ये अयोध्या के राजा थे। इन्द्र ने द्वेपभाव से प्रेरित हो इनकी परीक्षा के लिए विश्वामित्र से सहायता ली। विश्वामित्र ने स्वप्न म इनसे दानस्वरूप सारा राज्य ले लिया और फिर स्वय आकर इनसे दक्षिणा माँगी।

हरिश्चन्द्र ने काशी जाकर रानी शैब्या और युवराज रोहिताश्व को एक ब्राह्मण के हाथ वेच आधी दक्षिणा चुकाई और शेप के लिए एक डोम के यहाँ श्मशान पर नौकरी कर ली। श्मशान म हरिश्चन्द्र घाट रखवाली करते और मुर्दा जलानेवालो से श्मशान का कर वसूल करते थे।

दैवयोग से भगवान की पूजा के लिये पुष्प तोडते समय एक सर्प ने रोहिताश्व को डस लिया। दीन हीन शैब्या अपने पुत्र के शव को आधी साडी मे लपेट दाह-सस्कार के लिये उसी घाट पर आई, जहाँ हरिश्चन्द्र सेवारत थे। पत्नी और पुत्र को पहचानकर भी सत्यव्रती हरिश्चन्द्र ने शैब्या से श्मशान-कर माँगा और उसने अपने शरीर पर से आधी साडी फाडकर कर के रूप मे हरिश्चन्द्र को सौप दी। हरिश्चन्द्र की परीक्षा की यह पराकाष्ठा थी।

देवो ने प्रगट होकर हरिश्चन्द्र के सत्यव्रत की सराहना की और रोहिताश्व को पुनर्जीवन प्रदान किया। तदनन्तर हरिश्चन्द्र और शैब्या स्वर्ग चले गये और रोहिताश्व अयोध्या के राजा हुए।[2]

●

---

१ रामचरितमानस—तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर, वारहवाँ सस्करण, स० २०१८, पृष्ठ ६३६—६४०

२ कल्याण—सपादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, जनवरी १९४८, वर्ष २२, सख्या १,